संगठन विशेषांक

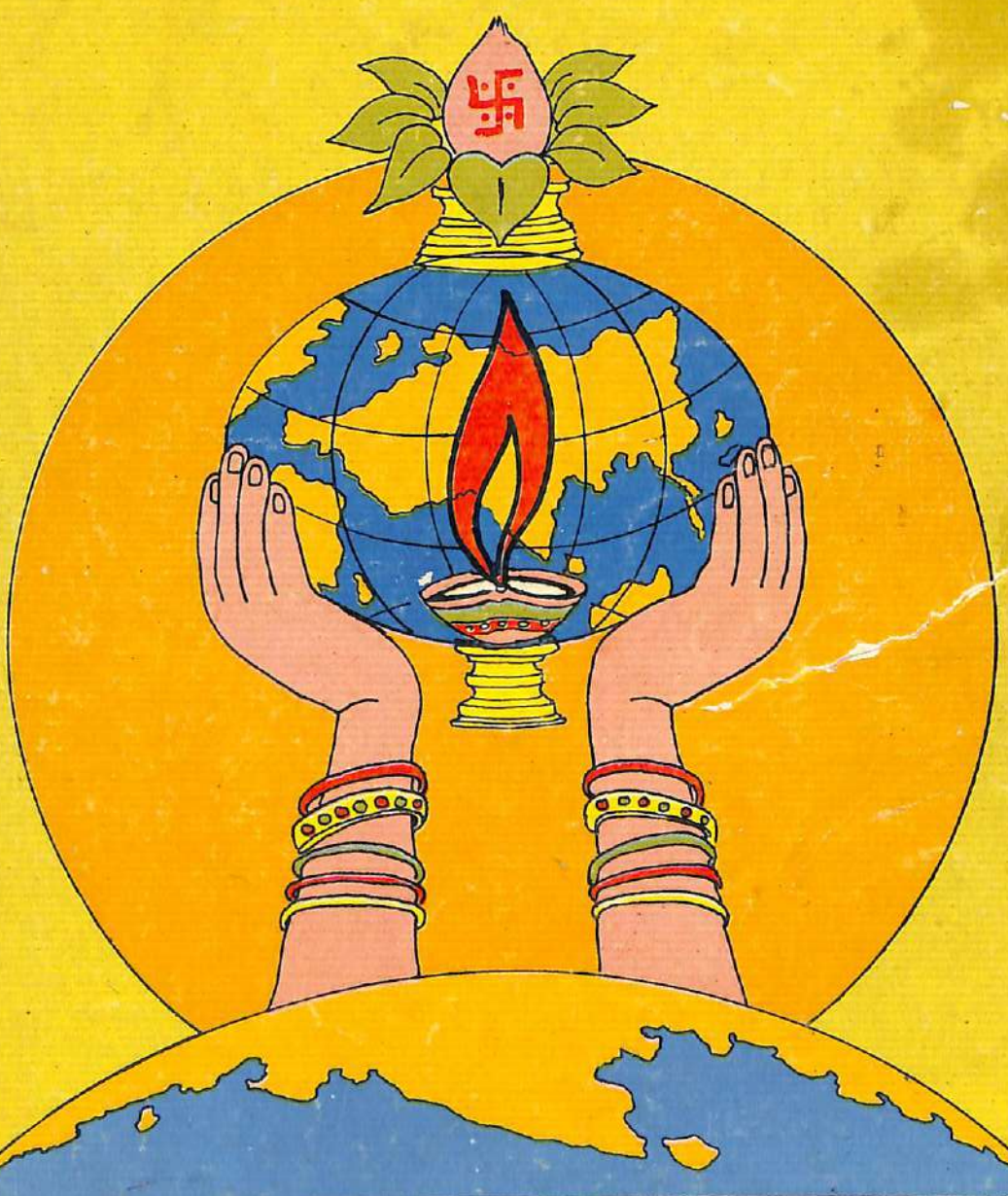

राष्ट्र सेविका समिति

दि अकोला अर्बन को-ऑप. बैंक लि., अकोला

''जनकल्याण''

प्रधान कार्यालय, जुने कॉटन मार्केट, अकोला - ४४४ ००१ पोस्ट बाक्स नं. ९५

दूरभाष क्र. ४३०१२३, ४३००८१, ४३०८४२ फैक्स नं. ०७२४-४३०८०५

शाखा विस्तार

मुख्य शाखा	रामदास पेठ	ताजना पेठ शाखा
	आदर्श कालोनी शाखा	
मूर्तिजापूर शाखा	कारंजा शाखा	मंगरूळपीर शाखा
बाळापूर शाखा	हिवरखेड़ शाखा	अकोट शाखा
मालेगांव शाखा	वाडेगांव शाखा	तेल्हारा शाखा
	* जळगांव (खा)	नागपुर

* विस्तार कक्ष - गोडबोले प्लांट,जुना शहर अकोला

लवकरच आपल्या सेवेस - * अमरावती * यवतमाळ* नविन शाखा सुरु होत आहेत

सांपत्तीक स्थिती - ३१ मार्च १९९६

* खेळते भांडवल	:	रु. ८६६३.४६ लाख
* ठेवी	:	रु. ६८०९.७९ लाख
* सभासद कर्जे	:	रु. ६०००.७५ लाख
स्वनिधी	:	रु. ४८१.२० लाख

संचालक मंडल

खुशालभाई सांगाणी
अध्यक्ष

सत्यनारायण लोहीया
उपाध्यक्ष

संचालक

रमणिकभाई गणात्रा	रतनलाल खण्डेलवाल	नारायण भाला
नानासाहेब घाटे	गिरीश अग्रवाल	सुरेशभाई वोरा
अड. आर. के. देशपाण्डे	गुरूमुखदास राघवाणी	अनिल खपली
नन्दलाल सरवरे	कैलाश अग्रवाल	सौ. मंदाताई खानझोडे
डॉ. सौ. अलका तामणे	डॉ. सौ. वन्दना बागड़ी	देवकीनन्दन पात्रोडीया
	ओमप्रकाश टी. राठी (मुख्य कार्यकारी अधिकारी)	

लॉकर सुविधा खालील शाखामध्ये उपलब्ध

१. मुख्य शाखा	२. ताजनापेठ शाखा	३. रामदासपेठ शाखा
	४. आदर्श कॉलनी शाखा	
५. मंगरूळपीर शाखा	६. मुर्तिजापूर शाखा	७. बाळापूर शाखा
८. हिवरखेड शाखा	९. अकोट शाखा	१०. मालेगांव शाखा

(राजधानी मुम्बई शहर कार्यक्षेत्र विस्तार अनुमति नुकतीच मिळाली आहे)

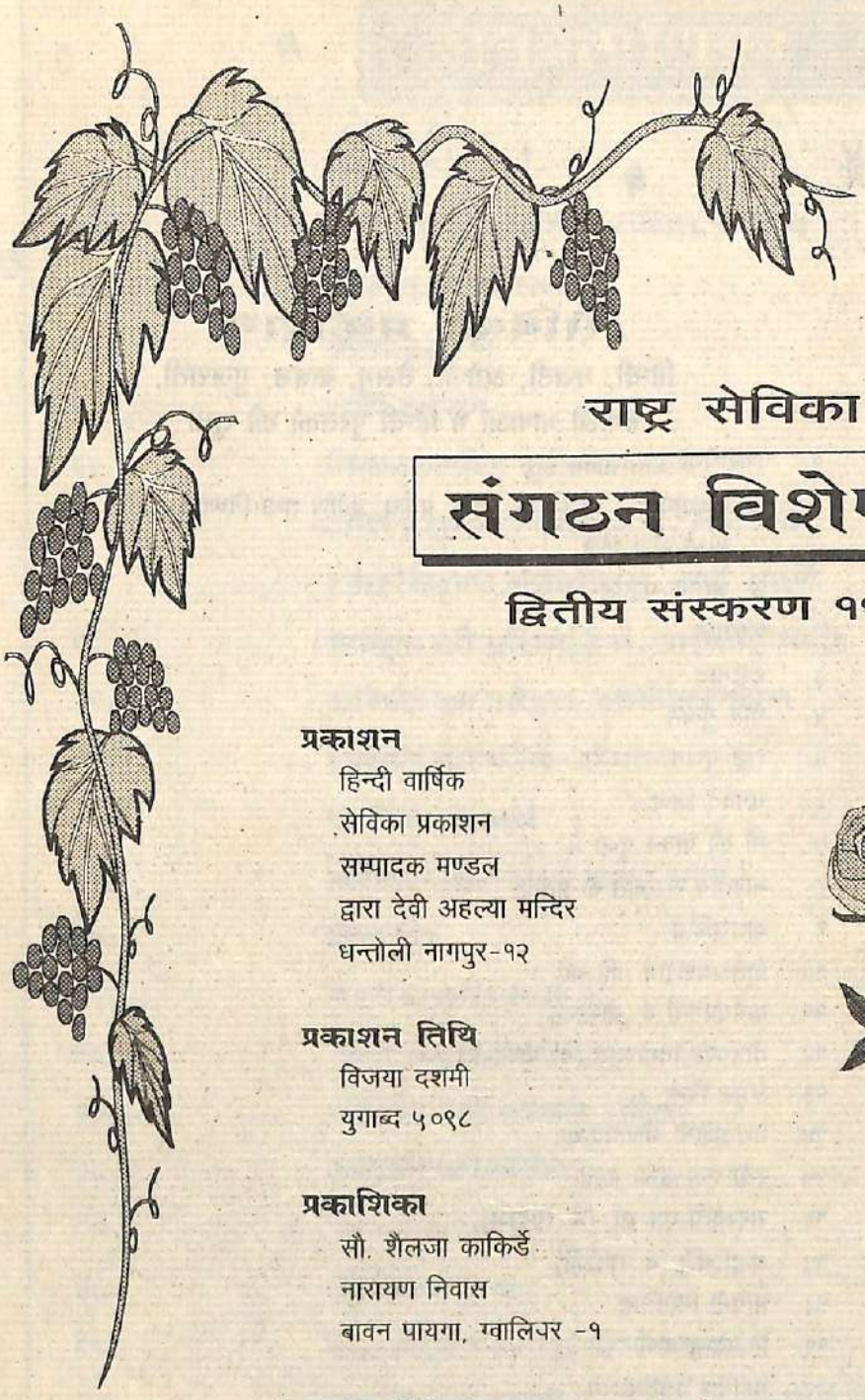

राष्ट्र सेविका

संगठन विशेषांक

द्वितीय संस्करण १९९६

प्रकाशन
हिन्दी वार्षिक
सेविका प्रकाशन
सम्पादक मण्डल
द्वारा देवी अहल्या मन्दिर
धन्तोली नागपुर-१२

प्रकाशन तिथि
विजया दशमी
युगाब्द ५०९८

प्रकाशिका
सौ. शैलजा काकिर्डे
नारायण निवास
बावन पायगा, ग्वालियर -१

मूल्य २० रु.

पुस्तक साज - सज्जा
आरबीजे कम्प्यूटर, मुरार, फोन ३६६४०९

मुद्रक
कैलादेवी पब्लिकेशन जयेन्द्रगंज, ग्वालियर फोन ३२४६७१

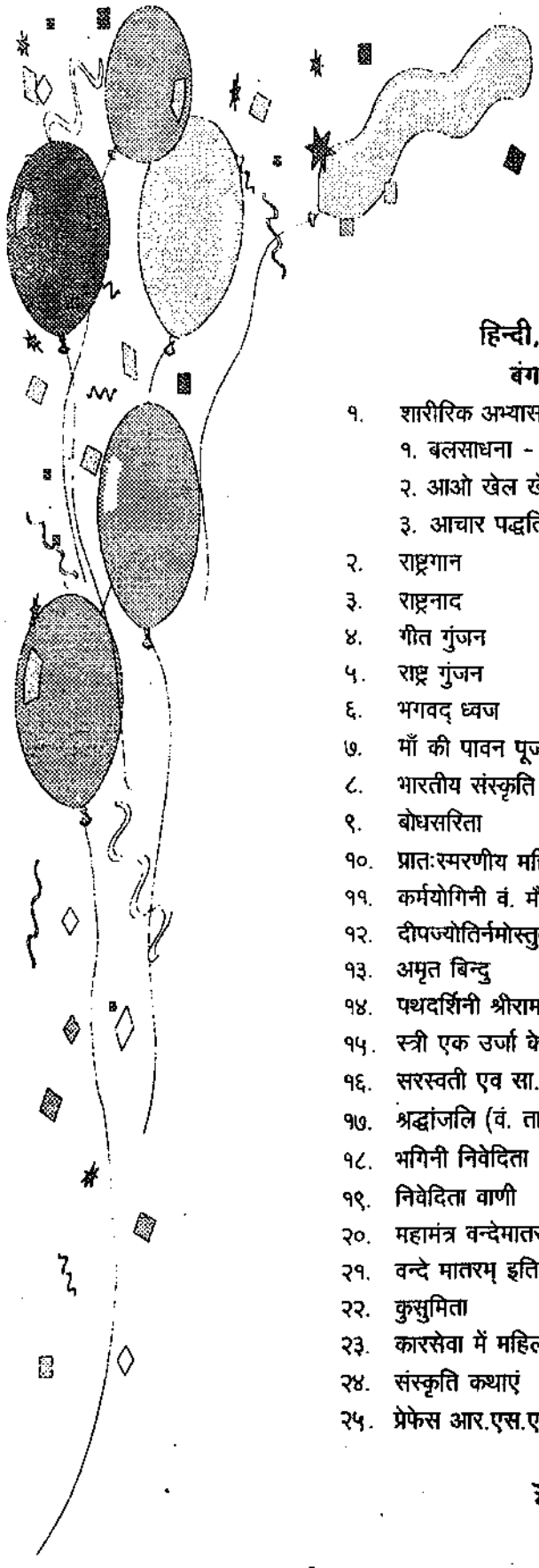

सेविका प्रकाशन

हिन्दी, मराठी, अंग्रेजी, तेलगु, कन्नड, गुजराती, बंगाली भाषाओं में हिन्दी पुस्तकों की सूची

१. शारीरिक अभ्यासक्रम हेतु
   १. बलसाधना - प्रारम्भिक, प्रवेश, प्रबोध, प्रवीण तथा निष्णात
   २. आओ खेल खेलें
   ३. आचार पद्धति
२. राष्ट्रगान
३. राष्ट्रनाद
४. गीत गुंजन
५. राष्ट्र गुंजन
६. भगवद् ध्वज
७. माँ की पावन पूजा में
८. भारतीय संस्कृति के प्रतीक
९. बोधसरिता
१०. प्रातःस्मरणीय महिलाएं
११. कर्मयोगिनी वं. मौसीजी
१२. दीपज्योतिर्नमोस्तुते (वं. मौसीजी)
१३. अमृत बिन्दु
१४. पथदर्शिनी श्रीरामकथा
१५. स्त्री एक उर्जा केन्द्र
१६. सरस्वती एव सा. (वं. ताईजी)
१७. श्रद्धांजलि (वं. ताईजी)
१८. भगिनी निवेदिता
१९. निवेदिता वाणी
२०. महामंत्र वन्देमातरम्
२१. वन्दे मातरम् इतिहास के पन्नों से
२२. कुसुमिता
२३. कारसेवा में महिलाओं का योगदान
२४. संस्कृति कथाएं
२५. प्रेफेस आर.एस.एस.

सम्पर्क स्थान

देवी अहल्या मंदिर

धन्तोली नागपुर - १२

अनुक्रमणिका

१.	सम्पादकीय	-
२.	राष्ट्र सेविका समिति संक्षिप्त परिचय	१
३.	प्रार्थना सरल अर्थ	२
४.	प्रातः स्मरण	३
५.	सायं स्मरण	४
६.	विकसनशील समिति कार्य	५
७.	आद्य प्रमुख संचालिका वं. मौसीजी	८
८.	शांत स्निग्ध नंदादीप वं. ताई आपटे	१२
९.	ऋजूता की प्रतिमूर्ति वं. उषाताई चाटी	१५
१०.	समिति का उद्देश्य- स्वसंरक्षणक्षम	१७
११.	समिति का ध्येय- संगठन	१९
१२.	प्रार्थना का अर्थ	२१
१३.	भगवा लहर-लहर हिन्दु प्राण	२४
१४.	हिन्दुत्व	२८
१५.	कार्य पद्धति भाग १	३२
१६.	कार्य पद्धति भाग २	३४
१७.	स्त्री राष्ट्र की आधार शक्ति	३६
१८.	समिति की सेविका	३९
१९.	अपने उत्सव	४२
२०.	देवी अष्टभुजा	४८
२१.	मातृत्व का आदर्श जिजामाता	५३
२२.	कर्तुत्व का महामेरु देवी अहल्याबाई होल्कर	५७
२३.	नेतृत्व की तेजस्वी ज्योति - रानी लक्ष्मीबाई	६०
२४.	सर्वश्रेष्ठ हिन्दु धर्म	६४
२५.	भारतीय संस्कृति के प्रतीक	६८
२६.	स्वदेशी	७१
२७	सामाजिक समरसता	७२
२८	वन्देमातरम्	७३

सम्पादकीय

प्रिय बहनों,

संगठन विशेषांक की संशोधित आवृत्ति विजयादशमी के शुभ अवसर पर आपके हाथों सौंपते हुये हमें संतोष हो रहा है। इस अंक के कुछ लेख, जैसे भगवद् ध्वज, माँ की पावन पूजा में, छोटी पुस्तिकाओं के रूप में हम पूर्व ही प्रकाशित कर चुके हैं। इस अंक से प्रत्येक सेविका, समिति की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकती है। समिति वर्ग में बौद्धिक, गीत, बोधपट के लिए इसका निश्चित ही उपयोग होगा। हर सेविका को यह अंक अपने सग्रह में रखना चाहिए। इस अंक में अध्ययन के लिए कुछ पुस्तकों के नाम संदर्भ हेतु दिये हैं। सम्पादिका मण्डल ने लेखों के माध्यम से अधिक से अधिक देने का पूर्ण प्रयास किया है। विश्वास है हम सभी के लिए यह उपयुक्त सिद्ध होगा। त्रुटी के लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं।

इस अंक का मुद्रण कैलादेवी पब्लिकेशन एवं आरबीजे कम्प्यूटर मुरार, ग्वालियर के सहयोग से ही सफल सम्भव हुआ। हमारे विज्ञापनदाताओं ने भी अपने विज्ञापन देकर हमें आर्थिक सहयोग प्रदान किया। अतः हमारा मण्डल स्वदेश तथा विज्ञापनदाताओं का अत्यंत ऋणी है।

हम पुनः आप सभी के प्रति आभार व्यक्त करते हुए राष्ट्र सेविका समिति का कार्य नई उमंग, नई प्रेरणा से आगे बढ़ें इसी शुभकामनाओं के साथ।

आपका

सम्पादक मण्डल

राष्ट्र - सेविका - समिति

प्रधान कार्यालय देवी अहल्या मंदिर धंतोली नागपुर -१२

संक्षेप में परिचय

स्थापना - १९३६ विजयादशमी, स्थान वर्धा।
संस्थापिका - आद्य प्रमुख संचालिका -
वंदनीया स्वर्गीय श्रीमती लक्ष्मीबाई केलकर

उद्दिष्ट -

महिलाओं को आत्मसुरक्षाक्षम बनाना, उनका मानसिक बल, शारीरिक दृढ़ता, बौद्धिक पात्रता आदि विकसित कर के उन्हें स्वराष्ट्र, स्वधर्म और स्वसंस्कृति की सुरक्षा के लिए प्रवृत्त करना, महिलाओं के पारिवारिक तथा राष्ट्रीय उत्तरदायित्व के बारे में उन्हें सावधान करना।

समिति का ध्येय -

अखिल भारतीय हिन्दु महिलाओं का संगठन करना।

तत्त्वत्रयी - १. हिन्दुत्व यही राष्ट्रीयत्व है।
२. भगवाध्वज हमारा राष्ट्रध्वज है।
३. एकचालिकानुवर्तित्व।

सूत्र - स्त्री राष्ट्र की आधारशिला है।

आदर्श महिलाएं -

१. राष्ट्रमाता जीजाबाई (मातृत्व के लिए)
पुण्यतिथि-ज्येष्ठ कृष्ण नवमी,
२. देवी अहल्याबाई होळकर (कर्तृव्य के लिए)
पुण्यतिथि-श्रावण कृष्ण चतुर्दशी
३. स्वातंत्र्यलक्ष्मी रानी लक्ष्मीबाई (नेतृत्व के लिए)
(पुण्यतिथि-ज्येष्ठ शुक्ल ७)

हर एक प्रांत के अनुसार अन्य अन्य श्रेष्ठ महिलाओं के आदर्श सेविकाओं के सामने रखे जाएंगे। उनकी तिथियां मनाई जाएंगी।

कार्यक्रम -

१. दैनदिन तथा साप्ताहिक शाखाएं लगाना। वहां पर सेविकाओं को शारीरिक शिक्षा, बौद्धिक विकास, मनोबल, बढ़ाने के लिए अन्य अन्य उपक्रम शुरू करना।
२. प्रतिवर्ष भारतीय तथा विभाग बैठकें आयोजित करना जिले की और प्रांतवार बैठकें लेना।
३. सैर और शिविरों का आयोजन-शिशु, बालिका, युवती और गृहिणी सेविकाओं के लिए।
४. अखिल भारतीय स्तर पर त्रैवार्षिक सम्मेलन लेना।
५. उद्योग मंदिर, बालमंदिर, संस्कार वर्ग, भजन-कीर्तनादि के वर्ग, वसतीगृह, गृहिणी विद्यालय आदि उपक्रमों द्वारा अधिकतम समाजसम्पर्क प्रस्थापित करना।

राष्ट्रीय उत्सव -

१. वर्ष प्रतिपदा (चैत्र शुक्ल प्रतिपदा)
२. गुरु पौर्णिमा (आषाढ़ पौर्णिमा)
३. रक्षाबंधन (श्रावण पौर्णिमा)
४. विजयादशमी (आश्विन शुक्ल दशमी)
५. मकर संक्रमण (१४ जनवरी)

पुण्यस्मरण -

आदर्श महिलाओं का पुण्यस्मरण पुण्यतिथिओं के अवसर पर करना। इस अवसर पर स्थानीय अन्य महिला संस्थाएं समिति के कार्यक्रम में सम्मिलित होंगी ऐसा प्रयास करना।

अन्य उत्सव -

राष्ट्रपुरुष श्रीराम और श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव मनाना, जिसमें अधिकाधिक जनता सम्मिलित हो सके। शारदोत्सव या दुर्गा का उत्सव या स्थानीय लोकपर्व मनाना।

स्वर्गीय वं मौसीजी का पुण्यस्मरण -

वं. मौसीजी जन्मदिन संकल्प दिन आषाढ़ शुक्ल १०
५ जुलाई १९०५
वं. ताईजी का स्मृति दिन - माघ द्वादशी कृष्ण
९-३-१९९४ सेवादिन

समिति की प्रार्थना

नमामो वयं मातृभूः पुण्यभूस्त्वाम्
त्वया वर्धिताः संस्कृतास्त्वत्सुताः।
अये वत्सले मंगले हिन्दुभूमे
स्वयं जीवितान्यर्पयामस्त्वयि ।।१।।

नमो विश्वशक्त्यै नमस्ते नमस्ते
त्वया निर्मितं हिन्दुराष्ट्रं महत्।
प्रसादात्तवैवात्र सज्जाः समेत्य
समालंबितुं दिव्यमार्गं वयम्।।२।।

समुन्नामितं येन राष्ट्रं न एतत्
पुरो यस्य नम्रं समग्रं ★ जगत्
तदादर्शयुक्तं पवित्रं सतीत्वम्
प्रियाभ्यः सुताभ्यः प्रयच्छाम्ब ते ।।३।।

समुत्पादयास्मासु शक्तिं सुदिव्याम्
दुराचारदुर्वृत्तिविध्वंसिनीम्।
पितापुत्रभ्रातॄंश्च भर्तारमेवं
सुमार्गं प्रति प्रेरयन्तीमिह ।।४।।

सुशीलाः सुधीराः समर्थाः समेताः
स्वधर्मे स्वमार्गे परं श्रद्धया
वयं भावि-तेजस्वि-राष्ट्रस्य धन्याः
जनन्यो भवेमेति देह्याशिषम् ।।५।।

।। भारत माता की जय ।।

प्रार्थना का हिन्दी में सरल अनुवाद

(१) हे मातृभूमे, हे पुण्यभूमे, ये तेरी कन्याएं - जिनका संवर्धन और संस्करण तूने किया है - वे तुझे वंदन करती है, हे वत्सले, मंगले हिन्दुभूमे, तेरे लिए हम स्वयं अपना जीवन समर्पण कर रही हैं।

(२) हे विश्वशक्ति, तुझे नमस्कार ! इस महान् हिन्दु राष्ट्र का निर्माण तूने किया है। यह तेरी ही कृपा है कि हम इस दिव्य मार्ग का अवलंबन करने के लिए सुसज्जित होकर संगठित हुई है।

(३) जिस सतीत्व ने इस राष्ट्र को श्रेष्ठ बनाया है ज़िसके सामने समग्र विश्व नम्र होता है, उस आदर्श, पवित्र सतीत्व को हे अम्बे अपनी प्रिय कन्याओं को प्रदान कर।

(४) दुराचार और दुर्वृत्तिओं का विध्वंस करने वाली दिव्य शक्ति हमें प्रदान करे, तथा पिता, पुत्र, बंधु और पति इन सबको सुमार्ग पर चलने की प्रेरणा देने वाली दिव्य-शक्ति हमें प्रदान करो

(५) हम सुशील, सुधीर, समर्थ और संगठित बने स्वधर्म और स्वमार्ग पर अत्याधिक श्रद्धा करें। हम भावी तेजस्वी राष्ट्र की कृतार्थ जननी बन सकें, यह आशीष दो।

० यहां राष्ट्रन् न ऐसा उच्चारण करना चाहिए।
★ यहां पर समग्रम् जगत् ऐसा उच्चार करना होगा।

प्रातः स्मरणम्

ॐ नमो वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ।।१।।

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती ।
करमूले तु गोविन्दः प्रभाते करदर्शनम् ।।२।।

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले ।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ।।३।।

अहल्या द्रौपदी सीता, तारा, मन्दोदरी तथा ।
पञ्चकं ना स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ।।४।।

अदितिर्विदुला काली विनता च उमा सती ।
शर्मिष्ठा दमयन्तीच सावित्री चाञ्जनी तथा ।।५।।

मैत्रेयी विश्पला गार्गी शची वघ्रिमती तथा ।
गौतमी संघमित्रा सा सुमित्रा च सरस्वती ।।६।।

अनसूयाऽरुंधती मीरा बाई दाहरस्त्री तथा ।
चेन्नम्मा च महादेवी-यक्क रुद्राम्ब रुक्मिणि ।।७।।

जयमती च भवानी च वीणा प्रीतिश्च कल्पना ।
मयणल्ला शारदामाता भगिनी च निवेदिता ।।८।।

जिजा लक्ष्मीरहल्या च दुर्गा येसुस्तथा रमा ।
पन्ना कृष्णाकुमारी च पद्मिनी रामरक्षिता ।।९।।

भारते हिन्दुनारीणां भवेत् संघटनं दृढम् ।
इति संस्थापिता राष्ट्र-सेविका समितिर्यया ।।१०।।

संस्कृतेश्च स्वधर्मस्य रक्षणार्थं समर्पितम् ।
क्षणशः कणशश्चैव जीवितं चंदनं यथा ।।११।।

यया रामयशोगानैः कृता भारत-जागृतिः।
लक्ष्मीं केलकरोपाख्यां स्मरामो मावशीं वयम् ।।१२।।

मातृवत् स्नेहवात्सल्यं राष्ट्र कार्यार्थ जीवनम्।
सरस्वति नमस्तुभ्यं सेविकाप्रेरणास्रवम् ।।१३।।

एता उज्ज्वलचारित्र्यः स्त्रियः प्रातः सदा स्मृताः ।
भवन्ति शीलशौर्यादीन् वितरन्त्यो गुणान्सदा ।।१४।।

गंगा, गोदा, ब्रह्मपुत्रा, गोमती च सरस्वती ।
कावेरी, यमुना, कुंभा, सिंधु, रेवा, इरावती ।।१५।।

प्रातः स्मरणमेतद्यो नित्यं नियमतः पठेत् ।
अखण्डं भारतं नित्यं तस्य स्फुरति चेतसि ।।१६।।

भारत माता की जय

भारतभूस्तोत्रम्

वंदे मातरमव्यक्तां व्यक्तां च जननीं पराम्।
दीनोऽहं बालकः कांक्षे सेवां जन्मनि जन्मनि ।।१।।

सागरालिंगितां लक्ष्मीं जगज्जनककन्यकाम् ।
स्थितां हिमनगस्यांके पार्वतीमपरां भजे ।।२।।

शुभ्रं धर्मध्वजं मातुः किंवा राशीकृतं यशः
रौप्यं वा मुकुटं दिव्यं वन्देऽहं तं हिमालयम् ।।३।।

पुत्रवत्सलता मातुरगाधा हरिणा स्वयम्
अवतीर्योदरे सोढं गर्भदुःखं पुनः पुनः ।।४।।

मरणे जन्मकाले च मुमूर्षुर्नवबालकः
त्वदंके चैव संशेते अहो वत्सलता तव ।।५।।

त्वदवृक्षाः कल्पवृक्षाश्च चिंतामणिशिलाः शिलाः
त्वद्वनं नंदनं साक्षात्साक्षात्त्वं स्वर्गदेवता ।।६।।

प्रति जन्मनि से चित्तं वित्तं देहश्च संततिः
त्वत्सेवानि रता भूयुर्माता त्वं करुणामयी ।।७।।

न मे वांछाऽस्ति यशसि विद्वत्वे न च वा सुखे
प्रभुत्वे नैव वा स्वर्गे मोक्षेऽत्यानंददायके ।।८।।

परं च भारते जन्म मानवस्य च वा पशोः
विहंगस्य वा जन्तोर्वृक्षपाषाणयोरपि ।।९।।

निरंतरं भवतु मे मातृसेवांशभाग्यभाक्
एषैव वांछा हृदये साक्षी सर्वात्मकः प्रभुः ।।१०।।

सायं स्मरण

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्माऽमृतं गमयं
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः
भद्रकाल्यै नमो नित्यं
सरस्वत्यै नमो नमः
वेदवेदांगविदांत
विद्यास्थानेभ्य एव च।
सरस्वति महाभागे
विद्ये कमललोचने
विश्वरूपे विशालाक्षि
विद्यां देहि नमोऽस्तुते।
ज्योऽस्तु ते श्री महन्मंगले शिवास्पदे शुभदे।
स्वतंत्रते भगवति त्वामहं यशोयुतां वंदे।
भजेत्सामरस्यं जनो भारतेऽस्मिन्
भवेद एकराष्ट्रात्मिका सन्मतिर्नः
भवेद् आर्यधर्मो गुरुर्विश्वकार्ये
प्रभो हिन्दुधर्मोऽधुना वर्धताम्।
भारत माता की जय।

उत्कर्षो भवतु हिंदूनां
अखंड भारतं तथा
कृण्वन्तो विश्वमार्यं च
प्रतिज्ञा सफला भवेत्।

देवी अष्टभुजा स्तोत्र

नमो अष्टभुजे देवी, लक्ष्मि पार्वति, शारदे
बुद्धि वैभव दो मातर, हमे दो शक्ति सर्वदे ।।११।।

शील रूपवती नारी - तेरी ही प्रतिमा बने
धर्म - संस्कृति - रक्षा से, धन्य भारत को करें ।।२।।

सुगंधित सुवर्णाभ सुकोमल सरोज जो
हस्त में घृत देता है, पाठ निर्लेप तुम बनो ।।३।।

गीता प्रदीप जो देता, विश्व को ज्ञान चेतना ।
कर में स्थित है तेरे, स्नेहले, अंब, मंगले ।।४।।

शील चारित्र्य की होवे, आभा प्रसृत पावनी
अग्निकुंड इसी से है प्रदीप्त घृत हाथ में ।।५।।

त्रिशूल है लिया मातर् दुष्ट - संहार हेतु से
खड्ग देवि, लिया है जो सज्जन - त्राण बुद्धि से ।।६।।

विराग विक्रमों की जो फहरायें नभ में प्रभा ।
भगवाध्वज है तूने हाथ में पकड़ा महा ।।७।।

ध्येय का ध्यान ना भूले, कार्य में रत हो सदा
स्मरणी हाथ की देती, हमें संदेश सर्वदा ।।८।।

घण्टानाद हमें देता, नित्य जागृति वत्सले ।
निद्रा आलस्य में खोवें अमोल क्षण ना कदा ।।९।।

सिंहवाहिनी अंबे तू जगाती जनसिंह को
सटाओं से उठे सेना, शक्ति - सामर्थ्यदायिके ।।१०।।

सती तू, पद्मजा तू है, तू है देवि सरस्वती ।
'परित्राणाय साधूनां' काली माँ तू यशोमती ।।११।।

विनम्र भाव से देवि, प्रणिपात सहस्त्रधा
सेविकाएं करे, आशीष देहि, देवि सुमंगले ।।१२।।

सर्व मंगलमांगल्ये, शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यंबके गौरि नारायणि नमोस्तुते ।।१३।।

देवी अष्टभुजा की जय ! भारत माता की जय !
भगवा राष्ट्र ध्वज की जय !

विकसनशील समिति कार्य

राष्ट्र सेविका समिति इस सांस्कृतिक संगठन का प्रारंभ १९३६ की विजयादशमी के पावन पर्व पर वर्धा में वं. लक्ष्मीबाई केलकर उपाख्य वं. मौसीजी ने किया। सामाजिक एवं राष्ट्रीय दृष्टि से महिलाओं को जागृत कर उनको संगठित करने के लिए समिति का जन्म हुआ। वं. मौसीजी ने बचपन में जो संस्कार ग्रहण किये, देश की परिस्थिति देखी उसका ही परिपाक था यह। अपनी ताईजी के साथ मंदिरों में जाते हुए श्री रामायण, महाभारत, भागवत की कहानियाँ उन्होंने सुनी। श्री चौंडे महाराज से गोरक्षण का महत्त्व सुना। उनकी माताजी राममंदिर गली की महिलाओं को एकत्रित कर लोकमान्य तिलक के 'केसरी' के लेख पढ़कर सुनाती थी, वह सुना। करोड़ों लोगों का देश गुलाम क्यों ? दिनदहाड़े होने वाला अपने मानचिह्नों का अपमान ठंडे मन से लोग सहन कर सकते हैं ? ऐसे अनेक प्रश्न छोटे कमल के मन में उठते थे। केलकर जी से विवाह के बाद वर्धा में आने पर म. गांधीजी द्वारा संचालित स्वाधीनता आंदोलन में भी वे सहभागी होती रही। उनके मन की धारणा दृढ़ होती जा रही थी कि प्राणों का भी मूल्य चुका कर देश को स्वतंत्र बनाना चाहिए। स्वतंत्रता का रक्षण तभी हो सकता है जब देश के नागरिक सतर्क सच्चरित्र, शक्ति और भक्ति से ओतप्रोत हो। और यह चरित्र, राष्ट्रभक्ति समाज में कौन निर्माण कर सकता है ? माँ-माँ ही यह कर सकती है। उसको जगाना होगा- सक्रिय बनाना होगा।

स्वामी विवेकानंद ने भी कहा था की 'भारत रूपी गरुड़ पक्षी को प्रगति के आकाश में उड़ान भरने के लिए उसके दो पंख स्त्री और पुरुष समान रूप से बलशाली चाहिए।' इसी मानसिक अवस्था में उनकी पू. डॉ. हेडगेवार जी से भेंट हुई- महिला संगठन का विचार उनके सामने रखा, उस पर अनेक बार चर्चा हुई और समिति कार्य का प्रारंभ हुआ।

स्त्री जीवन पर पश्चिमी विचारों का प्रभाव बढ़ रहा था। एक ओर स्त्री चार दीवारों में बंद थी- सामाजिक चेतना नष्ट हुई थी। अति उन्मुक्त अवस्था व अतिबद्ध अवस्था के दोषों से मुक्त संतुलित जीवन का विचार करने की दृष्टि से ऐसे संगठन की नितांत आवश्यकता थी। स्त्री में स्वाभिमान, देशाभिमान, स्वकर्तव्य, स्वसंरक्षण क्षमता निर्माण करने के लिए समिति कटिबद्ध हुई।

महिलाओं को चार दीवारों के बाहर परिवार के लोगों के बिना घुमना जिस काल में निषिद्ध व निंदनीय माना जाता था उस समय वं. मौसीजी ने इस संगठन के माध्यम से तरुणियों द्वारा खुले मैदान में शारीरिक कार्यक्रम करवाये और स्पष्ट रूप से समाज में यह विचार प्रस्तुत किया कि स्त्री अब अबला नहीं रही। वह स्वामिनी, मानिनी, तेजस्विनी राष्ट्रसेविका बनकर समाज को प्रभावित कर रही है।

१९४७ तक महाराष्ट्र, विदर्भ, मराठवाडा, खानदेश, मध्यप्रदेश, सिंध, पंजाब, जम्मू कश्मीर, गुजरात, आंध्रप्रदेश आदि स्थानों पर कार्य प्रारंभ हुआ। लगभग २४० शाखाएं थी। शिशु से लेकर प्रौढ़ा तक बहनें दैनिक शाखा में आती थी। योगचाप, दंड, छुरिका, व्यायाम पद्धति, व्यायाम योग आदि शारीरिक के साथ गीत, बौद्धिक आदि का भी आयोजन शाखाओं में होता था।

विदर्भ में कार्य का प्रारंभ हुआ। अतः महाराष्ट्र व मध्य प्रदेश में कार्य निर्माण होना स्वाभाविक था। वं. मौसीजी के मन में प्रेरणा जगी थी वैसी ही पुणे में वं. ताई आपटे, भंडारा में मा. नानी कोलते के मन में भी जगी थी। कुछ कार्य भी उन्होंने प्रारंभ किया था। परंतु राष्ट्र सेविका समिति के कार्य की जानकारी उन्हें प्राप्त हुई तब अपना कार्य उसमें विना शर्त विलीन कर दिया। विदर्भ में काकू परांजपे, इंदिराबाई वेखंडे, कमलाबाई नागले, वेणुताई कलमकर, नानी कोलते आदि महाराष्ट्र में इंदिराबाई दिवेकर, काशीताई कुलकर्णी, काकू रानडे, जिजी केतकर, ताई आगाशे, मध्यप्रदेश में सुशीलाताई अंबर्डेकर, गुजरात में इंदिराबाई काणे आदि अनेक महिलाओं द्वारा कार्य प्रारंभ हुआ।

उन दिनों महिलाओं का घर से बाहर जाना, सामाजिक कार्य में जुटना कठिन था। फिर भी इन महिलाओं ने सम्पर्क के माध्यम से घर-घर जाकर कार्य बढ़ाया।

तत्त्व - (१) हिन्दुत्व ही इस देश का राष्ट्रीयत्व है। (२) हमारी पुरातन संस्कृति का प्रतीक भगवा ध्वज हमारा गुरु है। (३) एकचालिकानुवर्तित्व 'परिवार भावना' पर आधारित कार्यपद्धति है।

सूत्र - स्त्री राष्ट्र की आधारशक्ति है, इस पर समिति की बौद्धिक रचना है, हमारी गौरवमयी हिन्दु संस्कृति, उसकी विशेषता उसके प्रतीक, संगठन और संस्था आदि विषय भी रहते है।

पांच राष्ट्रीय उत्सव - (१) वर्ष प्रतिपदा-विक्रम संवत् का प्रथम दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा (२) गुरुपौर्णिमा (३) रक्षाबंधन-श्रावण पूर्णिमा (४) विजयादशमी (५) मकर संक्रमण - १४ जनवरी मनाये जाते हैं। नेतृत्व के लिए झांसी की रानी - **लक्ष्मीबाई जन्म**-कार्तिक कृष्ण १४ - बलिदान दिन ज्येष्ठ शु. ७ कर्तृत्व के लिए देवी अहल्यबाई होळकर (जन्म-ज्येष्ठ कृ. ७ मृत्यु-श्रावण कृ. १४) व मातृत्व के लिए जिजामाता (जन्म पौष पौर्णिमा-मृत्यु-ज्येष्ठ कृष्ण

९) इनका आदर्श रखा गया। उनके व उनके सदृश चरित्र होने वाली प्रांतीय महत्व की महिलाओं के जन्म दिन स्मृति दिन मनाये जाने लगे। ये कार्यक्रम समिति ने सभी महिला संस्थाओं के साथ मिलकर करने का आग्रह भी वं. मौसीजी ने किया।

समिति का पहला प्रशिक्षण वर्ग १९३८ में वर्धा हुआ। ४० दिन के वर्ग में कार्य की पूरी जानकारी दी जाती। १९४५ में प्रथम अ.भा. बैठक मुंबई में हुई। तब शिक्षा क्षेत्र, उद्योग मंदिर का विचार हुआ। मिरज में पहला अ.भा. सम्मेलन हुआ। संख्या १५०० थी। कार्य तेजी से बढ़ रहा था। उत्साह, उमंग थी परंतु...

१९४८ में म. गांधीजी की हत्या अचानक हुई। अत्यंत दुर्दैवी इस घटना से देश का वातावरण बदल गया। जाति विद्वेष भड़का, लूटपाट आगजनी की घटनाओं का दौर चला। संघ पर प्रतिबंध लगाया गया। समिति पर प्रतिबंध नहीं था परंतु ऐसे दूषित वातावरण में अनेक सेविकाओं को भयानक कष्ट हुए। अतः समिति का कार्य स्थगित रखा गया। दमन चक्र के कारण शाखाएं मैदान पर चलना कठिन था परंतु कहीं शारदा मंडल, भगिनी मंडल, भजन मंडल आदि माध्यमों से कार्य चलता रहा। सामान्यजनों तक अपने विचार पहुंचाने के लिए वं. मौसीजी ने श्री रामायण प्रवचन प्रारंभ किये। अनेक सेविकाओं को प्रेरित किया। ऐसे प्रवचनकर्त्रीयों में एकसूत्रता रहे इसलिए उनके मार्गदर्शन हेतु एकत्रीकरण भी किये। महाभारत, भागवत, शिवचरित्र आदि विषय बाद में आये। संघ पर लगाया गया प्रतिबंध हटाने हेतु स्थान-स्थान पर अपनी बहनें मुख्य मंत्रियों से मिली-मोर्चे निकाल कर अपना निवेदन भी उन्होंने दिया। वार्तापत्र चक्रमुद्रित करना, बांटना पहुंचाना यह कार्य भी सेविकाओं ने किया। सत्याग्रह करने वाले स्वयंसेवकों का अभिनंदन करना उनके परिवार वालों का मनोबल रखने हेतु मिलते रहना आदि में सेविकाओं का काफी सहयोग था।

संघबंदी हटने पर समिति का कार्य भी पूर्ववत् प्रारंभ हुआ। अनेक युवतियों के विवाह हुए थे। सूत्र खंडित हुआ था। फिर भी कार्य पुनः प्रारंभ हुआ। वातावरण भयमुक्त होने के लिए कुछ समय लगा। इन्हीं दिनों में कार्य को ईश्वरीय अधिष्ठान चाहिए इसलिए शक्तिरूपिणी अष्टभुजा देवी को उपास्य देवता माना गया। परंतु अंधश्रद्धा ना बढ़े यह भी देखा गया। यह मूर्ति पूजा नहीं गुणों की पूजा है यह भी स्पष्ट किया गया।

१९५० में अपना संविधान अस्तित्व में आया। स्वाधीनता संग्राम का इतिहास सबके सामने आना चाहिए इस दृष्टि से चित्र प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। (१) १८५७ से १९४७ (२) वेद काल से आज तक ध्वज का इतिहास (३) रामायण काल से आज तक भारत के मानचित्रों में परिवर्तन (४) घरौंदा प्रतियोगिता का प्रात्यक्षिक ये विषय थे। तबसे लेकर समिति ने अनेक चित्रप्रदर्शनी आयोजित की है। छ.शिवाजी, स्वा. विवेकानंद, भ. निवेदिता, रामायण, झांसी रानी, वंदे मातरम्, मातृशक्ति की झलकियां, धर्मांतरण, रानी चेन्नम्मा-स्त्री की दशा और दिशा ऐसे विविध विषयों पर प्रदर्शनी ने नया इतिहास निर्माण किया।

१९५३ तक पुनः काम स्थिर हुआ तब स्त्री जीवन विकास परिषद का आयोजन मुंबई में हुआ। अनेक स्त्रीरोगतज्ञ को आमंत्रित कर शारीरिक व्यायामों के बारे में विचार विनिमय हुआ। उनकी सलाह के अनुसार कुछ परिवर्तन किये गये- योगासन योगाभ्यास का आग्रह रखा गया। उसी समय अपना एक मुखपत्र होना चाहिए- अपनी ही सेविकाओं के लेखन गुणों को उत्तेजन मिलना चाहिए इस हेतु से 'सेविका प्रकाशन' और उसके माध्यम से 'सेविका' वार्षिक प्रारंभ किया गया। हिन्दी, मराठी, गुजराती भाषाओं में अब 'राष्ट्रसेविका' वार्षिक प्रकाशित होने लगा। हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी के साथ-साथ अनेक प्रांतों में प्रादेशिक प्रकाशन किये जा रहे हैं।

१९५८ - रानी लक्ष्मीबाई के बलिदान वर्ष की शताब्दि। अपना भवन होने की आवश्यकताएं प्रतीत होने लगी थी। इसलिये रानी लक्ष्मीबाई के नाम से एक संस्था पंजीकृत कर नासिक में शताब्दि महोत्सव के साथ-साथ 'राणी भवन' का उद्घाटन समारोह हुआ। उसमें वेदमूर्ति सातवलेकरजी के आशीर्वचन प्राप्त हुए। उसके पश्चात् १९६५ में देवी अहल्या मंदिर का नागपुर में समिति के केन्द्र कार्यालय के रूप में निर्माण हुआ। उसके पश्चात् वर्धा, मुंबई, भाग्यनगर, कर्णावती, बंगलोर, पुणे, लातूर आदि अनेक-अनेक स्थानों पर समिति द्वारा प्रेरित प्रतिष्ठानों का निर्माण हुआ। वहां वाचनालय, पुस्तकालय, स्वास्थ्य केन्द्र, उद्योग मंदिर, शिशु मंदिर, शिशु मंदिर अध्यापिका प्रशिक्षण केन्द्र व विविध छंद केन्द्रों का संचालन होता है। १९८२ में भारतीय श्रीविद्या निकेतन इस अ.भा. प्रतिष्ठान की स्थापना होने के पश्चात् बालिका शिक्षा को केन्द्र बिन्दु बनाया है।

वर्तमान विघटनकारी दिशाहीन कर्तव्य विस्मृत परिस्थिति में परिवार संस्था को सुदृढ़ रखने वाली स्नेहमयी, सामाजिक प्रतिबद्धता की प्रेरणास्रोत स्त्री का निर्माण होना आवश्यक है। पाठ्यक्रम में इसका विचार नहीं है परंतु अनौपचारिक शिक्षा व पाठ्येतर कार्यक्रमों के माध्यम से यह होना चाहिए। गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि प्रांतों में इस दृष्टि से कार्य प्रगति पथ पर है।

सामाजिक समरसता व सेवा के केन्द्र अपने प्रतिष्ठान बनें यह समिति की योजना है -

१९६२, १९६५, १९७१ के युद्धकाल में किसी भी प्रांत में बाढ़, अकाल, भूचाल जैसी नैसर्गिक आपत्तियों में व असम व कश्मीर के हिंदुओं की विकट अवस्था में समिति ने अपनी समयोचित भूमिका निभायी है। विस्थापित युवतियों के विवाह, युवकों की पढ़ाई या उद्योग के लिए आर्थिक सहाय्य किया। पीड़ित परिवारों को मिलकर उनका साहस बढ़ाया। अनेक स्थानों पर संस्कार केन्द्र

भी चलाये जाते हैं। उत्तर पूर्वांचल क्षेत्र की जनजातियों की ३५ बालिकाओं के लिए छात्रावास देवी अहल्या मंदिर में सेवा प्रकल्प के रूप में प्रारंभ किया। राष्ट्र विरोधी तत्व जहां हावी है उस क्षेत्र में राष्ट्रीय एकात्मता का विचार प्रबल होना आवश्यक है। इन बालिकाओं के माध्यम से उन देहातों में अपना विचार पहुंच सकता है. पहुंचा है। ऐसे और कुछ प्रकल्प प्रारंभ किये जायेंगे।

समिति कार्य का प्रचार व प्रसार के लिए कार्यकर्ता निर्माण की आवश्यकता पूर्ण करने हेतु दैनंदिन शाखाओं के साथ-साथ शिविर, प्रशिक्षण वर्ग, अभ्यास वर्ग, चर्चा सत्र प्रति वर्ष आयोजित किये जाते हैं। अपने राष्ट्र जीवन के लिए महत्वपूर्ण कार्य करने वाले महानुभावों के जन्म-स्मृति दिन की विशेष तिथियां देश भर में मनायी जाती हैं। प्रथम स्वाधीनता संग्राम, स्वामी विवेकानंद, भगिनी निवेदिता की जन्म शताब्दि, वंदे मातरम् गीत निर्मिति शताब्दि, जीजामाता स्मृति त्रिशताब्दि, गोरक्षा हेतु व दूरदर्शन के अश्लील, स्तरहीन कार्यक्रम व विज्ञापन के विरोध में हस्ताक्षर संग्रह, निवेदन ज्ञापन, जम्मू, कश्मीर बचाओ अभियान, राष्ट्रीय एकता अखंडता अभियान, बंकिमचंद्र की स्मृतिशताब्दि, स्वदेशी भावजागरण, देवी अहल्याबाई स्मृति द्विशताब्दि आदि विशेष कार्यक्रमों का आयोजन समिति समय-समय पर करती आयी है।

समाज में भिन्न-भिन्न रुचि के लोग हैं। वे संगठन की विचारधारा से सहमत होते हुए भी संगठन प्रक्रिया में जुड़ नहीं सकते। ऐसे लोगों को नाट्य, संगीत, लेखन आदि माध्यमों से जोड़ने के लिए स्लाइड, विडिओ, ऑडिओ कैसेट, दृक् श्राव्य संगीत, अभिनय प्रयोग, पथ नाट्य आदि माध्यम अपनाये हैं। लेखिका, वक्ता बहनों की बैठकों में क्या लिखना क्या बोलना आवश्यक है इसकी चर्चा भी की जाती है। आधुनिक काल के Milk Bank व Fast Food जैसे विषयों पर भी चर्चा सत्र लेकर उनके परिणामों से समाज को अवगत कराने का कार्य किया जा रहा है। महिलाओं के लिए शास्त्रोक्त भजन, पाऊल भजन, भारूड, पौरोहित्य वर्ग, योगासन वर्ग, गीता-ज्ञानेश्वरी अभ्यास वर्ग आदि उपक्रम भी अपनाये जाते हैं। कीर्तन यह महाराष्ट्र के ग्रामीण क्षेत्र में लोकशिक्षण का विशेष माध्यम है। उसमें भी महिलाओं को विशेष रूप से प्रशिक्षित किया जा रहा है। उद्योग मंदिरों के माध्यम से स्वदेशी भाव से कुटिरोद्योगों को प्रोत्साहन एवं महिलाओं को रोजगार के साधन उपलब्ध कराये जाते हैं।

विदेश में भी समिति का कार्य प्रारंभ हुआ है। वहां संघ का काम देखकर प्रेरित हुई कुछ बहनें तथा भारत से जाने वाली कुछ सेविकाओं ने समिति कार्य हिन्दु सेविका समिति, सनातन धर्म सेविका समिति आदि नामों से कार्य प्रारंभ किया है। स्वतंत्र शिविर, उत्सव बैठकें होती हैं। वैसी ही वहां की परिस्थिति के अनुसार परिवार शाखाएं भी लगती हैं। कुल मिलाकर कार्य प्रगतिपथ पर है।

विश्व में समिति कार्य

एक बार १९७२ में आदरणीय पांडुरंग शास्त्री आठवले नासिक में समिति के एक कार्यक्रम में उपस्थित थे। वंदनीया मौसीजी भी थी। समिति का परिचय देते हुए हिन्दु महिलाओं का अ.भा. संगठन ऐसा कहने पर शास्त्री जी ने कहा यह अ.भा. नहीं वैश्विक महत्व का संगठन है इसका अनुभव आयेगा। तब भारत से बाहर समिति का कार्य प्रारंभ करने की योजना ने निश्चित आकार नहीं लिया था। यहां की कुछ सेविका बहनें अपने बेटे बेटियों के पास थी अपने रिश्तेदारों के पास अन्य-अन्य देशों में जाती। कुछ सालों के बाद कुछ सेविकाओं का विवाह भारत से बाहर स्थायी हुए हितैषी या स्वयं सेवक बंधुओं से हुआ- जिनके द्वारा इस विस्तार कार्य का बीजारोपण हुआ। अन्य देशों में संघ कार्य प्रारंभ हुआ था। वहां इस कार्य की आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी। बहनों को भी महिलाओं का कार्य प्रारंभ करने की प्रेरणा हुई। १९७५ में इंग्लैण्ड के दो महत्वपूर्ण स्थान बर्मिंगहम और लीस्टर में 'हिन्दु सेविका समिति' नाम से समिति का कार्य प्रारंभ हुआ। भारत की पद्धति से कार्य धीरे-धीरे होने लगा। कार्य की रचना की दृष्टि से इंग्लैण्ड के ५ मंडल बनाये हैं जिनमें १९ शाखाएं चल रही हैं।

इंग्लैण्ड में ४-५ सालों से लगभग १०० सेविकाओं का प्रशिक्षण वर्ग लगाया जा रहा है। हर वर्ग का एक घोषवाक्य था- जैसे 'शक्ति का नाम ही नारी है।' सांस्कृतिक उत्सव, मासिक बैठकें आदि संगठन की दृष्टि से आवश्यक सभी कार्यक्रम मनाये जाते हैं। अधिकाधिक युवतियों को इस कार्य से जोड़ने का प्रयास है।

केनिया में समय-समय पर भारत से शिक्षा क्षेत्र के या व्यवसायी लोग जाते हैं उनमें कुछ स्वयं सेवक भी हैं। उन परिवारों की महिलाओं ने संघ का कार्य देखते हुए समितिका कार्य प्रारंभ किया। साप्ताहिक, मासिक शाखाओं का दौर चलता रहा। शिविरों का, उत्सवों का आयोजन भी समय-समय पर हुआ। १९९५ में हुए दरबान विश्व हिन्दू सम्मेलन के बाद द. अफ्रीका में बेनोनी में शिविर हुआ और शाखा प्रारंभ हुई।

अमरीका में वहां की जीवन रचना के अनुसार समिति की स्वतंत्र शाखा लगाना संभव नहीं होने के कारण परिवार शाखाएं लगती रहीं। परंतु धीरे-धीरे शाखाओं का स्वतंत्र रूप से विकास होगा ऐसी मानसिकता बन रही है। ३ शाखाएं हैं। दो परिवार शिविर भी हुएँ।

मॉरिशस में १९८६ में शाखाएं लगती थीं। बीच में कार्य खंडित हुआ था। अब पुनः २ शाखाएं चल रही हैं। डेनमार्क, हॉलैण्ड, जर्मनी, कनाडा, वर्मा, मलेशिया, न्यूजीलैण्ड आदि देशों में भी कहीं परिवार शाखा, कहीं सत्संग के माध्यम से कार्य का श्रीगणेश हुआ है।

विश्व संघ शिविर के पश्चात् समिति कार्य के लिए अनुकूल वातावरण निर्माण हुआ है। क्रमशः सभी देशों में कार्य का सूत्रपात होगा यह विश्वास है।

आद्य प्रमुख संचालिका वं. मौसीजी

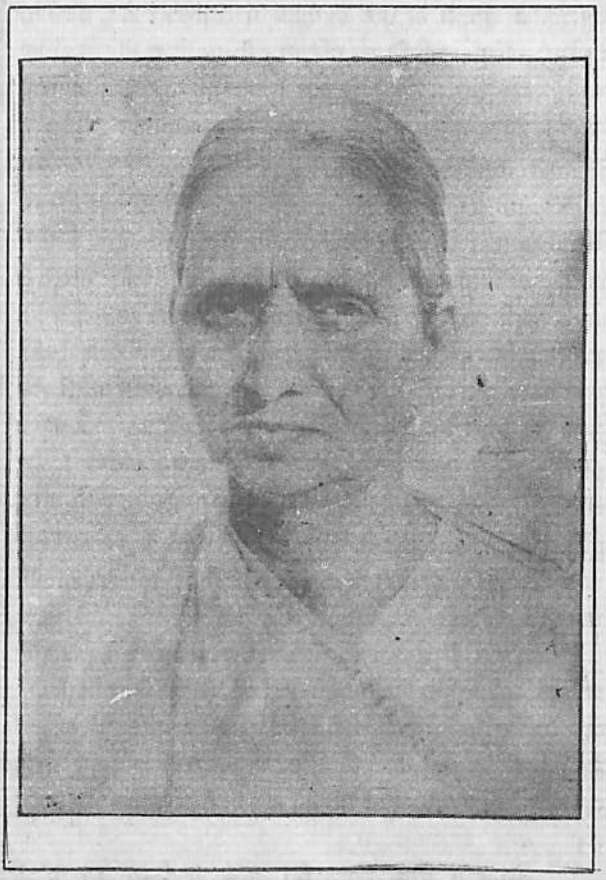

श्रीमती लक्ष्मीबाई केलकर उपाख्य मौसीजी अर्थात् मांसी ममता-स्नेह करने वाला यह व्यक्तित्व। भारत के सैंकड़ो महिलाओं ने उनके स्नेह का प्रत्यक्ष अनुभव किया है। अनेकों के जीवन की दिशा ही इस व्यक्तित्व ने बदल दी है। अनेक युवतियां महिलों को संगठन के दिव्य मंत्र से प्रेरित किया है। अपने ही घर गृहस्थी में रमने वाली बहनों को 'सुशीला सुधीरा समर्था समेताः, स्वधर्मे स्वमार्गे परम श्रद्धया।' में विश्वास तथा श्रद्धा निर्माण जीवन भर अधिक से अधिक समय राष्ट्र कार्य मे लगाने करने की प्रेरणा दी। ऐसे व्यक्तित्व को वंदनीय कहा जाता है। वंदनीय इसलिए नहीं कि उनके पास बड़ी उपाधियां थी या वह धनसम्पन्न थी। न तो वह कोई सिद्धि जानती थी, न मंत्र, तंत्र की विद्या। यह तो थी एक सरल साधा गृहस्थी जीवन व्यतीत करने वाली स्त्री, जिसका सम्पूर्ण जीवन एक चुनौती था। परंतु बाल्यकाल में ही परिवार के हर सदस्य से प्राप्त सामाजिक तथा राष्ट्रीयं संस्कारों के कारण उन्होंने यह चुनौती सहज स्वीकार ही नहीं की, परंतु अद्वितीय कार्य कर दिखाया। राष्ट्र सेविका समिति की स्थापना, अखिल भारत वर्ष में उसका प्रसार और निर्माण की हुई कार्य पद्धति, उनके मातृवात्सल्ययुक्त व्यवहार ने ही उनको वंदनीय बनाया।

व्यक्तिगत जीवन -

वं. मौसीजी का जन्म आषाढ़ शुद्ध दशमी मी ५ जुलै १९०५ को नागपुर के दाते परिवार में हुआ। उनका जन्म आवरण सहित हुआ। आवरण खोलने के पश्चात् ताजेतरोजे प्रफुल्ल कुसुम जैसी बालिका को देखकर डॉक्टर परांजपेजी ने ही उनका नामकरण 'कमल' कर दिया। अनासक्त भाव से ही उन्होंने जीवन व्यतीत कर नाम सार्थक किया।

दाते परिवार लौकिकार्थ से धनी नहीं था, परंतु वैचारिक धन अमाप था। छोटी कमल ने बाल्य काल में ही अपनी ताईजी (दाई) से सुश्रुषा का गुण प्राप्त किया था। पिताजी से तन मन से समाज कार्य का पाठ लिया। माँ निर्भय, समाजप्रिय तथा राष्ट्र प्रेमी थी। लो. तिलक जी की तस्वीर घर में रखकर, आस पड़ोस की महिलाओं को एकत्रित कर 'केसरी' समाचार पत्र का वाचन करती थी। उन दिनों सरकारी नौकरी करने वाले केसरी नहीं खरीद सकते थे। अतः कमल की माँ अपने नाम पर केसरी मंगवाती थी। यह निर्मल राष्ट्रप्रेम पाया उन्होंने अपनी माँ से। ताईजी के साथ गोरक्षा हेतु भिक्षा मांगने तथा उनके साथ ही कथा, कीर्तनों में जाकर उसका मन अभिभूत हुआ। उसका प्रमाण भी उनके बाल्यकाल में दिखाई दिया। उस समय बालिका विद्यालय का अभाव होने के कारण कमल को मिशनरी विद्यालय में भेजा गया। विद्यालय की शिक्षा और घर की शिक्षा में तफावत होने से उसके बाल मन में सघर्ष चलता था। एक दिन संघर्ष प्रत्यक्ष में आया। विद्यालय में प्रार्थना के समय आंखे बंद रखने को कहा जाता था। एक दिन कमल ने बीच में ही आंखें खोली। आंख खोलने के कारण उसे डांटा गया। उसने तुरंत पूछा 'आप को कैसे मालूम मेरी आंखे खुली है ?' कमल के इस प्रश्न ने अध्यापिका को चौंका दिया। और उसका उस विद्यालय में जाना बंद हुआ। आगे की शिक्षा 'हिन्दु मुलींची शाळा' हिन्दु प्रेमी व्यक्तियों द्वारा स्थापित, इस विद्यालय में हुई। कमल की शिक्षा चौथी तक ही हो पायी थी कि वरसंशोधन प्रारम्भ हुआ। बचपन से ही अपने विचार, आत्मविश्वास से प्रतिपादित करती थी। वाचन, श्रवण का मन पर गहरा प्रभाव होता था और नीरक्षीर, विवेक, न्याय से जो जीवन उपयुक्त है उसे वह स्वीकार कर लेती थी। दहेज प्रथा की बली बंगाल की स्नेहलता के पत्र ने उन्हें सचेत किया और उन्होंने सभी को बिना दहेज दिये और लिए विवाह का आग्रह किया।

विवाह सम्पन्न होने क साथ-साथ कमल १४ वर्ष की आयु में २ बच्चों की माँ भी बन गई थीं। विवाह में कमल का नाम लक्ष्मी रखा गया था। लक्ष्मी के पति - पुरुषोत्तम राव केलकर वर्धा में

प्रसिद्ध वकील थे। उनके रहन सहन और विशिष्ट स्वभाव के कारण लोग उन्हें सरदार कहते थे। कमल को वैवाहिक जीवन का सुख केवल एक तप का ही नसीब हुआ था। राजक्षमा के कारण वह अल्पायु में ही परलोक सिधारे। इस समय लक्ष्मी की कुल आठ संतान थीं। २ बेटियां तथा ६ बेटे। (अकाली) पति निधन का वज्राघात, बेटे बेटियों की, गृहस्थी की जिम्मेदारी लक्ष्मी दिङमूढ़ सी हो गई। परंतु उनकी जिठानी उमाबाई ने बड़ी बहन के प्यार से उनका ढांढस बांधा और उनके साथ खड़ी हो गईं।

लक्ष्मी ने संयम से अपने आप को दुःख से बाहर निकाला और जमीन जुमला घर के आर्थिक व्यवहार की जिम्मेदारी सम्हाली। उमाबाई ने घरेलू व्यवहार तथा बच्चों की देखभाल की जिम्मेदारी ली।

विवाहोत्तर जीवन -

पति के रहते हुए भी लक्ष्मी अपने गृहस्थी कर्तव्यों को निभाते हुए कांग्रेस की प्रभात फेरी, पिकेटींग आदि कार्यक्रमों में भाग लेती थीं। वैसे उस समय समाज महिलाओं के किन कार्यों से सहमत नहीं था। उस समय तो विधवा होते ही महिलाओं का केशवपन कर उन्हें चार दिवारों में बंद किया जाता था। समाज में सबके सामने आना भी उनके लिए मना था। ऐसे समय लक्ष्मी का व्यवहार समाज के प्रतिकूल प्रवाह में तैरने जैसा ही था। पतिनिधन के पश्चात् भी उनका वर्धा के गांधी आश्रम में जाना शुरू था। प्रार्थना के समय गांधी जी द्वारा दिए विचारों ने कि महिलाओं ने सीता का आदर्श अपने सामने रखना चाहिए, सीता के जीवन से ही राम की निर्मिति होती है, उनको अन्तर्मुख बनाया। अब रामायण का अध्ययन शुरू किया। स्त्री की वास्तविक भूमिका को सीता में खोजने के लिए।

महिलाओं की स्थिति तो वह आंखों से देखती थीं। पढ़ती थीं। उन पर लादे हुए बंधनों का स्वयं अनुभव करती थीं। महिलाओं के अपहरण के वृत्त समाचार पत्रों में पढ़ती थीं। जीवनपद्धति में परिवर्तन आ रहा था। स्त्री की ओर देखने का दृष्टिकोण भी बदल रहा था। एक ओर स्त्री को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा था। केशवपन पद्धति को बंद करने का प्रयास भी हो रहा था। स्त्री सामाजिक कार्यों में सहयोग भी देने लगी थी। क्या यह अचानक आया हुआ ज्वार है ? क्या यह अन्त तक निभा पाएगी ? स्त्री एक स्वतंत्र व्यक्ति है, यह बीज भी बोना प्रारंभ हुआ था। अब तक पत्रिकाओं के मुख पृष्ठ पर पत्रिकाओं में महिलाओं के विषयों में चर्चा द्वारा, समाज का महिलाओं की ओर देखने का दृष्टिकोण बदल रहा है यह भी स्पष्ट हो रहा था। समाज द्वारा महिला के इस स्थिति का उठाया जाने वाला लाभ देखकर इसके विरोध में महिलाओं को निर्भयता से किस प्रकार डटकर खड़ा होना आवश्यक है यह वे अपने जीवन में अनुभव कर रही थीं।

बंगाल में कुसुम माला का अपहरण करते समय गुंडों ने उसके पति को दिये हुए उत्तर से 'कानून तुम लोगों के लिए है, हमारा कानून हमारे बाहुबल में है' और वे उसे घसीटकर ले गये। उस समय कई घटनाएं महिलाओं की असुरक्षितता सिद्ध करती थी। श्रद्धानंद जी की हत्या ने हिन्दुओं की वास्तविक स्थिति को उनके सामने खोल कर रख दिया। दिन रात मन में इन्हीं विचारों का मंथन चल रहा था और वह मार्ग ढूंढ रही थीं स्त्री के स्व संरक्षण क्षमा होने का।

लगभग इसी समय अपने पुत्र मनोहर और दिनकर के माध्यम से उनका परिचय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से हुआ और महिलाओं के लिए भी इसी मार्ग से जाना उचित होगा ऐसा लगा। उनके मन में डॉ. हेडगेवार जी से मिलने का विचार आया और संयोगवश मौका भी शीघ्र ही प्राप्त हुआ। अपने बेटों द्वारा उन्हें डॉ. हेडगेवार जी के नगर आगमन और स्वयंसेवकों के अभिभावकों से मिलने के उनके कार्यक्रम का पता चला। उन्होंने मनोहर से कहा 'मैं तुम्हारी अभिभावक के नाते डॉ. जी से मिलना चाहती हूं।' उन दिनों अभिभावकों में पिता या घर का पुरुष ही आता था। बच्चों ने कहा अधिकारियों से पूछना पड़ेगा और अनुमति मांगने पर उन्हें वहं मिल गई। और वे कार्यक्रम में उपस्थित रहीं। वार्तालाप के लिए अलग से समय मांगने पर डॉ. साहब ने स्वीकृति दी और वं. मौसीजी ने महिलाओं के कार्य के बारे में अपने मन के विचार रखे डॉ. साहब के सामने रखे। मौसी जी ने कहा महिलाओं को भी राष्ट्रीय दृष्टि से संघटित रूप में जागृत होने की आवश्यकता है तथा स्त्री केवल व्यक्ति के नाते नहीं अपितु सामाजिक दृष्टि से भी सुरक्षित होना आवश्यक है। वं. मौसीजी की तेजस्विता तथा दृढ़ता को देखकर डॉ. जी के मन में विश्वास जागृत हुआ और उन्होंने सहकार्य करने का वचन दिया। मौसीजी के चिंतन और डॉ. जी के मार्गदर्शन ने प्रत्यक्ष रूप लिया और राष्ट्र सेविका समिति का कार्य वर्धा में प्रारंभ हुआ।

महिलाएं नित्य, प्रतिदिन निश्चित समय पर एकत्रित आने लगी और मातृभू का चिंतन होने लगा। प्रार्थना होने लगी मन में हिन्दु भाव हो, शक्ति बुद्धि हमें प्राप्त हो, सुशीला सुधीरा हम बने, माँ तुम्हारे लिए।

महिलाओं का प्रतिदिन बाहर जाना, सैनिकी पद्धति का प्रशिक्षण लेना समाज के लिए अद्भुत था। विरोध भी हुआ परंतु वं. मौसीजी अडिग रही। कार्य धीरे-धीरे वृद्धि गत हो रहा था। परंतु गृहस्थी के साथ-साथ यह कार्य करना था। रस्सी पर चलने की कसरत थी जो अति सावधानी से करनी थी।

स्वयं को निरंतर संगठन के ढांचे में ढालने का उनका प्रयास होता था। प्रारंभ में उन्हें भाषण देने का अभ्यास नहीं था। वक्तृत्वशैली नहीं थी। परंतु समाज को मार्गदर्शन करने हेतु अपने

विचार रखने की आवश्यकता महसूस होते ही वे इस प्रयत्न में जुट गई। विषय के बिन्दु निकालना, उनको कैसे प्रस्तुत किया जाए इस पर विचार करती थी। धीरे-धीरे साहस बढ़ा, आत्मविश्वास हुआ और वे एक उत्कृष्ठ वक्ता बन गई। मधुर आवाज, स्पष्ट उच्चारण, भावस्पर्शी शब्द शैली इनका मनोहारी संगम उनके वक्तृत्व में था। उनकी वाणी मंत्रमुग्ध करने वाली थी।

शाखा शाखाओं में जनसम्पर्क हेतु जाना पड़ता था। तो वं. मौसीजी ने साईकिल चलाना सीख लिया, तैरना भी उन्होंने सीखा था। वं. मौसीजी की बेटी वत्सला को पढ़ने में रुचि थी, तो घर में शिक्षक बुलाकर उसकी पढ़ाई की व्यवस्था की। परंतु इसके साथ वर्धा में विद्यालय हो इसलिए अपने देवरानी को प्रोत्साहित किया और विद्यालय में पढ़ाने हेतु अन्य शहरों से आयी हुई महिलाओं को कालिंदीताई एवं वेणुताई का रहने का प्रबंध अपने घर में किया। इन दोनों ने उन्हें समिति कार्य में भी सहयोग दिया।

वं. मौसीजी ने संगठन की चौखट में ध्येय धोरण के रंग भरे थे वे उनके अपने स्वयं के विचार से थे। उन्हें लगता था कि समिति में दी जाने वाली शारीरिक शिक्षा स्त्री की निसर्गदत्त क्रिया या शारीरिक रचना एवं स्वास्थ्य के लिए बाधक तो नहीं है ? शारीरिक शिक्षा निसर्गदत्त कर्तव्य था। शाररिक रचना के लिए बाधक तो नहीं है। उन्होंने कुछ शिक्षिकाओं से बातचीत भी की कि "शारीरिक के कारण उन्हें प्रसूति के समय कुछ परेशानी तो नहीं हुई। १९५३ में स्त्री जीवन विकास परिषद आयोजित कर उन्होंने डॉक्टरों को एकत्रित किया तथा महिलाओं का सौष्ठव कायम रहे इस विषय पर परिचर्चा आयोजित की। योगासन अत्युत्तम है यह राय मिलने के पश्चात् वं. मौसीजी स्वयं योगासन सीखीं। योगमूर्ति जनार्दन स्वामीजी को अनेक स्थानों पर आमंत्रित कर अनेक सेविकाओं को योगासन का प्रशिक्षण दिलवाया। समिति के शिक्षा वर्गों के अभ्यासक्रम में योगासन का समावेश किया गया।

सेविका कैसी हो ? यह कल्पना उनके मन में स्पष्ट थी। सेविका का संतुलित व्यक्तित्व ही समाज के लिए पोषक और प्रेरक है, अतः अष्टभुजा देवी की प्रतिमा आराध्यदेवता के रूप में सेविकाओं के सामने रखी। देवी के आठ हाथों के आयुधों के बारे में जो वर्णन वह करती थी उनकी अलौकिक प्रतिभा तथा उत्कृष्ठ चिंतन का परिचायक होता था।

मातृत्व यह स्त्रीत्व के विकास की चरम सीमा है। यह केवल शारीरिक या जैविक प्रक्रिया नहीं तो उच्च कोटि की मानसिक अवस्था है। वह केवल जन्म दिये हुए अपने बच्चे की मां नहीं तो सम्पर्क में आने वाले सभी के लिए उसका वात्सल्य, क्षमाशील एवं मार्गदर्शक भाव बना रहे यह नितांत आवश्यक है। मातृत्व का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण जीजामाता। शिवबा को ही नहीं तो सम्पूर्ण प्रजा को मातृवत् स्नेह दिया। ऐसी शिक्षा और प्रेरणा दी कि देश के इतिहास ने एक नया मोड़ लिया। अतः मातृत्व के लिए जीजा माता का आदर्श रखा। कर्तव्य के लिए देवी अहल्याबाई होलकर का तथा नेतृत्व के लिए रानी लक्ष्मीबाई का जीवन महिलाओं के सामने आदर्श के रूप में रखा। इतिहास में यह एक बेजोड़ उदाहरण है। ममता की प्रत्यक्ष मूर्ति जब राष्ट्र की आवश्यकता थी तो ममता रूपी बालक को पीठ पर बांध लिया।

प्रातः स्मरण, देवी अष्टभुजा स्तोत्र पूजा, नमस्कार ऐसी अनेक रचनाएं उन्होंने करवा ली। महिलाओं की संगीत रुचि एवं भक्तिभाव ध्यान में रखते हुए भजन मण्डल के लिए प्रोत्साहित किया।

समिति द्वारा अनेक प्रदर्शनियों का आयोजन करवाया। चित्रकारों को एकत्रित कर उनके सामने प्रदर्शनी के विषय रखे और चित्र निकालने का आह्वान किया। 'हम कला के द्वारा राष्ट्रीय विचार धारा पुष्ट करने में सहयोग दे सकते हैं। यह नई दृष्टि हमें प्राप्त हुई' ऐसा एक चित्रकार ने कहा।

वं. मौसीजी परम रामभक्त थीं। उन्होंने रामायण ग्रंथ का अध्ययन किया तथा रामायण में राष्ट्रीय दृष्टिकोण दिखाया। सम्पूर्ण रामायण १३ दिनों में प्रवचन के माध्यम से कहती थी। रामायण पर उन्होंने लगभग १०८ प्रवचन दिए। राम भगवान नहीं राष्ट्रपुरुष हैं। उसकी पूजा नहीं अनुकरण करना चाहिए। यह उनका आग्रह रहता था। आज उनके वक्तृत्व की अमोल निधि 'पथदर्शिनी श्रीराम कथा' के रूप में हमारे पास है।

वं. मौसीजी की स्मरणशक्ति विलक्षण तेज थी। एक बार परिचय होने के बाद वह उस व्यक्ति को भूलती नहीं थी। गीत भी उनको मुखोद्गत होते थे। जीवन के आखरी समय में जब वे चिकित्सालय में भर्ती थी तो शुश्रुषा के लिए आने वाली बहनों से भजन गीत बोलने को कहती। यदि कोई गीत बीच में भूल जाय तो तुरंत आगे के शब्द बताती थीं।

पत्र व्यवहार से सभी के साथ निरंतर सम्पर्क बनाए रखती थीं। निरंतर प्रवास भी करती थीं। पढ़ने की रुचि होने से अध्ययन भी बहुत था। सेविकाओं से मिलने पर उन्होंने कौन सी किताबें पढ़ी इसके बारे में अवश्य पूछती थी।

वं. मौसीजी का रहन सहन अत्यंत साधा था। उनका हर कार्य अत्यंत व्यवस्थित होता था। भगवान के पास रांगोली निकालना, पूजा करना इसमें उनकी अपनी एक विशेषता थी। हर उत्सव में चाहे वह शाखा का हो या घर का सुशोभन ऐसा हो जिसमें संस्कृति का प्रदर्शन हो यह उनका आग्रह रहता था।

हर परिवार में एक राष्ट्रीय कोना हो, घर के लोग दिन में कभी एकत्रित होकर समाज, देश के बारे में सोंचे, चर्चा करें ऐसा भी उनका आग्रह हुआ करता था।

वर्ष प्रतिपदा के दिन अपने घरों पर हमारी संस्कृति का प्रतीक भगवा ध्वज फहराया जाए यह उनका ही आग्रह था। पूजा

के लिए भी छोटे ध्वज उन्होंने ही बनवाए। वंदे मातरम् माँ की प्रार्थना है अतः वंदेमातरम् कहते समय हाथ जोड़ने की प्रथा भी उन्होंने ही शुरू की।

वं. मौसीजी के जीवन का एक प्रसंग। एक शाखा में वं. मौसीजी आने वाली हैं ऐसा उन सेविकाओं को पता चलते ही उन्होंने उनके स्वागत की जोरदार तैयारियां प्रारंभ की। वं. मौसीजी पर रचा गीत सुस्वर गाने की तैयारी की। और उस दिन वह गीत गाया भी गया। वं. मौसी जी सुन रही थीं। बौद्धिक के समय उन्होंने सेविकाओं से अनेक प्रश्न पूछे और अंत में कहा कि इस गीत में एक परिवर्तन चाहिए। गीत में कहा गया है कि हम मौसीजी के कार्य के लिए समर्पित होंगे। हमें मौसीजी के नहीं, किसी व्यक्ति के कार्य में नहीं अपितु राष्ट्र सेविका समिति के कार्य के लिए समर्पित होना है। ऐसे इस राष्ट्र समर्पित भाव ने ही उन्हें वंदनीय बनाया। यह शांत, पवित्र तेजस्वी जीवन २७ नवम्बर १९७८ कार्तिक-मार्गशीर्ष कृष्ण द्वादशी युगाब्द ५०८० के दिन पंचतत्व में विलीन हो गया।

अध्ययन हेतु पुस्तकें

कर्मयोगिनी वं. मौसीजी - सेविका प्रकाशन
दीपज्योतिर्नमोस्तुते - सेविका प्रकाशन

हे राष्ट्रहित अर्पित सुमन तुम

हे राष्ट्रहित अर्पित सुमन तुम
लो पुनः अवतार ।।ध्रु
अर्ध मार्ग पर छोड़ गया रथी
किंतु अटल था रथ का सारथी
ध्येय मार्ग की बागडोर से
किया स्वप्न साकार।।१।।

रामायण के स्वर को लेकर
स्वप्न सजाया रामराज्य का
जनकनंदिनी तेज तपस्विनी
हुयी शक्ति साकार।।२।।

अमर त्याग की नीव बिछाकर
मार्ग दिखाया वैभव का यह
चलकर हम सब उसी मार्ग पर
करे राष्ट्र उद्धार ।।३।।

तेरी - दिव्यतम तपः ज्योति से
प्रज्वलित हो दीप दीप से
अखण्डित इस ज्योतीमाल से
आलोकित संसार।।४।।

स्त्री एक प्रेरक शक्ति है। वह चेतनायुक्त शक्ति है। जो व्यक्ति के रूप में परिवार की और समाज के रूप में राष्ट्र की चेतना बनती है। राष्ट्र की यही चेतना आज सुप्त पड़ी है। इसलिए पुरुषों के पराक्रम का पवित्र प्रभाव समाज पर नहीं रहा।

स्त्री एवं पुरुष दोनों के सहयोग से हुआ विकास ही राष्ट्र के लिए पोषक होता है। आज तक अनेक विकास योजनाएं इस सहयोग के अभाव से एकांगी और अधूरी हुई है।

परिवार रथ की स्त्री एवं पुरुष ये दो पहिये नहीं तो पुरुष रथी एवं स्त्री सारथी है।

- वंदनीया मौसीजी

शांत, स्निग्ध नंदादीप - वं. ताई आपटे

[द्वितीय प्रमुख संचालिका]

वं. सरस्वतीबाई आपटे उर्फ ताईजी आपटे बड़ा अद्‌भुत चरित्र ! सीधासादा ! समिति में हम गीत दोहराते हैं -

सतेजोऽस्तु नित्यं शांतपावित्र्यस्य

दिव्य चारित्र्यस्य नंदादीपः

इसका साक्षात् रूप अर्थात् वं. ताईजी। उनके रूप में यह पंक्तियां हमने न केवल देखी अपितु उसका अनुभव किया।

वं. ताईजी का जन्म कोकण में केळशी तहसील में आंजर्ले गांव में हुआ। लोकमान्य तिलक जी उनके पिता के मामा थे । विरासत से राष्ट्रभक्ति का संस्कार ले कर आयी इस बालिका का नाम 'तापी' अर्थात् तापहरण करने वाली ऐसा रखा गया। ताईजी ने वह नाम सार्थ किया। केवल अपने मायके एवं ससुराल के लोगों के लिये नहीं, अपितु सम्पर्क में आने वाली हर व्यक्ति के लिए वे तापहारक, शीतल ऐसी सिद्ध हुई। १५ वर्ष की आयु में तापी विद्वांस ने सरस्वती आपटे बन कर पुणे में प्रवेश किया। एक पुत्र और दो कन्याओं ने उनका जीवन परिपूर्ण बनाया।

जीवन का पूर्वरंग - संघस्थापना के पश्चात् जैसे ही पुणे में कार्य प्रारंभ हुआ विनायकरावजी आपटे संघ में जाने लगे। धीरे-धीरे वे पुणे संघचालक बने। उनका स्वभाव अत्यंत मिलनसार था। उनका घर ७५१ सदाशिवपेठ-पुणे के ही नहीं अपितु देशभर के लोगों का अपना घर बन गया। दिन रात लोगों की आवभगत चलती थी। मकान मालिक हमेशा कहते थे, इनके यहां आने वाले लोगों के कारण हमारी सीढ़ियां घिस गयी। कीले बाहर निकल आयीं। प.पू. डॉक्टरजी, प.पू. गुरुजी, वं. मौसीजी पूना के वास्तव्य में ७५१ में ही रहा करते थे।

वं. ताईजी ने केवल लोगों का स्वागत करना देखभाल करना, खाना पीना करना इतना ही किया ऐसा नहीं तो संघ जैसे कार्य की महिलाओं के लिए भी आवश्यकता उन्हें मन ही मन प्रतीत होती थी। उन्होंने महिलाओं का एकत्रीकरण प्रारंभ किया। रसोईघर में अब राष्ट्र, ब्रिटिशों के अन्याय, स्वदेशी व्रत की कथाएं, उनमें अपनी अहम् भूमिका आदि विषयों के बारे में चर्चा होने लगी। मैदान में दण्ड घुमने लगा, लेझीम की आवाज आने लगी। प.पू. डॉक्टरजी ने उन्हें वर्धा में प्रारंभ हुए समिति कार्य की जानकारी दी।

एक दिन वं. मौसीजी डॉ. जी का पत्र लेकर ताईजी के घर

पहुंची। बिना शर्त ताईजी ने अपना कार्यप्रवाह वर्धा की धारा में सम्मिलित कर दिया। हम हमेशा सुनते हैं कि लक्ष्मी-सरस्वती की आपस में बनती नहीं पर समिति कार्य में लक्ष्मी-सरस्वती दोनोंने मिलकर बड़ा शानदार मार्गक्रमण किया।

ममतामयी माँ - वं. ताईजी का गृहस्थी जीवन अत्यंत कठिन था। राष्ट्रीय विचारधारा के विनायकरावजी के लिए सरकारी नौकरी करना कांठेन था। निजी व्यवसाय के लिए संघ कार्य से समय निकालना मुश्किल था। अतः ताईजी को प्रेस का भी काम देखना पड़ता था। आप प्रेस का काम अच्छी तरह से जानती थी। घर में तो स्वयंसेवकों का तांता लगा हुआ रहता था। ताईजी को आर्थिक कठिनाईयां भी बहुत झेलनी पड़ी। ऐसी गृहस्थी निभाना यह कसौटी ही थी। परंतु वं. ताईजी की प्रसन्नता कभी ढली नहीं, और उनके घर से खाली हाथ भी कभी कोई गया नहीं। भारतवर्ष में प्रवास करते समय हमने ताईजी के यहां भोजन किया था ऐसा बताने वाले असंख्य प्रचारक हमें मिलते हैं। जगन्नाथराव जी जोशी हमेशा कहते थे - 'मेरे व्यक्तित्व को आकार दिया विनायकरावजी ने और सुदृढ़ शरीर दिया वं. ताईजी ने।'

'मातृहस्तेन भोजनम्' की अनुभूति वे देती थी। वं. ताईजी का जीवन राष्ट्र रूप था, चिंतन भी वही था। अतः उनके हाथ से भोजन करने वालों को भी यही जीवनरस प्राप्त होता था। अपने अंतिम भाषण में उन्होंने बड़ी भावुकता से कहा था- 'मेरे हाथ का भोजन जिन्होंने किया वे कभी इधर-उधर भटके नहीं, राष्ट्र कार्य में लगे रहे।'

१९६६ तक श्री विनायकराव जी का साथ उन्हें मिला। कैन्सर से उनका देहान्त हुआ। परंतु ताईजी के अंत तक उनके घर की वही गरिमा बनी रही। घर से लोगों का सम्पर्क यथावत बना रहा। 'गृहिणी गृहमुच्यते' यह पंक्ति हमें यहां सार्थ दिखायी देती है। तीनों सरसंघचालकों से उनके अत्यंत निकट के संबंध थे। प.पू. गुरुजी के पिताजी का देहान्त होने के पश्चात् उन्होंने अपनी माँ 'ताई' के पास रहने के लिए इस 'ताई' को पूना से बुला लिया था। उनके व्यक्तित्व की गहराई समझने के लिए इतना पर्याप्त है।

दोनों ही आपातकाल में आपने जो काम किया वह बेजोड़ है। घर-घर की मानसिकता उन्होंने बनायी रखी। प.पू. बाला साहब जी की ६०वीं वर्षगांठ जेल में उन्होंने मनायी। सुहागन महिलायें और वैदिक ब्राह्मणों को ले जाकर उनको आशीर्वचन दिये, आरती उतारी, मिठाई बांटी- जेलर को बताया कि हमारे भाई का जन्म दिन है। गोवा मुक्ति संग्राम में भी आप सम्मिलित होने की बड़ी इच्छुक थी। परंतु द्वितीय रेखा संभालने का दायित्व आपका था और वह आपने निभाया।

नगर कार्यवाहिका, प्रदेश कार्यवाहिका से प्रमुख कार्यवाहिका तक उनका क्रमशः प्रवास होता गया। सभी जिम्मेदारियां आप कुशलता से निभाती रहीं। वं. मौसीजी ने उन्हें अपना कार्यभार सौंपा था, तब से उन्होंने निरंतर भारत वर्ष का प्रवास किया। ८४ वर्ष की आयु में भी वे जम्मू तक प्रवास करती रही।

पाठ पढ़ाया आचरण से - वं. ताईजी ने हमें बातों से कम परंतु आचरण से अधिक सिखाया है। उनका बौद्धिक हमेशा प्रेरणादायी रहता था। वह विद्वत्तापूर्ण कम। व्यावहारिक ही अधिक रहता था। कार्यकर्ताओं को हम व्यवहार से ही तो जोड़ पाते हैं। उनके वाक्य छोटे तथा सरल रहते थे। जो हमें अंतर्मुख बनाते थे। 'मुंह में मिश्री और सिर पर बर्फ' ये हमें उन्होंने दिया हुआ महामंत्र। वे हमेशा कहती थी हमारे पेट में इतना अनाज हम रख पाते हैं, परंतु किसी के चार शब्द क्यों नहीं रख पाते।

पूना में रहने के कारण हिन्दी से कभी उनका सम्पर्क नहीं आया था। बोलना नहीं आता था। एक बार ग्वालियर के कार्यक्रम में आपकी शाल खो गयी। तब उन्होंने बताया, 'मेरी काली शाल गुजर गयी।' उपस्थितों में हंसी के फव्वारे छूटे। ताईजी को भी इस विनोद का पता चला और वे भी हंसी में सम्मिलित हुई। फिर प्रयत्नपूर्वक उन्होंने हिन्दी का अभ्यास किया। आगे आप बहुत अच्छी हिन्दी में विषय प्रस्तुत कर पाती थी।

व्यापक जनसम्पर्क - वं. ताईजी का सम्पर्क बड़ा व्यापक था। 'राखी' यह उनके सम्पर्क का प्रभावी माध्यम था। आप अत्यंत क्रियाशील थी। कभी बिना काम की बैठी नहीं। प्रतिवर्ष आप हजारों राखियां बनाती थी। अखिल भारतीय बैठक में आने वाली सेविकाओं को अपने हाथ से राखी बांधती थी। अन्य गांवों में भेजती थी। रिक्शा चालक एवं प्लेटफार्म पर रहने वाले लोग, कामायनी (अपंगों की संस्था) के लोग इन सबको आप राखी बांधती थी। उनके सम्पर्क में आयी हुई, व्यक्ति उनके प्रेम से बंध जाती थी। उनके जीवन में कोई आडम्बर नहीं था। साधा जीवन-सरल व्यवहार।

स्वयं पत्र लिखना यह भी उनकी खासियत थी। अंतिम काल में उन्हें लिखना कठिन हो रहा था, हाथ में दर्द था। परंतु पत्र अन्य कोई लिखेगा और आप उस पर हस्ताक्षर करेंगी, इससे उनका समाधान नहीं होता था। उनके देहांत के तुरंत बाद ही उन्होंने लिखा हुआ पत्र कलकत्ता में बसंतरावजी बापट, अमरावती में शैलाताई और लतादीदी बाखरु के यहां प्राप्त हुआ था।

हर व्यक्ति ने २४ घंटों में से कम से कम एक घंटे का समय अवश्य ही समाज कार्य के लिए देना ही चाहिए, ऐसा आप हमेशा कहती थी। आज घर-घर में अनेकानेक उपकरण रहते हैं उससे काम कम समय में हो सकता है। कम शक्ति और कम समय लगता है। इससे शक्ति और समय की बचत होती है। परंतु महिलाएं उस शक्ति और समय का उपयोग राष्ट्र कार्य में नहीं करती, यह

उनके लिए वेदना का विषय था।

स्थायी भाव - सेवा - सेवा यह आपका स्थायी भाव था। पीलिया पर आप नित्य दवाई देती थी। अनेक घरेलू नुस्खे आप जानती थी और अनेकोंने उनका लाभ उठाया था। आप नाड़ी परीक्षा अच्छी तरह से करती थी इसलिए उनके 'मार्गदर्शन' से तुरंत आराम होता था। यही सेवाभाव उन्हें बस्तियों में जाने के लिये प्रेरित करता था। 'पानशेत' बाढ़ फूटने के समय उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। और अकाल के समय 'राऊतवाड़ी' गोद लिया। वहां घर-घर में आपका सम्पर्क था। उस गांव में सुविधायें प्राप्त हो इसलिये आप दक्ष थी। सतर्क थी। हम भी सेवा बस्ती में जाकर कार्य करे यह उनकी आंतरिक इच्छा थी। अतः उनका स्मृति दिन माघ कृष्ण द्वादशी यह, सेविकाओं ने सेवादिन के रूप में मनाने का निश्चय किया है। सेवा कार्य का यह संस्कार हमारे जीवन को उचित आकार देगा। संगठन को दृढ़ करेगा।

शाखा यह संजीवनी - वं. ताईजी हमेशा कहती थी कि शाखा यह संजीवनी है। प्रतिदिन शाखा में जाना उनका व्रत था। जो अंतिम दिन तक चलता रहा। अंतिम दिन आप जिजाबाई स्मारक समिति कार्यालय में बैठक के लिये गयी थी। शाखा में जाने के बाद मन का आलस, मन मुटाव सभी दूर होते हैं। मन ताजातरोजा बनता है। नयी उमंग लेकर काम करता है। यह आपका दृढ़विश्वास था। अपने अंतिम पत्र में भी आपने जो पाथेय दिया है, वह यही है कि 'निष्ठा यह तारक शक्ति है, समिति कार्य में निष्ठा रखिये, वह जीवन नौका पार करेगी, जीवन कृतार्थ होगा।'

'वयं भावि तेजस्वी राष्ट्रस्य धन्याः जनन्यो भवेम' यह आकांक्षा साकार होगी। हिन्दू राष्ट्र तेजस्वी राष्ट्र के रूप में उभर आयेगा।

अध्ययन हेतु पुस्तकें
सरस्वती एव - सा (स्मारिका)
कृतार्थ भी कृतज्ञ भी

लो श्रद्धांजलि वंदनीय माँ

लो श्रद्धांजलि वंदनीय माँ
भाव पुष्प से अर्चन
तेजोमय वात्सल्य मूर्ति माँ
तुम को शत् शत् वंदन।। धृ.

गंगा का पावन प्रवाह जब
द्वार तुम्हारे आया
भगिनी के स्वागत में तुमने
स्नेहमयी मृदु हाथ बढ़ाया
अहंकार का लेश न मन में
केवल मात्र समर्पण
लक्ष्मी की पूजा वेदी पर
सरस्वती का चंदन - तुमको...

सौम्य सरल व्यक्तित्व तुम्हारा
सबका मन आनंदित करता
उस विशाल वट वृक्ष छाँव में
हर पंछी कुछ क्षण रुक जाता
हो कृतार्थ और हो कृतज्ञ वह
झोली भर आशिष ले जाता
हर मानव को वहां हुए है
शिवशक्ति के दर्शन ।।२।।

देख प्रबल कर्तृत्व मौसी ने
गुरुतर भार दिया समिति का
प्रांत प्रांत और ग्राम-ग्राम में
उत्कट कार्य हुआ समिति का
यही तुम्हारी प्रेरक शक्ति
मधुर स्नेह का बंधन
राष्ट्रभक्ति की करांजलि से
भाव पुष्प ये अर्पण-तुमको

ऋजुता की प्रतिमूर्ति - वं. उषाताई चाटी [प्रमुख संचालिका]

वं. उषाताई चाटी-हमारी तृतीय प्रमुख संचालिका। एक ऋजु, स्नेहशील व्यक्तित्व।

वं उषाताई मूलतः भंडारा (विदर्भ) की निवासी फणसे कुल की कन्या। जन्म दि. ३१ अगस्त १९२७ भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी गणेश चतुर्थी-गणपती का यह जन्मदिन। बुद्धि व नेतृत्व का प्रतीक गणपती-यही वं उषाताई का जन्मदिन यह एक अद्‌भुत संजोग। उषाताई की पढ़ाई भंडारा के मनरो हाईस्कूल विद्यालय में हुई। १९४८ में विवाह के पश्चात् उनका परिवार नागपुर में रहने के लिए आया। उनके पति श्री गुणवंत चाटी बाबा नाम से जाने जाते थे। उषाताई सबसे बड़ी बहू होने के नाते सास-ससुर, ३ देवर, १ ननद आदि का अपने स्नेह तथा सेवा से जीतने में सफल हुई। श्री बाबाजी संघ के निष्ठावान स्वयंसेवक-उनको घोष में बहुत रुचि थी। घोषगण तैयार करने में नये-नये प्रयोग करते थे। उसके साथ-साथ उनका असीम जनसम्पर्क था।

वं उषाताई, वं मौसीजी को मातृतुल्य होने वाली श्रीमती नानी कोलते की शाखा में जाने लगी। उनके समर्पण भाव तथा निरपेक्षता का प्रभाव उषाताई पर हुआ। प्रथम भंडारा की जकातदार, कन्या शाला में व विवाह के पश्चात् हिन्दू मुलींची शाला इस विद्यालय में वं उषाताई ने अध्यापन कार्य प्रारंभ किया। एक लोकप्रिय शिक्षिका के नाते उन्हें वहां स्नेह मिला। भूगोल एवं मराठी इन विषयों के माध्यम से उन्होंने अपनी छात्राओं को संस्कार दिए। छात्राओं के विकास हेतु स्थापित 'वाग्मिता विकासिनी समिति' की सतत ३० साल तक वे अध्यक्षा थी। वहां भी दर्जेदार संस्कारक्षम कार्यक्रमों का आयोजन हो ऐसा उनका आग्रह रहता था। अपनी छात्राओं से उनका इतना आत्मीयतापूर्ण संबंध था की उनके सुख दुख के क्षणों में वं उषाताई का उन्हें आधार मिलता था। आज भी उनकी अनेक छात्राएं एवं सहकारी अध्यापिकाएं उषाताई को आदर से आग्रहपूर्वक मिलती रहती है।

वं उषाताई को मधुर आवाज की ईश्वरीय देन प्राप्त है। वे नागपुर में आगी उसके बाद उनके नागपुर आकाशवाणी से संगीत के कार्यक्रम होते थे। उसके लिये निरंतर अभ्यास की आवश्यकता थी। परंतु समिति शाखा के समय से वह मेल नहीं खाता था। परिणामस्वरूप उन्होंने संगीत आराधना छोड़ दी। समिति कार्य को प्राथमिकता देने का संस्कार उन्होंने अपने व्यवहार से दिया।

प्रथम आपातकाल के समय श्री बाबाजी ने संघ द्वारा आयोजित सत्याग्रह में भाग लिया। अतः उनकी सरकारी सेवा समाप्त हुई। ऐसे समय अपने परिवार को सब प्रकार से संभालने का दायित्व उषाताई ने निभाया। अपने परिवार के ज्येष्ठ लोगों की

RBJ.M

सदिच्छा, सद्भावना उषाताई ने अपने मृदु स्वभाव के कारण प्राप्त की थी। श्री बाबाजी जैसे समर्पित कार्यकर्ता की पत्नी की भूमिका भी सफलता से उन्होंने निभायी। वं उषाताई का भी समिति का दायित्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। नागपुर नगर कार्यवाहिका, विदर्भ कार्यवाहिका का दायित्व निभाते हुए १९७० में उनको अ.भा. गीत प्रमुख का दायित्व सौंपा गया। १९७७ में उ. प्रदेश का पालकत्व भी उन्हें दिया गया। परंतु दोनों में पूर्ण सामंजस्य था। इसलिए दोनों दायित्व निभाने में किसी प्रकार की बाधा नहीं आई- दोनों एक दूसरे के लिए पूरक बनकर रहे। उनको अपनी संतान नहीं थी परंतु अपनी मातृवत्सलता के कारण परिवार में 'मोठी काकू' के नाते सम्मान प्राप्त है। हर महत्व के प्रश्न में उनका मत क्या है इसकी चिंता की जाती है।

१९८२ में अचानक इस शांत जीवन प्रवाह में तूफान सा आया। श्री बाबाजी को हृदयविकार का तीव्र झटका आया। कुछ ही मिनटों में उनकी प्राणज्योति शांत हुई। सम्पूर्ण चाटी परिवार शोक में डूब गया। ऐसे तीव्र दुख: के क्षणों में भी उषाताई का विवेक, संयम और संतुलन कायम था। अपनी वृद्ध सासूजी को उन्होंने धीरज बंधाया। उनको मिलने कोई आता तब वे बोलती थी- पहले ताई जी से मिल लो। ताई जी थोड़ी तेज स्वभाव की थी परंतु वह भी समिति की सेविका थी। उषाताई जी ने उनका भी विश्वास प्राप्त किया था।

धीरे-धीरे उन्हीं दिनों में वं उषाताई जी का विचार दृढ़ हो रहा था। शेष जीवन पूर्णतया समिति के लिए ही देना है। केन्द्र कार्यालय में रहने के लिए जाना है। यह निर्णय लेने में उन्होंने ताईजी (सास) की अनुमति प्राप्त की और वह निर्णय ताईजी के ही मुख से जाहिर किया। उषाताई के दृढ़ निर्धार का यह प्रतीक है।

उषाताई का नेतृत्व, संगठन के लिए आवश्यक ऐसा मातृभाव देखकर वं ताईजी आपटे ने अपनी उम्र का विचार करते हुए १९८४ में उनको सह प्रमुख संचालिका का दायित्व दिया। अब वं उषाताई का प्रवास का क्षेत्र व्यापक हुआ। १९९१ में विश्व हिन्दु परिषद के केन्द्रीय विश्वस्त के नाते उनका नाम स्वीकृत हुआ तबसे उनकी बैठकों में जाना होता है।

वं ताई जी आपटे का दि. ९ मार्च १९९४ को अचानक स्वर्गवास हुआ। उनकी अंतिम इच्छा के अनुसार वं. उषाताई को प्रमुख संचालिका का पदभार सौंपा गया। राष्ट्रव्यापी महिलासंगठन का नेतृत्व करना एक प्रकार की कसौटी ही है- वर्तमान संघर्षमय काल में। परंतु एक-एक कार्यकर्ता को जोड़कर रखने की कुशलता-उनकी मातृवत् स्नेह सेवा की, शांत स्निग्ध प्रकृति के कारण यह गुरुतर दायित्व निभाने में वह सफल होगी इसमें संदेह नहीं।

समिति की तीनों प्रमुख संचालिकाओं में यह वृत्ति पाना अलौकिक सौभाग्य है।

स्त्री यह समाज का आधा हिस्सा होने के कारण राष्ट्र में उसका प्रमुख स्थान है। संस्कार प्रदान करने में स्त्री की प्रमुख भूमिका है। मानव शास्त्र के अनुसार बालक एक से तीन वर्ष तक सबसे अधिक तथा महत्वपूर्ण संस्कार ग्रहण करता है। इसी कालावधी में बालक माता के ही सम्पर्क में अधिक रहता है। मानव को देवता बनाना या दानव, यह माता के संकल्प पर ही निर्भर होता है। दुर्बल एवं परावलम्बी स्त्री स्वाधीन और समर्थ राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकती। परिवार का प्रत्येक घटक एक स्वाभीमानी, देशभक्त नागरिक बने यह जिम्मेदारी स्त्री पर है। यह जिम्मेदारी उसे पुरुष के सहयोग से ही निभानी है। वह स्वयं के तथा राष्ट्र के उत्थान तथा पतन के लिए उत्तरदायी है। अत: भारतीय कन्याओं के सम्मुख मातृत्व, कर्तव्य तथा नेतृत्व का आदर्श रखकर, उन्हें संगठित और समर्थ बनाकर उनके द्वारा तेजस्वी हिन्दु राष्ट्र निर्माण करवाने का प्रयास राष्ट्र सेविका करती है।

समिति का उद्देश्य - स्वसंरक्षणक्षम

विश्व में उत्पन्न कोई भी वस्तु या प्राणी बिना उद्देश्य का उत्पन्न नहीं होता। मनुष्य की भी कोई कृति कभी भी उद्देश्यहीन नहीं होती। वैसी ही बात कार्य की भी है। कोई भी कार्य उद्देश्यहीन नहीं होता। कार्य का जितना महान उद्देश्य, उतनी ही अधिक साधना और उतने ही अधिक परिश्रम की आवश्यकता होती है।

हम हमेशा तीन शब्द सुनते हैं। उद्देश्य, ध्येय तथा लक्ष्य। संघटन का भी अपना उद्देश्य, ध्येय तथा लक्ष्य होता है। समिति का उद्देश्य महिलाओं को स्वसंरक्षण क्षम बनाना, ध्येय है संघटन तथा लक्ष्य है तेजस्वी हिन्दु राष्ट्र की निर्मिति।

राष्ट्र सेविका समिति का निर्माण ही 'स्वसंरक्षण' क्षमता को लेकर हुआ है। वं. मौसीजी का कहना था कि स्वसंरक्षण केवल अपने स्वयं के शरीर का संरक्षण करना ही नहीं, तो 'स्व' के अंतर्गत जिन जिन बातों का अविर्भाव होता है उन सभी की रक्षा करना और इसीलिए सामर्थ्यवान बनना। स्वयं का परिवार, कुलाचार, कुलपरम्परा के साथ ही स्वराष्ट्र की प्रतिष्ठा का भी संरक्षण करने की क्षमता महिला में होनी चाहिए। (पथदर्शिनी श्रीरामकथा पृ.क्र. ११८)

स्वयं का संरक्षण - इस विषय में सोचेंगे तो ध्यान में आएगा कि महिलाओं के संरक्षण की जिम्मेदारी उनकी अपनी होती है। इतिहास के पन्ने इसके साक्षी हैं।

भारतीय संस्कृति में 'स्व' रक्षा का अपना एक विशेष महत्व है। स्त्री के पावित्र्य, स्त्रीत्व अर्थात् उसके शील को महत्व दिया गया है। उसका जीना मरना उसी से अनुसंधान रखता है। वं. मौसीजी कहती थीं कि ''सीता के जीवन से शील की रक्षा' द्रौपदी के जीवन से शील के लिए लड़ना तथा पद्मिनी के जीवन से शील के लिए मरने की शिक्षा हमें प्राप्त होती है।

सीता रावण के बंदीगृह में सुरक्षित रह पायी अपने सामर्थ्य पर। द्रौपदी बार-बार अपने मुक्तकेश दिखाकर पति पुत्रों को प्रतिशोध के लिए प्रेरित करती रही। पद्मिनी तथा अनेक राजपूत महिलाओं ने शील सुरक्षा के लिए जौहार किया।

शची की कथा भी इसी की पुष्टि करती है। नहुष राजा स्वपराक्रम से इन्द्रपद पर आरूढ़ हुआ। स्वर्ग के सभी उपभोग प्राप्त होने से इन्द्र पत्नी शची की भी उसे अभिलाषा हुई। शची अत्यंत दुखी हुई। एक दिन नहुष ने उसे निमंत्रण भेजा। निमंत्रण के उत्तर में उसने नहुष को कहा 'आप ऐसे पालकी में बैठकर आइए जिसके वाहक पारम्परिक वाहक न हो। फिर मैं आपकी बात मानूंगी।' नहुष ने सप्तर्षियों को पालकी ढोने के लिए कहा। सप्तर्षियों को पालकी ढोने का अभ्यास नहीं था। उनकी धीमी गति से नाराज होकर कहता था 'सर्प सर्प' (जल्दी चलो)। ऋषियों ने नाराज होकर शाप दिया 'तुम सर्प बनोगे'। नहुष का पतन हुआ। ब्राह्म तेज को जागृत कर शची ने अपनी रक्षा स्वयं की। वह न तो स्वयं लड़ने के लिए गई या नहुष के सम्मुख गई। निर्भय तथा समर्थ-मन ही स्वसंरक्षण कर सकता है।

निर्भयता तथा सामर्थ्य निर्माण के लिए शारीरिक अभ्यासक्रम द्वारा शरीर सक्षम बने, साहस बढ़े यह तो भाव है ही, परंतु मन यदि स्थिर तथा सशक्त है तो ही शस्त्रज्ञान समय आने पर काम आ सकता है। योगाभ्यास द्वारा मन को स्थिर करने का प्रयास किया जाता है। जीवन का सम्यक् अर्थ ज्ञात होना उसका साक्षात्कार होना इसी से मन समर्थ बनेगा। ऐसे समर्थ व्यक्तित्व चरित्र सेविकाओं के सामने समय-समय पर रखना चाहिए। सि के दाहिर राजा की कन्या, माँ शारदा देवी, ऐसे अनेक उदाहरण हैं।

जितने गहराई से विचार करें - ध्यान में आता है कि मनुष्य उन्नति तभी करता है जब उसमें स्वाभिमान जागृत होता है। राष्ट्र में (व्यक्तियों में) जब तक 'स्वत्व' है वह स्वतंत्र रहता है। संघर्ष करता है। 'स्व' के स्फुरण से ही मनुष्य अपना अस्तित्व बनाए रखता है, स्वत्व का विस्मरण अर्थात् अस्तित्वहीनता अर्थात् मृत्यु है।

समिति संगठन द्वारा विशाल मातृत्व की आकांक्षा रखती है। समिति का जीवनाधार ही विशाल मातृत्व है। मातृत्व अर्थात् सृजन, संरक्षण, संवर्धन। माँ किसकी रक्षा करती है - 'स्व' की। वह नित्यप्रति 'स्व' का स्मरण दिलाती है।

मदालसा अपने बालकों को सुलाते समय उन्हें बताती थी- 'शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरंजनोऽसि।' अपने स्वत्व का मनुष्य को स्मरण दिलाना है। शक्ति का अहसास दिलाना है। दुर्बलता, दीनता हटाना है।

स्व-संस्कृति रक्षा - प्राचीनकाल में बलि राजा के समय हुए सांस्कृतिक आक्रमण से अदिती अत्यंत व्यथित हुई। उसने वामन जैसे पुत्र को तैयार किया और संस्कृति की रक्षा की। जीजा माता ने भी अपनी संस्कृति एवं धर्म की रक्षा अपने पुत्र शिवाजी को यह संस्कार देकर उसके द्वारा ही तथा हिन्दवी स्वराज्य का निर्माण किया।

इसी संदर्भ में भ. निवेदिता का उदा. भी अत्यंत महत्वपू है। जब श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने निवेदिता से कहा की वे अ

बेटी को अंग्रेजी सिखाना चाहते हैं अतः निवेदिता उसे अंग्रेजी सिखाएं। यह सुनते ही बिजली जैसे गरज कर वह बोली - 'क्या आप उसे मैडम बनाना चाहते हैं ? उसे एक श्रेष्ठ भारतीय स्त्री ही बनने दीजिये। अपरिपक्व अवस्था में अंग्रेजी सिखाकर उसे बिगाड़िये नहीं। भारतीयों का भविष्य भारतीयों के ही हाथों में है। वे ही अपने जीवन के शिल्पकार हैं। वे हिन्दु पद्धति से विचार करें। आचरण करें, तो वे सुनहरे दिन दूर नहीं ऐसी उनकी निश्चित धारणा थी।

स्वराज्य रक्षा - स्वराज्य रक्षा हेतु पन्नाधाय ने अपना स्वयं का पुत्र उदयमान के सामने किया। अपने पुत्र की बलि चढ़ाकर राजवंश को सुरक्षित रख राज्य की रक्षा की। अपने हाथों अपने पुत्र की बलि चढ़ना समर्थ मन का ही द्योतक है।

स्व-स्वामिनी - संतु माई - खण्डोबल्लाल की बहन ने अपना बलिदान देकर अपनी स्वामिनि येसूबाई को सुरक्षित रखा।

स्वकुल की रक्षा - स्वत्वहीन पति को जागृत करने वाली सावत्री हमारे स्वाभिमान का विषय है।

स्वाभिमान, शौर्य जगाने वाली गौतमी-मृत्यु के भय से युद्धभूमि से भागकर आने वाले अपने पुत्र रणछोड़दास को दुर्ग का दरवाजा न खोलने वाली, उसका स्वाभिमान जागृत करने वाली, उसको अपने धर्म तथा कर्तव्य का बोध कराने वाली, स्वयं भी युद्ध भूमि पर लड़ने जाने वाली। मध्य भारत में विदुला-संजय की कहानी भी प्रसिद्ध है।

स्वदेशी की रक्षा - १९०५ में स्वाधीनता आंदोलन का एक भाग था विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार तथा स्वदेशी का व्रत। बंगाल की महिलाओं ने नित्य उपयोगी आवश्यक ऐसी विदेशी कांच की चुड़ियां पहनना छोड़ दिया और शंख की चूड़ियां पहनना प्रारंभ किया वे गीत गाती थीं -

छंडे दाओ कांचेर चुड़ी बंग नारी
कभु हाथे परो ना
तोम राजे गृहलक्ष्मी धर्मसाक्षी
जगते भरे आधा जाना
कांचेर माया ते भूले, शंख पेले
कलंक हाथे परो ना।

महाराष्ट्र आदि प्रांतों में भी महिलाओं ने काँच की चुड़ियों के साथ चाय तथा शक्कर विदेशी होने के कारण घर में न लाने का संकल्प लिया था। कस्तुरबा, कमला नेहरु जैसी अनेक महिलाएं खादी का उपयोग ही करती थी।

स्वभाषा रक्षा - हमें अपनी भाषा का स्वाभिमान होना चाहिए। राष्ट्रभाषा का गौरव होना चाहिए। किसी के सामने अपनी भाषा बोलने पर हीनता नहीं गर्व महसूस होना चाहिए। अपनी भाषा का महत्व, गौरव हम ही बढ़ा सकते हैं। किसी भी बात का महत्व बढ़ाना और घटाना हमारे ही हाथ में होता है। भ-निवेदिता इसका एक सुंदर उदा. है। एक स्थान पर निवेदिता के स्वागत में भारतीय युवक नारे लगाने लगे। हिप हिप हुर्रे। अंग्रेजी नारे सुनते ही उसका रक्त खौल उठा। वे तुरंत बोली - रुकिए। क्या तुम्हारे पिता अंग्रेज हैं या माँ गौरकाय हैं ? जिससे आप यह नारे लगा रहे हो। आपको विदेशी नारे लगाने में संकोच नहीं लगता ? गलत नहीं लगता ? मैं बताती हूं कैसे नारे हो- बोलो - वाहे गुरु की फतेह, सद्गुरु की विजय हो, परमेश्वर की जय हो - और सभी ने वैसे ही नारे लगाएं। भारतीयत्व निवेदिता के रोम रोम में समाया था।

भाषा से संस्कृति प्रगट होती है। कोई भी बात अपनी भाषा से सहजता से समझ में आती है।

देववाणी संस्कृत यह हमारी अमूल्य धरोहर है यह सभी भाषाओं की जननी है, सभी विधाओं का भंडार है। अतः यह भाषा आना तथा उसका स्वाभिमान होना प्रत्येक हिन्दू के लिए आवश्यक है।

स्वदेशी खेल - हमारे भारतीय खेलों की एक प्राचीन परम्परा है। शारीरिक व्यायाम के साथ-साथ, संगठन भाव, संगठित शक्ति का भाव निर्माण होता है। विजय पाना है तो श्रृंखला बद्ध खेल यह सिखाता है। कबड्डी खेल। शत्रु के पाले में पकड़े जाने पर छुट कर आने का प्रयत्न करो। शक्ति से, सतर्कता से मरना फिर से जीवित होना। जीवन यह भी एक खेल है जन्म मृत्युका। मृत्युर्वै प्राणीनां ध्रुवः यह संस्कार खेलों में मिलता है। पुनर्जन्म की कल्पना दृढ़ होती है। वयं सुपुत्राः अमृतस्य नूनं। यह संस्कार मजबूत होता है।

इस प्रकार 'स्व' में अन्तर्निहित सभी की रक्षा करना, महिलाओं को कटिबद्ध बनाना, सक्षम बनाना यही समिति का उद्देश्य है।

स्त्री का एक जन्मसिद्ध गुण है कि वह अपनों के लिए अपने इच्छा की बलि चढ़ाकर दूसरों को पुष्ट बनाती है। दूसरों की संतुष्टी में स्वयं संतुष्टी का अनुभव करती है। परिवार के लिए वह मर मिट जाना भी पसंद करती है।

आज भी स्थिति बड़ी गंभीर है। दिन प्रतिदिन स्त्री की ओर उपभोग्य वस्तु के रूप में देखा जा रहा है।

'तू चीज बड़ी है मस्त-मस्त' यह भाव आ रहा है।

वह केवल 'अर्थ' का साधन बन गई है। दुर्बलता छोड़ अन्याय के विरोध में उसे खड़ा होना है और 'स्व' रक्षा के लिए तत्पर होना है। उसे स्वसंरक्षणक्षम बनना होगा। उसके इस गुण संवर्धन में ही राष्ट्र की यशस्विता, तेजस्विता, अंतर्निहित है।

समिति का ध्येय संगठन

समूह से रहने की आदत हम सर्वत्र देखते हैं। हाथी, हिरन इत्यादि प्राणी, झुंड में रहते हैं। पक्षी भी झुंड में रहते हैं। प्रात होते ही एक साथ अनाज के लिये निकल पड़ते हैं। स्वयं की रक्षा सुरक्षा के लिए झुंड में रहना पसंद करते हैं। मनुष्य अधिक बुद्धिमान है, उसके पास विचारशक्ति है। उसका समूह में रहना केवल संरक्षण के लिए नहीं, अपितु स्वयं के तथा अपने बांधवों के उन्नति के लिए होता है। जीवन का हर छोटा मोटा क्षण फिर वह आनंद का हो या दुख का वह अकेला सह नहीं पाता वे क्षण वे बिताते हैं मित्र-परिवार के साथ।

मनुष्य जीवन का कुछ लक्ष्य होता है वह उसके मनुष्यत्व का निदर्शक है। उस लक्ष्य की परिपूर्ति, संगठन के माध्यम से सुलभता से हो सकती है। कौन सा भी कार्य लौकिक हो, अथवा पारलौकिक अनेक लोगों के सहकार्य के अभाव में संभव नहीं हो पाता-और कलियुग का तो युगधर्म ही संगठन है। कहा जाता है-

'संघे शक्तिः कलौ युगे'

संगठन अर्थात् योग्य पद्धति से गठित किया हुआ समूह, संगठन में परस्पर प्रेम, आदर, विश्वास और सहकार्य की भावना रहती है। उसीके आधार पर व्यक्ति स्वयं का तथा अपने समाज, राष्ट्र का कल्याण, उन्नति एवं प्रगति कर सकता है।

संगठन का अर्थ एकत्रीकरण नहीं है। बीच-बीच में एकत्रीकरण लेना यह हमारे कार्यपद्धति का एक अंग जरूर है।

बस अड्डा, रेलवे स्थानक आदि स्थानों पर काफी भीड़ रहती है। सैकड़ों लोग एकत्रित आते हैं परंतु उसे हम संगठन नहीं कहते।

घड़ी के सभी पुर्जे जैसे मिले वैसे लिए और रख दिये टेबल पर यह हुआ एकत्रीकरण। परंतु पुर्जे यथास्थान रखे एक दूसरे के साथ जोड़ दिये की वेही पुर्जे समय दिखाने का कार्य कर सकते हैं।

भीड़ में अनेक व्यक्ति एक साथ रहते हैं परंतु एक साथ होते हुए भी उनकी उक्ति, कृति लक्ष्य अलग-अलग होते हैं। एक ही बात की उनकी अभिव्यक्ति और अनुभूति अलग-अलग होती है। उसके विपरीत संगठन में अनेक व्यक्तियों के आचार-विचारों की दिशा एक ही होती है। उन सभी का लक्ष्य एक होता है। अतः उनकी हलचलों से एक प्रचंड शक्ति का अनुभव आता है। हर व्यक्ति स्वतंत्र होते हुए भी संगठन से अभिन्न होती है। और इसी में व्यक्ति एवं संगठन का हित समाया हुआ रहता है।

संगठन की यह महत्ता ध्यान में लेतें ही मनुष्य किसी न किसी प्रकार का संगठन प्रारंभ करता है। आज स्थान-स्थान पर हमें यूनियन के फलक दिखाई देते हैं। संगठन का उद्देश्य और आवश्यकता पर संगठन की आयु निर्भर रहती है। उद्दिष्ट क्षणिक होगा तो संगठन अल्पजीवि रहेगा। लेखक, कवि, खिलाड़ियों का भी अपना स्वयं का एक संगठन होता है। धर्म पर विश्वास और उपासना पद्धति से भी संगठन निर्माण होते हैं। भाषा, राजनैतिक उद्देश्य आदि अनेक कारणों से संगठन निर्माण होते हैं और नष्ट भी होते हैं। परिस्थिति के झूले पर संगठन का अस्तित्व हिलोरे लेता रहता है।

स्थिर आधार हो ऐसे संगठन चिरंजीवी रहता है। राष्ट्र चिरंजीवि रहता है, अतः राष्ट्रवाद की ठोस नींव पर स्वयं गठित स्थापित संगठन भी चिरंजीवी होगा यह सहज सिद्ध है। इस तरह के संगठन विशिष्ट व्यक्ति के लिये कभी रुकता नहीं। परंतु विविध व्यक्तियों को समा लेने का उसका सामर्थ्य विलक्षण आश्चर्यजनक होता है।

परंतु विविध व्यक्तियों को समा लेने का राष्ट्रवादी संगठन का सामर्थ्य बड़ा अद्भुत होता है। राष्ट्रजीवन बहुविध रहता है, बहुभाषी भी होता है, अतः सभी स्तर एव क्षेत्र के व्यक्तियों को अपनी अपनी क्षमतानुसार कार्यक्षेत्र उपलब्ध होता है। सहकार और सहयोग का सूत्र अक्षुण्ण रहने के लिए मदद होती है।

समिति का संगठन भी राष्ट्रभक्ति के ठोस आधार पर अधिष्ठित है।

यह संगठन भारत वर्ष के लिए नयी चीज नहीं भगवान गणेश इसके प्रणेता है। वं. मौसी जी अपने बौद्धिक में गणेश जी श्रेष्ठ संगठन प्रमुख कैसे हैं उनकी आंखें बारिक क्यों हैं, पेट बड़ा क्यों, इसका सुंदर वर्णन करती थी। लोकमान्य जी को जब संगठन की आवश्यकता प्रतीत हुई तो उन्होंने लोगों को संगठित करने हेतु गणेशोत्सव प्रारंभ किए। स्व. बाबा साहेब आपटे कहते थे- गण का अर्थ बारिकी से सोचना है। गणेशजी केवल व्यक्ति ही नहीं वरन् एक तत्व है, एक विद्या है, उसका नाम गणेशविद्या- और उसके द्वारा समाज का प्रत्येक व्यक्ति चरित्र्यवान, निर्लोभी, अनुशासनबद्ध एवं कार्यक्षम बनाया जाने लगा। आज की परिभाषा में हम इसी को संगठन शास्त्र भी कह सकते हैं। हमारे यहां बौद्धि सूक्त 'संगछध्वं, संवदध्वं' संगठन कैसा हो यह मार्गदर्शन र ...ष करते हैं। हमारे पूर्वजों की यह श्रद्धा या कि, नदी का धर्म है ...ना,

अग्नि का धर्म है जलना, सूरज का प्रकाश तथा उष्णता देना, चंद्रमा का शीतलता देना, वैसे ही समाज का धर्म है संगठित रहना। समाज को जीवित रहना है तो उसे संगठित रहना ही होगा। विघटित होने पर सर्वनाश निश्चित है। समष्टि धर्म के अभाव में मुट्ठी भर अंग्रेज विशाल भारत वर्ष पर राज कर सकें।

व्यक्ति बुद्धिमान है, सज्जन है, कार्यक्षम है। ऐसे अकेले व्यक्ति ने यदि परिश्रम से, पूर्ण समय देकर भी कार्य किया तो वह समाज की किसी समस्या को हल नहीं कर पाएगा। केवल एक व्यक्ति का विकास होगा। समाज का नहीं। सम्पूर्ण समाज के विकास के लिए एकत्रित होकर ही प्रयत्न करने पड़ेंगे। चरित्रसम्पन्न ऐसे हजारों हृदयों को एक सूत्र में पिरोने वाला अनुशासन युक्त संगठन ही सामर्थ्यशाली रहेगा। समाज की समस्याओं का समाधान कर सकेगा। देवों की अवतारकथाएं हम सुनते हैं। श्री विष्णु ने जिस समय राम या कृष्ण का अवतार लिया तो अकेले नहीं, उनके साथ अनेक देवताओं ने, सहयोगियों ने भी जन्म लिया और उनका समाज, धर्म की स्थिति सुव्यवस्थित करने में सहयोग दिया। श्री विष्णु ने आदेश दिया कि उन्हें कहाँ और किन गुणों से, शक्तियों से युक्त होकर जन्म लेना है, क्योंकि उन्हीं गुणों से संगठित कार्यशक्ति निर्माण हो सकती थी। हमारी प्रार्थना में भी हम कहते हैं- सुशीला सुधीरा, समर्था, समेताः हम सुशील, धैर्यशाली, बुद्धिमान, समर्थ बनकर संगठित रहे। गुणहीन व्यक्तियों का एक साथ आने से किसी प्रकार का हित तो होगा नहीं अपितु नुकसान अवश्य होगा। स्वार्थी, अविचारी एवं दुष्ट समाज का निर्माण होगा।

अतः हमें ऐसा समाज निर्माण करना है जो सम्पूर्ण समाज में सम्यक कार्यचेतना जगाए। ग्राम तथा नगरवासी, अशिक्षित शिक्षित, गरीब, अमीर सभी को संगठित करना होगा। उन सब में एकता का भाव निर्माण कर परस्पर सुख दुख की संवेदना निर्माण करनी होगी। अग्नि जैसे प्रकाश तथा उष्णता को एक साथ वहन करता है, वैसे ही सेविका को संवेदना तथा शक्ति का वाहक बनना चाहिए।

हमारा उद्देश्य राष्ट्र को संगठित करना है अर्थात् राष्ट्रीय चरित्र, ऐक्य निर्माण करने वाले गुणों का विकास करना है। मातृभक्ति, मातृभूमि की भक्ति यह मेरा भी दायित्व है यह भाव, आदर्शों के प्रति निष्ठा, अनुशासन निर्माण करना ही संगठन का लक्ष्य है।

राष्ट्र विकास संगठित शक्ति पर ही निर्भर होता है। राष्ट्रीय वृत्ति से प्रेरित व्यक्ति, समूह को चुंबक के समान आकृष्ट करता है तथा उनमें भी चुंबकीय गुण भरता है। यह प्रक्रिया राष्ट्रकल्याण में महत्वपूर्ण मायने रखती है।

हमारे राष्ट्र ने भी आर्थिक तथा उद्योग व्यवसाय में विकास किया, परन्तु राष्ट्रीय चरित्र के अभाव में उसका लाभ हमारे राष्ट्र को मिलने की अपेक्षा दूसरे राष्ट्रों ने उठाया। केवल उत्पादन क्षमता बढ़ने से विकास नहीं होगा तो बिना भ्रष्टाचार के उसके वितरण से होगा। और यह राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रीय चरित्र से ही सम्भव होगा। चारित्र निर्माण की एक पद्धति है 'संगठन शास्त्र' जो हमने स्वीकार किया है। तात्पर्य है कि राष्ट्रविकास अर्थात संगठन और संगठन के साथ राष्ट्र विकास यह समीकरण है। सूर्य उदय के साथ अंधकार का नाश होता है। सूर्योदय के साथ सारे हिंसक पशु निर्विघ्न जंगल में छिप जाते हैं। कमलदलों का विकास एक साथ एक समय ही होता है। वैसे ही शुद्ध चरित्र पर आधारित संघटन और राष्ट्रीय विकास का एकरूपत्व है।

संगठन में निर्माण सेविका शिक्षिकाएं विद्यार्थियों को केवल पाठ नहीं पढ़ाएंगी, तो अपने आचरण, विचार, भाषा से चरित्र सम्पन्नता का आदर्श निर्माण करेगा। शिक्षा क्षेत्र में अभिप्रेत राष्ट्रीय विकास मजदूरों की हडताल से होने वाला राष्ट्रीय नुकसान रोका जा सकेगा।

शासकीय सेवा में कार्यरत कर्मचारी, अधिकारी रिश्वत न लेते हुए देश के कल्याण तथा प्रतिष्ठा का ध्यान रखेगा। एक विशेष उद्देश्य से युक्त आदर्शमय जीवन हमें निर्माण करना है। बिना इसके संगठन का कार्य असम्भव है। इस दृष्टि से अनेकानेक राष्ट्रीय गुणों से परिपूर्ण असंख्य व्यक्ति निर्माण कर संगठन सूत्र में पिरोना है। बस जीवनभर यही साधना करनी है।

पूरक उदाहरण

गरुड ओर चंडौल पक्षी की कहानी

समाज सामर्थ्यवान बनने से अनेक समस्या हल हो सकती है।

पांच उंगलियों की कहानी।

दो बैलों की कहानी (पंचतंत्र की)

दोनो बैलों को अलग-अलग कर सामर्थ्यहीन बनाया।

भारत में भी मुसलमान और अंग्रेज आएँ, उन्होंने Divide and rule की नीति अपनाई और राज्य किया।

जयचंद और पृथ्वीराज (विघटन वृत्ति के कारण जयचंद की सहायता से महंमद दिल्ली तथा उसके पश्चात कन्नोज लूट लिया।)

राणा प्रताप और शक्ति सिह (व्यक्तिगत महात्वाकांक्षा या प्रतिष्ठा के कारण दोनो भाईयों में शत्रुता।) शक्तिसिंह के शौर्य का लाभ अकबर को मिला। राष्ट्र के लिए घातक सिद्ध हुआ।

धर्म, जाति, भाषा भेद, का भारत में अंग्रेजों ने लाभ उठाया। खण्ड प्राय देश में अलग-अलग जाति, भाषा होना स्वाभाविक है परंतु सभी को राष्ट्रीयता के एक सूत्र में पिरोना आवश्यक है। यही समिति कार्य है।

प्रार्थना का अर्थ

राष्ट्र सेविका समिति की दैनंदिन प्रार्थना अर्थात् हिन्दु स्त्री की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति है। जिन जीवन मूल्यों के कारण भारत विश्व में सन्मान का स्थान प्राप्त कर सका उनको सुरक्षित रखना, उसके लिए समुचित शारीरिक, मानसिक शक्ति प्राप्त करना आवश्यक है। मानवी प्रयत्नों के साथ-साथ दैवी कृपा भी होनी चाहिए। अपने से श्रेष्ठ शक्ति के पास नम्रतापूर्वक अपनी मांग रखने में लाचारी नहीं। ऐसे श्रेष्ठ शक्ति पर अपना अधिकार है और हमारी मनीषा वह पूरी करेगी ही इसका विश्वास भी इसमें है। अपनत्व का यह नाता शब्दों में प्रकट करना असम्भव है।

अपनी प्रार्थना संस्कृत में है। संस्कृत सुसंस्कारित लोगों की भाषा है। वह अन्य भारतीय भाषाओं की जननी होने के कारण भारत में मान्यताप्राप्त है। हमारा ज्ञान का भंडार समाने वाले सारे ग्रंथ संस्कृत में है। उसको देववाणी या गीर्वाणवाणी भी कहा जाता है। भारत के सभी प्रांतों को एक सूत्र में गूंथकर उनमें सामंजस्य, एकात्मता निर्माण करने का संस्कृत भाषा एक श्रेष्ठ साधन है। विदेशी भाषा के प्रभाव ने हमारे समाज को स्वाभिमान शून्य व राष्ट्र को चेतनाहीन बनाया है इस अनुभव से तथा अपने कार्य का अभिनव स्वरूप ध्यान में रखते हुए समिति की प्रार्थना संस्कृत में रखी है।

अपनी प्रार्थना सामूहिक बोली जाती है। अनेक व्यक्तियों की इच्छाआकांक्षाएं केन्द्रित होने पर निर्माण होने वाली शक्ति परिस्थिति में परिवर्तन ला सकती है। सामूहिक प्रार्थना बोलने से हमारी आकांक्षाएं एक है अर्थात् हम सब एक हैं ऐसी अनुभूति होती है। हम अपनी उपास्य देवता की जब व्यक्तिगत प्रार्थना करते हैं तब हम व्यक्तिगत हित के लिए कुछ भी मांग सकते हैं। 'केवल मेरा' से भावना से 'हम' तक पहुंचने के लिए सामूहिक प्रार्थना करना है। जो कुछ मांगना है वह सब के लिए, अपने समाज के लिए, देश के लिए। व्यक्तित्व की संकुचित सीमा से समष्टि की विशाल परिधि में प्रवेश करना इस कारण सुलभ होता है।

शाखा स्थान पर भगवे ध्वज के सामने नियमित रूप से बोली जाने वाली प्रार्थना, यह अपना मंत्र है। वह प्रेरणा शक्ति है। शब्दों को मंत्र का सामर्थ्य प्राप्त होता है वह उसके लिए की हुई तपस्या के कारण। तपःपूत शब्दों का शुद्ध उच्चारण लाभदायी और अशुद्ध उच्चारण हानिकारक होता है। परंतु केवल शुद्ध उच्चारण भी पर्याप्त नहीं है, अर्थ भी समझना चाहिए। बिना अर्थ समझे मंत्र पठन करना बोझ ढोने जैसे है।

मननात् त्रायते इति मंत्रः ऐसा सूत्र है। मंत्रों का सामर्थ्य उनके शब्दों के अर्थ का चिंतन मनन करने से ही प्रकट होता है। हर मंत्र का तंत्र होता है। तंत्र याने आचरण के नियम। मंत्र व तंत्र के सामंजस्य से ही मंत्र सफल होता है। इसलिए प्रार्थना के हर शब्द का अर्थ समझ लेना, उस पर चिंतन करना, उसके अनुसार व्यवहार करना प्रत्येक सेविका का कर्तव्य है।

प्रार्थना में दो पद हैं प्र+अर्थना। यह एक निवेदन है, परंतु उसके पीछे तपस्या की शक्ति है। प्रार्थना में भक्ति के साथ-साथ समर्पण भावना होती है। मानव की सुप्त शक्ति का विकास कर जीवन तेजस्वी होता है। दैवी गुणों से युक्त तेजस्वी राष्ट्रशक्ति का निर्माण यह हमारी आकांक्षा है, वह प्रार्थना के प्रत्येक शब्द में प्रकट होती है। हम दैवी राष्ट्रवाद के अनुचर हैं उसी के कारण सम्पूर्ण विश्व में सुख शांति का साम्राज्य आएगा ऐसा हमारा विश्वास है।

प्रार्थना के अंत में हम 'भारत माता की जय' बोलते हैं। कारण भारत हमारी माता है यह संस्कार हे दृढ़ करना है। इसके अभाव के कारण ही देशद्रोही वृत्ति में उफान आ रहा है। भारत मेरी मां है यह संस्कार दृढ़ होने पर, मेरी मां को कलंक लगेगा ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए ऐसा नैतिक दबाव आएगा और अनिर्बंध आचरण पर रोक लगेगी।

प्रार्थना का आशय इस प्रकार है।

अपनी प्रार्थना का आरम्भ मातृभूमि की वंदना से है। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' इस संस्कार की बाल घुट्टी हमें मिलती थी तब हम राष्ट्र रूप में समर्थता से खड़े थे। हमारे धर्म का संरक्षण कर सकते थे। हर मंगल कार्य के प्रारंभ में गणेश पूजन करने की परम्परावाला देश गणेश मूर्ति का संरक्षण नहीं कर पाया। हमारी देवताएं, हमारा धर्म, हमारे श्रद्धा स्थान आक्रांताओं ने उध्वस्त किए। हम हतबल हुए, पराभूत हुए। यह क्यों हुआ ? व्यक्तिशः हम धर्म का पालन करते थे, परंतु धर्म के संरक्षण के लिए राष्ट्र के रूप में खड़ा होना पड़ता है यह बात हम सब अनेक शताब्दियों तक भूल गए। राष्ट्रधर्म का पालन न करने के कारण हमारा समाज दुर्बल, स्वत्वहीन तथा दास्यवृत्ति वाला बन गया। व्यक्तिगत आदर्श और धर्मपालन उच्च श्रेणी का था परंतु उसे राष्ट्रीय अधिष्ठान न होने से यह ध्येयवाद निराधार होकर रह गया। इस परिस्थिति में परिवर्तन लाना, तेजस्वी, स्वत्वयुक्त समाज का निर्माण करना आवश्यक था। धर्मतत्व तथा उच्च ध्येयवाद के पीछे सशक्त राष्ट्रभाव खड़ा होने पर ही राष्ट्र जीवित रहता है। यह समझकर उसी दृष्टि से समिति का कार्य प्रारंभ हुआ। इसीलिए प्रथम वंदन मातृभूमि को।

मातृभूः पुण्यभूः

हमारी मातृभूमि कैसी है। इसने मेरे अनेक पुरखों को जन्म दिया है। उनकी गौरव गाथा वह गाती है। जन्मदात्री माँ विशिष्ट समय के पश्चात् शिशु को स्तन पान देना बंद करती है। परंतु यह मातृ भूमि जीवन के अंतिम क्षण तक मेरा पोषण करती है,

इतना ही नहीं तो जीवनान्त होने पर भी अपने आंचल में प्रेम भाव से समा लेती है। अतः प्रथम वंदन उसको।

मेरी मातृभूमि पुण्यभूमि भी है। इस भूखण्ड को हिन्दु ही पवित्र मानता है ऐसा नहीं तो चौदहवी शताब्दि में भारत में आया हुआ विदेशी प्रवासी अब्दुल लिखता है कि

Its dust is purer than air and its air is purer than purity itself. Its delightful plains resemble the gardens of paradise, if it is asserted that paradise is in India be not surprised, because paradise itself is not comparable to it. यहां का व्यक्ति हिमालय को देवता मानता है। हिन्दु धर्म के सभी पंथोपपंथो के श्रद्धास्थान देशभर में बिखरे हैं। देवताओं को भी मोक्षप्राप्ति के लिए यहां जन्म लेना पड़ता है। जीवन के अंतिम सत्य की अनुभूति लेने वाले ऋषिमहात्माओं ने यही जन्म लिया है। जो जो पवित्र, मंगलमय है वह सब यहां ही केन्द्रीभूत हुआ है। योगी अरविन्द कहते हैं कि "यह भूमि केवल माटी नहीं, भौतिक पदार्थों से बना पुंज नहीं, तो यह है दिव्यत्व का साकार रूप।" अपनी मातृ भूमि अर्थात् दैवीशक्ति की अभिव्यक्ति है। विश्व की उत्पत्ति, स्थिति, विकास तथा विनाश का कारण होने वाली दुर्गा ने ही अपनी मातृ भूमि का रूप धारण किया है। इसी रूप में उसका साक्षात्कार हमें होगा।

हमारे देश का प्रत्येक कण अपने पूर्वजों के त्याग, तपस्या, बलिदान से अनुप्राणित हुआ है और हम उसीसे बने हैं। यह महानता, यह पवित्रता, सादगी, तपसाधना हमें अपने पूर्वजों से विरासत में प्राप्त हुई है। वह हमने भी आत्मसात् करनी है।

त्वया वर्धिताः संस्कृताः त्वन्मुता -

ऐसी मातृभूमि ने हमें बड़ा किया है। संस्कारित किया है। इन्हीं संस्कारों से हमारा जीवन गढ़ा है। आयु बढ़ी है इसलिए हम बड़ी नहीं हुई है अपितु संस्कारों से हमारा मन, बुद्धि विकसित हुई है। ऐसी तेरी कन्याएं तुझे संगठित होकर अभिवादन करती है।

अये वत्सले मंगले हिन्दुभूमे -

हमारी इस भारत माता का कैसे वर्णन करे ? यह मूर्तिमन्त क्षमा है। उसका देना अमाप है। मांगल्य इसके कण कण में प्रगट होता है। 'चरण पावन चल रहे थे, राम प्रभु और जानकी के। धूलि कण इस धरती के मां, करे पुनीत मलिन तन मन।' यह हमारी आकांक्षा है।' यह भूमि सबका कल्याण करने वाली है, सबको सुख देने वाली है, सबका दुख हरने वाली है। ज्ञान दीप प्रज्ज्वलित कर अज्ञान का अंधकार दूर कर जीवन उदात्त बनाने वाली यह भूमि हमारी मातृभूमि है।

यह भूमि हिन्दुओं की है। परंतु अन्य मतावलम्बियों को भी इसने उदारतापूर्वक समा लिया है। हिन्दुत्व यही इस भूमि का स्वत्व है। उसका संरक्षण यही हमारा जीवित ध्येय है। उसका यही रूप हमारे मन में बसाना चाहिए। इसका रूप इसके गुणों का दर्शन कराता है। यह हमारे मन में स्थायी होने तक हमारी आकांक्षा सफल नहीं होगी। हिन्दुभूमि का नाम लेते ही ध्यान आता है

'हिमालयात् समारभ्य यावदिन्दुसरोवरम्
तं देवनिर्मित देशं हिन्दुस्थानं प्रचक्षते।'

हिन्दु अर्थात् दैवी गुणों के लिए साधना करने वाला तेजस्वी, दुर्बलरक्षक, दुष्टनिर्दालक, धर्मनीतितत्व का प्रतिष्ठाता - यह उसकी पहचान है। यह स्मरण रखने के लिए हम कहते हैं 'हिन्दुभूमे'

स्वयं जीवितान्यर्पयामस्त्वयि -

हमारी परम पावन मातृभूमि के चरणों पर जीवन समर्पित करने का संकल्प हम प्रतिदिन दोहराते हैं। राष्ट्रीय चारित्र्य गठन करने का कार्य एक दिन का नहीं, अपितु प्रतिदिन, जीवन भर करने का है। कुछ क्षण धुआंधार बरसने वाली बारीश से रिमझिम बरसने वाली वर्षा भूमि में गहराई तक पहुंचने वाली होती है जो अत्यंत उपयुक्त होती है। आजीवन सातत्य से तपभावना से कार्य करना कठिन है। मां, यह जीवन तेरा ही है, अर्थात् इसका एक एक क्षण तेरे ही सुख के लिए समर्पित है। इस जीवन पर तेरा ही अधिकार है। तेरी ही सेवा में इसका अंत होना चाहिए। यह समर्पण स्वेच्छापूर्वक निरपेक्ष प्रेम तथा श्रद्धा से किया है, प्रलोभन या किसी दबाव में नहीं। इस समर्पण से हमारा जीवन धन्य होगा यह हमारी श्रद्धा है, हमारा परम सौभाग्य है।

नमो विश्वाशक्त्यै -

अब हम विश्वशक्ति को वंदन करते हैं। इसने हमारा यह विशाल हिन्दु राष्ट्र निर्माण किया है। राष्ट्र का अर्थ केवल भूखंड नहीं तो उसका इतिहास, उसकी परम्परा है। इस राष्ट्र ने 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का उद्घोष किया। विश्व को मानवता का पाठ पढ़ाया। ऐसे राष्ट्र के हम घटक हैं। उसकी सेवा करने की प्रेरणा हमें प्राप्त हुई यह आदिशक्ति की असीम कृपा है। उस शक्ति को हमारा प्रणाम -

समुन्नामितं येन राष्ट्रं न एतद् -

हमारी मातृभूमि की एक विशेषता है, जिसके कारण सारा विश्व उसके सामने नतमस्तक होता है। वह है भारतीय स्त्री का शुद्ध शील। कुलशीलवती, त्यागी, निष्ठावान स्त्री यह भारत माँ का सबसे विशेष आभूषण है। औद्योगिक, आर्थिक, शस्त्रास्त्रविषयक प्रगति से भी यह आभूषण मूल्यवान है। परन्तु पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण हमें पथभ्रष्ट कर रहा है। जीवन में धारण करने योग्य निष्ठा, प्रेम, उसके कारण त्याग, त्याग से आने वाली तेजस्विता यह सब हम खो रहे हैं। मन का समाधान हमसे दूर भाग रहा है। छोटे से कारण को लेकर अपने पति को छोड़ने वाली

स्त्री कहां और कसौटी के संकटों के क्षणों में भी पति का साथ न छोड़ने वाली, उसको अच्छे कार्य की प्रेरणा देने वाली, उसकी माता बनकर रहने वाली भारतीय स्त्री कहां ! जगज्जननी के पास मांग रही है यही शुद्ध शील, निष्ठा, त्याग, संयम, स्नेहशील मातृत्व बाधाओं के हिमालय को पार कर सकने की जिद्द। सतीत्व बचकाना बात नहीं। सती अर्थात् केवल जलना नहीं। अविवाहित स्त्री भी सती हो सकती है, व्यक्तिगत नहीं समाज का प्रपंच संभालने वाली। सतीत्व को पचाने की शक्ति प्राप्त करना ऐरे गैरे का काम नहीं, अग्नि धारण करने वाला पात्र भी उतना ही समर्थ चाहिए अन्यथा पात्र भी जल जाएगा। मन की यह शक्ति, सहयोग से जीवन विकसित करने का कार्य केवल भारतीय स्त्री ही कर सकती है। वनवास में पति का साथ देने वाली सीता, पति के हृदय का, तेजस्विता का स्फुल्लिंग सतत प्रज्वलित रखने वाली द्रौपदी, मृत्यु के कराल जबड़े से अपने पति को जीवित निकालने वाली सावित्री, हमारा आदर्श है। हे मा, हम तेरी लाड़ली कन्याएं हैं ना ? परम्परागत विरासत तुम हमे प्रदान करोगी यह विश्वास है। सतीत्व का यह आभरण केवल भारत को नहीं अपितु अखिल विश्व को तारने वाला है यह हमारा विश्वास है।

समुत्पादयास्मासु -

एक ही स्त्री कन्या, बहन, पत्नी तथा माता की भूमिकाएं निभाती हैं। इस प्रत्येक भूमिका में अपने परिवार को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा वह देती है। जीवनरथ का सारथ्य कुशलता से करती है। परिवार में कोई दुष्प्रवृत्त, दुराचारी, राष्ट्रद्रोही न बने इसलिए सजग रहना उसका सार्वकालिक कर्तव्य है। घर ऐसा स्थान है जहां मानव गढता है। उसकी आकांक्षा, कर्तव्यबुद्धि यहां पुष्ट होती है। जीवन केवल अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए भी जीना है, दूसरों के सुख मे अपना सुख देखना है, यह पाठ परिवार में ही मिलते हैं। दूसरो के दुःखों में हम सहभागी हो सकते हैं परंतु दूसरों के आनंद से आनंदित होना कठिन है। इस संवेदनशीलता से मानव मानव, बनता है। भारत का एक प्रत्येक घर एक किला है उसमे किसको प्रवेश देना, किसको नहीं इसका विवेक किलेदार को रखना पड़ता है। वही गृहिणी से भी अपेक्षित है।

घर की दहलीज पर रेखांकित रंगोली की मंगल रेखा अशुभ अमंगल को भगाती है। दुराचारी, दुष्टवृत्ति से लड़ने के लिए सामर्थ्य चाहिए। शस्त्र भी उतना ही प्रभावी चाहिए। गृहिणी के पास कौन से शस्त्र हो सकते हैं ? संयम, त्याग, स्नेह क्षमा। क्रोध को जीतने वाला अमोघ शस्त्र है शांति, ममता। इन शस्त्रों से किला बचाने में यश मिलता है। लड़ते समय होने वाले घावों को शूरता से सहन करना है। वही भूषण है। स्त्री का सामर्थ्य अपरिमित है। वह चाहेगी तो नंदनवन बहरेगा अन्यथा स्वर्ग का नरक भी बना सकती है। स्वर्ग सुख की प्राप्ति पैसे से नहीं तो मनःशांति, समाधान से होती है। हम स्वत्वयुक्त निष्पाप होंगे, परिवारजनों को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देंगे, यही अपना कर्तव्य है, यश भी है।

ध्येयनिष्ठ खण्डोबल्लाल की बहन संतुमाई अपना व्यक्तिगत अपमान भूलकर राजा की अर्थात् देश की सेवा हेतु आत्म बलिदान करती है। सुकन्या वृद्ध पति की पत्नी बनती हैं। राजकन्या शर्मिष्ठा राजपत्नी की दासता स्वीकार कर कुलनाश रोकती है। ध्येयच्युत पति को कर्तव्य की स्फूर्ति जयमती देती है। जीजामाता अपने पुत्र की संभ्रमावस्था हटाकर उसको कार्य प्रवण बनाती है। ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण है।

स्त्री के मन में प्रेरणाशक्ति जागृत नहीं होने से क्या होता है ? श्री प्रेमचंद के 'गबन', श्री शांता कुमार के 'कैदी' से स्पष्ट होता है। परंतु स्त्री का सही रूप यह नहीं है। उसका सत्य रूप है ससुराल और मायके को अपने चारित्र्य की स्थिर, शाश्वत ज्योति से आलोकित करना। अतः राष्ट्रद्रोह, अप्रामाणिकता, भ्रष्टाचार को दृढ़तापूर्वक अपने परिवार से दूर रखने का अथक प्रयास करने का दायित्व स्त्री का ही है। व्यक्ति व्यक्ति को संस्कारित कर राष्ट्रनिष्ठा की दृष्टि देना यह समिति के कार्य का महत्वपूर्ण अंग है। स्त्री की कार्यशक्ति राष्ट्रनिर्मिति के कार्य में लगे यही समितिकार्य का उद्देश्य है।

सुशीलाः सुधीराः समर्थाः समेताः -

शक्तिवान, धैर्यवान, शरीर और मन से बलवान महिलाएं राष्ट्र निष्ठा के सूत्र से संगठित होने पर तेजस्वी राष्ट्र निर्माण कर सकती है। शारीरिक दुर्बलता होने पर भी आत्मिक मानसिक बल से वह अद्भुत कार्य कर सकती है। इसीलिए आत्मबल बढ़ाने हेतु समिति का आग्रह है। असंगठित स्त्री शक्ति व्यर्थ इधर-उधर भटक रही है, उसका उचित माध्यम से उपयोग होगा तो उससे निर्माण होने वाली प्रचंड शक्ति राष्ट्र को उन्नत कर सकती है। समाज हित में व्यक्तित्व विलीन करने की प्रवृत्ती स्त्री में ही नहीं होगी तो वह राष्ट्र में कैसे दिखेगी? यह भावना निर्माण करने के लिए एकत्रित आना आवश्यक है। आपसी मतभेद भूलना ही चाहिए। एक महान ध्येय के लिए अपनी व्यक्तिगत जिद् छोड़नी पड़ेगी। समिति की शाखा में राष्ट्र का लघु रूप दिखता है, दिखना चाहिए। राष्ट्रसेवा का पाठ वहां आचरण में लाया जाता है। धन, बुद्धि, जाति आदि के कारणों से आने वाले कृत्रिम भेदभाव, वैषम्य, क्षुद्रभाव को जीतकर स्वाभाविक स्नेह संबंध विकसित होते हैं, ऐसा होने पर ही व्यक्ति व्यक्ति के हृदय मंदिर में भारत माता की मूर्ति प्रतिष्ठित होती है। तेजस्वी हिन्दु राष्ट्र का यह अरुणोदय है।

हे जगज्जननी हमारी इस आकांक्षा को साकार रूप देने हेतु आवश्यक सामर्थ्य हमें दो। यह सामर्थ्य हमें तेरे ही समर्थ आशीर्वाद से प्राप्त होगा। हमारा जीवन धन्य होगा। पानी जैसा शरीर स्वच्छ करता है वैसे ही भावपूर्ण शब्दों से की हुई प्रार्थना हृदय को, मन को निर्मल बनाती है। उससे मन पर अच्छे संस्कार होते है।

प्रार्थना याने शब्द नहीं, उसके पीछे होने वाली भाव पूर्ण याचना है। प्रार्थना केवल पूजा के लिए नहीं तो अपने में पवित्र विचार दृढ़ करने के लिए है।

विशेष पुस्तक
माँ की पावन पूजा में - सेविका प्रकाशन

भगवा लहर लहर हिन्दु प्राण

भगवा ध्वज- स्नेह, पावित्र्य तेज बरसाने वाला, भारत के विक्रम एवं वैराग्य का मूर्त रूप, हिन्दु जनमन का प्रेरणास्थान यह भगवा ध्वज। विजयी, वैभवशाली हिन्दुओं के इतिहास का साक्षी यह ध्वज हमारे जीवनादर्शों का एवं राष्ट्र का मानचिन्ह होने के कारण इसके सम्मान की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग करने में अनेकों ने जीवित की सफलता मानी है।

समिति भी उसी को अपना प्रेरणास्थान, मार्गदर्शक गुरु मानती है।

'ध्वज' शब्द का अर्थ आद्य स्वरूप-

"ध्वजति", गच्छति, उच्छ्रितो, भवति अर्थात् जो ऊपर जाता है, ऊर्ध्वगामी है, ऊंचा फरहता है वह ध्वज; ऐसा व्युत्पत्ति के अनुसार ध्वज शब्द का अर्थ सिद्ध होता है।

ध्वज यह चिन्ह है सम्मान का, यश का या आदर्श का। किसी लम्बे दण्ड को विशेष प्रतिमा बांध कर संदेश पहुँचाने, के लिए उसे खडा करना यही शायद प्राचीन काल में ध्वज का आद्य स्वरूप होगा।

प्राचीन भारत के ध्वज- वैश्विक साहित्य में ऋग्वेद का स्थान अनन्यसाधारण है। ऋग्वेद के आधार से यह स्पष्ट होता है कि भारत में भगवा (केशरिया) रंग का ध्वज ईसा पूर्व दो हजार वर्षों से प्रचलित है।

उदाहरण के लिए-

"केतुं अरुणं यजध्वे।" ऋ. ६-४९-२ (अरुण- भगवा, केसरिया ध्वज का पूजन करना चाहिये।)

महाभारत, गुप्तकालीन युक्तिकल्पतरु, अपराजितपृच्छा आदि प्राचीन तथा मध्ययुगीन ग्रन्थों में ध्वज का वर्णन प्राप्त होता है। हमारे देवताओं के भी भिन्न भिन्न ध्वज थे ऐसे संदर्भ प्राप्त होते हैं। उदा.

भगवान शिव शंकर का वृषभध्वज, श्री विष्णु का गरुडध्वज, भगवती दुर्गा का सिंहध्वज, श्री गणेश जी का कुम्भध्वज या मूषकध्वज, कामदेव मदन का मकरध्वज आदि। राजसत्ता के विकास के साथ ध्वज राजचिन्ह बन गया। महाभारत में अर्जुन का कपिध्वज, कृपाचार्य का वृषभध्वज, जयचंद्र का वराहध्वज, दुर्योधन का गजध्वज, भीष्माचार्य का ताल ध्वज भीम का सिंहध्वज इस बात को सिद्ध करते हैं।

प्राचीन ध्वज परंपरा में ध्वजों का आकार या अंकित चिन्ह भले ही विभिन्न रहें किन्तु ध्वज का रंग प्रारंभ से एक रहा है। भगवा या केशरिया रंग जो भारत की प्रकृति के साथ मेल खाता है। व्युत्पत्ति के अनुसार 'भारत याने तेज और रत याने रममाण होना अतः भारत याने तेज में रममाण होने वाला देश। इस हमारी भूमि में अनादि काल से तेज की ज्ञान की पूजा अखंडित रूप से होती रही है। उदीयमान सूर्य का तथा अग्नि की ऊपर उठती हुयी ज्वालाओं का भगवा रंग ही हमारे भारतीय मन को मोह लेता है। ऋग्वेद से लेकर इस बात के संदर्भ मिलते हैं।

अदश्रं अस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु भ्राजन्तो अग्नयो यथा।

(ऋ. १-५०-३)

उदीयमान सूर्य की किरणें तेजस्वी अग्नि की ज्वाला समान तथा फहराते ध्वज के समान दिख रही है। यहाँ ध्वज, सूर्य, किरण और प्रज्वलित अग्नि ज्वाला में स्पष्ट रूप से जो समानता दिखाई देती है उसका वर्णन किया है। आग्नि को पावक भी कहा जाता है- तेज ऐसा हो जो दूसरों को पवित्र शुद्ध बनाता है। भारतीय परंपरा की यही विशेषता है। स्वयं पवित्र रहकर दूसरों को भी पवित्र बनाने का हमारा संकल्प है। अग्नि दाहक भी है। उससे छेडछाड करने पर उसका उग्र रूप प्रकट होता है। भारतीय स्त्री को दुर्जनों के लिए दाहक बनाना है यह अनेकों बार सिद्ध हुआ है।

अग्नि अर्थात त्याग - स्वयं जलकर दूसरों का जीवन समृद्ध बनाने वाला अग्नि हिन्दु जीवन परंपरा का प्रतीक है। सात्विकता, शुद्धता, पवित्रता का तेज इतना प्रखर होता है कि उसको हाथ लगाने के साहस नहीं होता है। पवित्रता का तेज हम अधिकाधिक प्राप्त करें तब दुष्टता निष्प्रभ होगी।

अग्निज्वालाएँ ऊर्ध्वगामी जीवनपद्धति का संकेत है अग्निज्वालाओं को अधोगामी बनाने का किसी का भी प्रयत्न आज तक सफल नहीं हुआ है। हिन्दु तत्वज्ञान भी ऐसा ही है। उसको दबाने की कितनी भी कोशिशें करें वह कभी नष्ट नहीं होगी। इतना ही नहीं तो ऊपर ही उठेगी। यज्ञमय जीवन का दर्शन हमें अग्नि में होता है।

अथर्ववेद में भी अरुण केतु का निर्देश मिलता है। इससे यह सिद्ध होता है कि वैदिक युग में भगवे ध्वज प्रयोग होता था। उदाहरण-

"अरुण केतुः ।" (अथर्व - ११-१०-२)
"अरुषः केतु।:" (ऋ. ६-४९-२)
"अग्निः केतुः।" (ऋ. १-५०३)

आगे चलकर रामायण, महाभारत काल में ध्वज भगवा ही था। यवनों को पराजित करने वाला चंद्रगुप्त मौर्य, शकों का नामों निशान मिटाने वाले सातवाहन नृपती, हूणों को भगाने वाले गुप्त सम्राट आदियों ने भगवे ध्वज को साक्षी रखकर ही अतुलनीय पराक्रम किया यह तो एक ऐतिहासिक सत्य है।

ईसा की छठवीं शताब्दि में बंगाल के पाल राजा का ध्वज केसरी था राजस्थान के राजपूत राजा भगवान एकलिंग जी के प्रसाद के रूप में भगवा ध्वज स्वीकार करते नेपाल के राजा मूल राजपूत माने जाते हैं। इस आधुनिक युग में स्वयं को 'हिन्दुराष्ट्र' कहने वाला नेपाल एकमेव हिन्दुराष्ट्र है। वहां तेजस्वी भगवे ध्वज ने अपना प्राचीन तेजस्वी तथा स्वतंत्र रूप अक्षुण्ण रखा है और गतकाल के समान आज भी उत्तुंग और शान के साथ फहर रहा है। इतिहास से स्पष्ट होता है कि देवगिरि के यादव नृपों का ध्वज भगवा था तथा विजयनगर के सम्राटों का ध्वज भी भगवा ही था।

इ. स. १५६५ में तालीकोटि की लड़ाई हुयी। उस समय तौरिफ अपतबी नामक एक लेखक वहां उपस्थित था। उसने एक ग्रंथ लिखा है 'तवरिफ-इ-हुसेनशाह'। इस ग्रंथ में अनेक चित्र हैं जिनमें एक चित्र ऐसा है जिसमें राजा रामदेवराय के सामने वाले हाथी पर भगवा ध्वज है।

हिन्दुपदपादशाही की स्थापना करने वाले श्री शिवाजी महाराज का ध्वज भगवा ही था। इतिहासकार चिं. वि. वैद्य ने स्पष्ट रूप से प्रमाण दिया है कि मालूजी राजा (शिवाजी के दादा जी) के समय अन्य सरदारों के ध्वज लाल, पीले, आदि विविध रंग के थे किंतु भोंसले कुल का ध्वज, भगवा ही था। शहाजी राजा (शिवाजी के पिता) भगवे ध्वज के विषय में गौरव के साथ कहते हैं "स्वयं शंभुमहादेव ने गोसाईं रूप में सपने में दर्शन दिया।' तब प्रसाद श्रीफल तथा अपना भगवा वस्त्र दिया।' अतः सेना की ढाल, हाथी की ढाल, हाथी पर लगाया निशान और घोड़े की सवारी पर रखा गया डंका निशाण भगवे रंग का किया।

ख्यातनाम अंग्रेजी इतिहासकार मनुची ने शिवाजी महाराज की आग्राभेट का तथा उनके साथ के परिवार-सेवक आदि का वर्णन किया है।

"A Large elephant goes before him carrying his flag. His flag is orange and vermilian coloured, with golden decorating stamped on it."

(House of Shivaji - Shri Sarkar page 11 x)

तत्पश्चात् पेशवाओं के काल में भी ध्वज भगवा ही था। पेशवाओं ने जो ध्वज अटक पार फहराया वह यही ध्वज था। भगवा ध्वज मराठों का राष्ट्र ध्वज था किन्तु 'जरी पटका' को सेनापताका के रूप में रणभूमि पर ले जाते थे।

(पेशवा दफ्तर भाग २१ १६३ पृष्ठ १७९ तथा भारतीय इतिहास संशोधन मंडल वर्ष २४ अंक १)

इस प्रकार वेदकाल से अपनी सम्पूर्ण प्रेरणा सामर्थ्य तथा तेजस्विता से लहराता हुआ यह भगवा ध्वज अप्रतिहत परम्परा से चलता आया इस ध्वज की परम्परा खंडित हुई इ. १८१८ में जब पुणे नगर स्थित शनिवार वाडे पर यूनियन जैक ब्रिटिश का राष्ट्र ध्वज फहराया गया।

ध्वज का स्वातंत्र्य पूर्वकालीन इतिहास-पराधीन भारत को अपना ध्वज नहीं रहा। किन्तु स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए जो प्रयास चल रहे थे, उसके साथ ही स्वाधीन देश का ध्वज कौन सा होगा इस विषय पर विचार मंथन शुरू हुआ। उस विचार मंथन की परिणति यह आज का तिरंगा ध्वज है।

भगिनी निवेदिता ने ई. १९०५ में भगवे रंग का ध्वज जो पीले रंग के वज्र से अंकित है उसको भारत के राष्ट्रध्वज के रूप में पसंद किया।

मादाम कामा ने बर्लिन परिषद में (२२ अगस्त १९०७) तिरंगा ध्वज फहराया। हरी केसरी और लाल पट्टियां से बना यह ध्वज आठ कमल पुष्प, वंद मातरम् अक्षरों से अंकित था। ध्वज पर सूरज और चांद विराजमान थे।

१९१६ से लोकमान्य तिलक और ऐनी बेझंट ने पांच लाल तथा चार हरी पट्टियों का ध्वज बनाया। इसके बाएँ कोने में युनियन जैक, दाहिनी तरफ चांद और नीचे सप्तर्षि के सात तारें थे। कारागृह में यह ध्वज फहराया गया। १९१७ में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में ध्वज समिति गठित की गई। चर्चा होती रही किन्तु १९२० तक कोई निश्चित निर्णय नहीं हुआ। बाद में म. गांधी जी के आग्रह से लाल हरी तथा सफेद रंग की आड़ी पट्टियां और गहरे नीले रंग का चरखा ऐसा तिरंगा ध्वज बनाया गया।

१९३१ में नियुक्त ध्वज समिति ने सुझाव दिया की ध्वज केसरी रंग का होना चाहिए जिस पर नीले रंग का चरखा चित्रित किया जाए। किन्तु अंत में तिरंगी ध्वज के लाल रंग के स्थान पर केसरी रंग की पट्टी को अनुमति दी गयी। केसरीया ध्वज अस्वीकृत हुआ। इस तिरंगे ध्वज के रंग हिन्दू, मुस्लिम, इसाई आदि जाति के सूचक माने गये। बाद में इसका स्पष्टीकरण केसरी रंग, धैर्य, सफेद रंग, सत्य शांति और हरा रंग प्रेम और विश्वास का द्योतक ऐसा किया गया। चरखे का स्थान अशोक चक्र में लिया।

परंतु ध्वज राष्ट्र की आत्मा की उत्स्फूर्त पहचान होती है। वह किसी प्रस्ताव से नहीं बनती। हजारों सालों की जीवनपद्धति का प्रकट रूप होती है। इसको नकार कर तुष्टीकरण नीति के तहत वेदकाल से लेकर अंग्रेजों के सत्तासीन होने तक यह भगवा ध्वज ही भारत का प्रतिनिधित्व करता रहा यह भी सत्य नजर अंदाज

नहीं होना चाहिए। राजनीतिक दृष्टि से तिरंगा ध्वज हमने माना है परंतु हमारी संस्कृति का परिचायक भगवा ध्वज ही है।

भारतीय ध्वज का एक-चिन्तनपूर्ण तत्वज्ञान

हजारों सालों के इतिहास में ध्वज के प्रति पूज्य भाव अक्षुण्ण रहा है। उसका मूलाधार है ऋषि मुनियों के सैंकड़ों सालों का तपःपूत चिंतन। "वेत्ति विद्यामविद्यां च यः स वाच्यो भगवानिति।" विद्या और अविद्या को जानने वाला भगवान कहा जाता है। विद्या अर्थात् आत्मविद्या जानने वाला भगवान और उसका ध्वज यह भगवत् ध्वज।

भारत का भगवे रंग से नाता- बहुत ही निकट का है। यहां दिन का प्रारंभ होता है, केसरी रंग बिखेरने वाली अरुण रश्मियों के दर्शन से दिन की कृतार्थता का अनुभव किया जाता है, केसरी रंग की आभा देखकर किये गये संध्यावंदन से। यहां के लोगों के जीवन में जन्म से मृत्यु तक सभी संस्कार, मंगल क्षण मनाये जाते हैं केसरी अग्नि की साक्षी से। "काषायवस्त्रं करदंडधारिणम्" आबालवृद्ध सभी का सिर संन्यासी के सामने नतमस्तक होता है। छह विकारों पर विजय प्राप्त की, अब अधिक कुछ प्राप्त करने की आकांक्षा ही नहीं रही। ऐसी अवस्था में जीवन बिताने वाले संत कहते हैं - "मैं अब केवल परोपकार के लिये ही जीवित हूं।"

प्रारंभ से ही वैदिक आर्यों का जीवन जैसा यज्ञमय रहा, वैसा रणमय भी। उनकी यज्ञभूमि को असुरों ने सदैव रणभूमि बनायी तथा उनकी रणभूमि भी यज्ञ का ही एक रंग थी। क्योंकि यहां युद्ध होते थे केवल धर्म की रक्षा करने के लिए। राम रावण का युद्ध हो या बांग्ला देश के स्वातंत्र्य संघर्ष में हमारी सहायता हो, यहां का युद्ध सत्ता प्रस्थापित करने के लिए नहीं अपितु अन्याय के विरोध में किया गया प्रतिकार होता है।

यहां जनसाधारण नव वर्ष का स्वागत ध्वज फहराकर करते हैं। पंचांग में भी इस दिन का निर्देश 'ध्वजारोपणम्' इस शब्द से होता है। इस ध्वज की परम्परा उपरिचर राजा की इंद्र पर प्राप्त विजय में है। इंद्र ने समृद्धिकारक व्रत की जानकारी दी। "चैत्र शुद्ध प्रतिपदा के दिन अपने आंगन में एक वंश (बांस) का आरोपण, करके उस पर विजय ध्वज लगाओ। इंद्र का ध्वज जर्जर ध्वज कहलाता था। उसी नाम से मराठी में पेशवेकाल में 'जरीपटका' नाम मिला। इस प्रकार हिन्दुओं के धर्म, राजकारण एवं समाजजीवन के साथ यह ध्वज एकरूप हो गया है। राजनीति की दृष्टि से आज इस ध्वज को महत्व नहीं है। फिर भी धार्मिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में इसकी परम्परा अखंडित है। मंदिरों के शिखर पर भगवा ध्वज ही दिखाई देता है।

ध्वज की खंडित परम्परा पुनः स्थापित करने के लिए राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, राष्ट्र सेविका समिति, विश्व हिन्दु परिषद आदि स्वयंसेवी संगठन ध्वज से प्रेरणा लेकर अपने ध्येय मार्ग पर चल रहे हैं। रामराज्य परिषद, हिन्दु महासभा, जनसंघ, भाजपा आदि हिन्दुत्ववादी राजनीतिक दल भी "अखिल हिन्दु-विजय-ध्वज यह हम पुनः फहरायेंगे।

गुरोस्तु मौनं व्याख्यानम् -

राष्ट्र सेविका समिति इस अखिल भारतीय स्त्री संगठन ने भगवे ध्वज की खंडित परम्परा पुनः स्थापित की, उसे गुरु मानकर। व्यक्ति कितना भी गुणवान क्यों न हो कभी परिपूर्ण नहीं होता है। अतः जिसमे भारतीय संस्कृति एवं इतिहास समाया है ऐसे इस ध्वज तत्व को ही समिति अपना गुरु मानती है। इस ध्वज का आकार, रंग, गुच्छ ही नही अपितु इसका कण-कण हमारा मार्गदर्शन करता है।

उदीयमान सूर्य तथा प्रदीप्त अग्नि ज्वालाओं जैसा ध्वज का रंग है। युग-युग से विश्व को देने के बावजूद भी किंचित भी कम न होने वाला उसका प्रकाश, दातृत्व, जीवन दृष्टि, चिरंतन वैभव तथा अक्षय ज्ञान का प्रतीक है। सूर्य के तेजोमय प्रकाश की पूर्व सूचना देने वाली ऊषा ने प्रकाशप्रिय आर्यों को मुग्ध किया इसमें क्या आश्चर्य।

अग्नि त्याग, पावित्र्य, तेजस्विता, उपकारिता आदि सद्गुणों का प्रतीक है। उसको अर्पित हविर्द्रव्य देवों को पहुंचाने वाला यह भरत-अग्नि हमें विश्वास सत्य एवं त्याग सिखाता है। अग्नि उसको समर्पित वस्तु की अशुद्धता नष्ट करके उसको विशुद्ध रूप प्रदान करता है। अग्नि दाहक है। उसका यह गुण आर्य सती के विशुद्ध शील-चारित्र्य में दृग्गोचर होता है। ध्वज का आकार प्राचीन विशाल भारत जैसा है। उसका एक छोर ब्रह्मदेश एवं दूसरा छोर कन्या कुमारी सूचित करता है। ध्वज फहराते समय उपरि छोर छोटा तथा नीचे का बड़ा होना चाहिये। वैभवशिखर तक पहुंचने के लिये त्याग की मज़बूत नीव अतीव आवश्यक है। ध्वज का नीचे का बड़ा छोर त्याग का तो उपरि छोटा छोर वैभव का प्रतीक है ऐसी हमारी धारणा है।

अनेक रेशमी धागों से गूंथे हुए ध्वज के फुंदे संगठन तथा सूर्य किरण एवं अग्नि ज्वाला के प्रतीक हैं। उससे सूचित होता है की हमारा संगठन अग्निज्वाला समान सदैव उन्नतिसाधक तथा सूर्य किरणों की भांति स्वबांधवों के लिये उपकारक, संजीवक और तेजस्वी होना चाहिए। ध्वज दंड राष्ट्र की अस्मिता एवं स्वाभिमान का मानो प्रतीक है।

विद्याध्ययन समाप्त करने के बाद गुरु को गुरुदक्षिणा अर्पण करने की हमारी परम्परा है। इसी कारण गुरुपौर्णिमा के शुभ पर्व पर भगवे ध्वज के सामने हम श्रद्धा से जो गुरुदक्षिणा समर्पण करते उसी पर समिति की अर्थव्यवस्था आधारित है।

वर्ष प्रतिपदा के दिन घर-घर पर भगवा ध्वज फहराने का आग्रह समिति करती है। अपने मान बिन्दुओं, श्रद्धा स्थानों पर हुए आघातों का प्रतिकार करने का सामर्थ्य प्राप्त करना आवश्यक

है। प्राचीन काल में शक हूणों ने भारत पर आक्रमण कर परास्त किया। प्रतिवर्ष एक सहस्त्र सुंदर अविवाहित युवतियों की मांग की तथा इस राष्ट्र के मान चिह्न 'भगवे ध्वज' पर बंदी लगाई। ध्वज के बदले स्त्री की साड़ी एवं कंचुकी की गुढी उभारने को बाध्य किया। इन हूणों को पराजित कर भगवा ध्वज सन्मान के साथ फहराया राजा शालिवाहन ने। वही दिन है वर्ष प्रतिपदा।

हमारे अपमान की स्मृति मिटाकर, अपने आत्मगौरव की भावना जगाने के लिए राष्ट्र सेविका समिति कार्य कर रही है।

घर-घर में पूजा घरों में छोटे-छोटे ध्वज रखकर उनकी पूजा करना देश की भावी पीढ़ी तक इस रंग के सन्मान का संस्कार करना, यही इस उपक्रम का उद्देश्य है। किसी अच्छी बात का स्वीकार एक स्त्री करती है तो सारे परिवार तक वह पहुंचती है। अगली पीढ़ी पर, परिवार के सदस्यों के मन पर इस प्राचीन राष्ट्रीय भावचिह्न की मुद्रा अंकित करना माता के लिये सरल है। रंग भी संस्कार करता है। घर में जो भी आता जाता है उसके मन को भी प्रभावित किये बिना नहीं रहता।

यह ध्वज है अभिमान हमारा।
तन मन जीवन प्राण हमारा,
अपनी गति मति का ध्रुवतारा
मिट जायें हम, अमिट रहे यह अमरण प्रण ठहरे।

अध्ययन हेतु पुस्तकें
भगवद्ध्वज - सेविका प्रकाशन
भगवद्ध्वज - नाना पालकर

भगवा राष्ट्र निशान

यह भगवा राष्ट्र निशान फहरता प्यारा
बरसता तेज पावित्र्य स्नेह की धारा ।।धृ।।

श्री विष्णु का ध्वजदंड
दानवता जो उद्दण्ड
कर उसका खण्ड खण्ड
गरुड के साथ जो नभ में
विहरा प्यारा ।।१।।

रक्तिमा अरुण संध्या का
दीप्तवर्ण अग्निशिखा का
यह तिलक भरत भूमि का
रिपु रुधिर- रंग से रंजित है
यह न्यारा ।।२।।

यह असुरों का अन्तक है
यह सृजनों का पालक है
यह विनतों का तारक है
श्री राम कृष्ण रणचण्डी दुर्गा
काली का फिर न्यारा ।।३।।

विक्रम ने इसे चढ़ाया
चन्द्रगुप्त नें भी बढ़ाया
श्री अशोक ने फहराया
शक हूण ग्रीक और म्लेंच्छ हटा कर
भरत भूमि को तारा ।।४।।

सम्मान समर्थ शिवा का
रजपूत जैन सिखों का
अभिमान यह मराठों का
दिल्ली के तख्त पर घणाघात
कर अटक नदी तक लहरा ।।५।।

चारित्र्य हमें सिखलाता
त्याग का मार्ग दिखलाता
संदेश शौर्य का देता
प्राण की बाजी से लड़ना रण में
मोह त्याग कर सारा ।।६।।

हिन्दुत्व

किसी भी व्यक्ति की, समाज की या राष्ट्र की अपनी एक विशेषता होती है जिससे वह पहचाना जाता है। उसका अस्तित्व भी उसी से जुड़ा हुआ रहता है। भारत की भी अपनी पहचान है 'हिन्दुत्व'। हिन्दुत्व अर्थात् हिन्दु होने का भाव। विश्व में आज कुछ शब्द विवाद्य बने हैं उनमेंसे एक प्रमुख शब्द है हिन्दु-हिन्दुत्व। कारण इस संकल्पना के बारे में गलत धारणा है। वह अज्ञान के कारण है ऐसा भी नहीं कह सकते हैं। ऐसा अहसास होता है कि यह धारणा जान बूझकर बना ली गयी है। वह भी भारत के बाहर के लोगों ने जितनी नहीं उतनी उनके रंग से रंगे भारतीयों ने अधिक। इस संकल्पना की स्पष्ट कल्पना होने पर उसके बारे में अभिमान जगेगा, एक प्रबल शक्ति केन्द्र निर्माण होगा जो पश्चिमी सत्ताधीशों के लिये एक चुनौती बन सकता है अतः इसके प्रति अनास्था, उदासीनता तथा हीनता का भाव निर्माण करने हेतु प्रायोजित खच्चीकरण अभियान में पश्चिम के लोग स्वार्थपूर्ति के कारण जाने अनजाने सहयोग दे रहे हैं। हिन्दु 'धर्म' का अर्थ 'सम्प्रदाय' जैसा ही करने के कारण अनर्थ परम्परा निर्माण हुई है।

हिन्दुत्व प्राणशक्ति

भारत की प्राणशक्ति के रूप में विद्यमान हिन्दुत्व के बारे में अति प्राचीन काल के इतिहास, साहित्य में निर्देश मिलना इस लिये कठिन है कि उन दिनों और कोई भी दूसरा सम्प्रदाय नहीं था। एक से अनेक होने पर ही, प्रत्येक की पहचान होने के लिये अलग-अलग नाम देना पड़ता है। इस नाम के साथ उस व्यक्ति के गुण भी जुड़ते जाते हैं- वही उसकी पहचान बनती हैं- वही उसका अस्तित्व होता है। जैसे 'श्रीराम' नाम का उच्चारण करते ही कोदंडधारी राम, उसके अनेक गुणों के साथ हमारे सामने साकार होता है वैसे ही 'हिन्दुत्व शब्द के बारे में है। इसके बारे में जब संभ्रम निर्माण होता है तब संकट खड़ा होता है। आज आवश्यकता है 'हिन्दु' संज्ञा का समुचित अर्थ समझने की-समझाने की।

भारत में हिन्दु एवं धर्म समानार्थी शब्द बने हैं। धर्म की संकल्पना पश्चिमी देशों में नहीं है कारण सभी देश भौतिकता को अपने जीवन का आधार मानते हैं और हम अध्यात्मिकता को। इसलिये अंग्रेजी में अनुवाद करते समय सम्प्रदाय को धर्म के समकक्ष माना गया। सम्प्रदाय का संबंध उपासनापद्धति से है- एक ही प्रेषित, एक ही ग्रंथ, एक ही उपासना- पद्धति का एकांतिक आग्रह होता है। धर्म शब्द जीवन मूल्यों से, कर्तव्य भावना से संबद्ध है इसलिये अधिक उदार है। हमारी धारणा है कि सत्य ईश्वर है और उसके अनेक रूप हैं, अनेक नाम हैं 'एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति', 'सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति' ऐसी हमारी मान्यता है - सर्वसमावेशकता यह हिन्दुत्व की विशेषता है।

सहिष्णुता, उदारता यह हिन्दुत्व के और पहलू हैं। सहिष्णुता, असहिष्णुता के बारे में एक महानुभाव ने कहा है कि सहिष्णुता का परिचायक अक्षर है 'भी' और असहिष्णुता का 'ही'। हमारा ईश्वर, हमारा तत्वज्ञान, जीवनपद्धति श्रेष्ठ है तुम्हारी भी है, यह सहिष्णुता है और हमारा ही ईश्वर श्रेष्ठ है, तत्वज्ञान श्रेष्ठ है वह नहीं मानने वाले को जीवित रहने का अधिकार नहीं, उसको खत्म करना पुण्य कार्य है यह असहिष्णुता। हमारी 'भी' वृत्ति ने यहां अनेकों को आश्रय दिया सम्मान पूर्वक अपना लिया। ज्यू लोगों का अनुभव अनोखा था। इस्त्रायल बनने के पश्चात् भारत छोड़ते समय उन्होंने कहा कि भारत एकमेव देश था जहां उनका अपमान, शोषण, उपहास नहीं हुआ। फिर भी आज 'हिन्दु' कहना साम्प्रदायिक हो गया, संकीर्ण हो गया। हिन्दु संकीर्ण, असहिष्णु होता तो ज्यू, पारसी के साथ भी झगड़ता। देशविभाजन के पश्चात् एक भी मुस्लिम यहां नहीं दिखायी देता। पाकिस्तान, बंगलादेश में हिन्दुओं का घटता एवं भारत में मुस्लिमों का बढ़ता प्रतिशत चौंकाने वाला है। भारत में हिन्दु असहिष्णु होता तो किसी गैर हिन्दु को सर्वश्रेष्ठ पद नहीं देता। 'ही' वाली वृत्ति के कारण सहजीवन संभव नहीं होता। इसका हम नित्य अनुभव कर रहे हैं यहां रहना है तो 'भी' वृत्ति के साथ रहना है ऐसा आग्रही हिन्दु बनना आवश्यक है। 'अमृतस्य पुत्राः वयम्' अमृततत्त्व की हम संतान, फिर कौन श्रेष्ठ-कौन कनिष्ठ ? उस अमृततत्व का स्फुरण हमारे में है, हम दीन दुर्बल, स्वत्वविहीन, आत्मविश्वासहीन कैसे होंगे। तेजस्विता, पौरुष की अनुभूति और उसका उपयोग सज्जन शक्ति के संरक्षण के लिये, दुष्टता के विनाश के लिए ही होगा - साधुरक्षण, खलनिर्दालन' यह हमारा ब्रीद है।

हिन्दू की परिभाषा

'हीनं दूनयत्येव' मेरुतंत्र
हिनासी तपसा पापान् पारिजात
हिंसया दूयते यस्मात्
हिनस्ति दुष्टान् दुरितानि
हिमं धुनोति
हिंदुर्दुष्टो न भवति नानार्यो न विदूषकः
सद्धर्मपालको विद्वान् श्रौत धर्मपरायणः

ऐसे संस्कृत वचन उपलब्ध हैं उनमें केवल गुणों का, नीति मूल्यों का ही निर्देश है- हीननता नष्ट करने वाला, तपसे पापों को नष्ट करने वाला, हिंसा से दुखी होने वाला, (किसी का शरीर नष्ट करना यही हिसा नहीं है अपितु स्वार्थ के लिए दूसरों को पीड़ा देना तथा दूसरों को दुख पहुंचाकर सुख पाना यह भी शास्त्रानुसार हिंसा ही मानी गयी है) दुष्टता, दुष्प्रवृती दूर करने वाला। जड़ता रूपी (अज्ञान) हिम को द्रवित या समाप्त करने वाला, हिन्दु कभी दुष्ट अनार्य एवं विदुषक नहीं हो सकता, सद्धर्म का पालन करने वाला, विद्वान, वेदप्रणीत मार्ग से चलने वाला व्यक्ति ही हिन्दु है।

भारत में आने वाले लोग भूमि मार्ग से आने पर प्रायः वायव्य सीमा से आते थे। उनको मार्ग में पहले सिंधु नदी लगती थी सिंधु नदी के दूसरी पार देश सिंधुस्थान-हिन्दुस्थान- वहां रहने वाला हिन्दु ऐसा कहा जाने लगा, वही नाम रूढ़ हुआ। परंतु उससे भी पूर्व यह शब्द साहित्य में कहीं कहीं दिखाई देता है। भारत में आने वाला प्रवासी ह्यूएनत्संग-लिखता है कि भारत इन्तु नाम से चीन में जाना जाता था इन्तु-इन्दु-चंद्र। शीत, आल्हाददायक चांदनी बरसाने वाला प्रकाशकुंज। भारत के क्रांतदर्शी ऋषिमुनियों ने जीवन के अंतिम सत्य की खोज की। विश्व को अपने ज्ञान प्रकाश से आलोकित किया, अपने जीवन की एक पद्धति विकसित की। उसी को लोग 'हिन्दु' जीवनपद्धति के रूप में जानने लगे। अपने नित्य चिंतन के कारण उसका स्वरूप प्रवाही रहा। पुराना ही अच्छा है, नया खराब ही है ऐसी एकान्तिक दृष्टि नहीं होने के कारण परिस्थिति से सुसंगत, परंतु स्थायी मूल्यों को सुरक्षित रखते हुए नये का स्वीकार करने की हमारी मानसिकता है। विकसनशीलता यह हिन्दु की और एक विशेषता है।

श्री अरविन्दो कहते हैं कि 'हिन्दुत्व में भौतिकता पर विजय प्राप्त करने की क्षमता है। हिन्दुत्व ही हिन्दुस्थान की राष्ट्रीयता है वह नष्ट होने पर भारत अस्तित्व रहित होगा।' ऐनी बेझंट ने कहा है कि 'हिंदुत्व भारत की जड़ है। उसका जैसा-जैसा चिंतन करते जायेंगे उसका अधिकाधिक मूल्य ध्यान में आयेगा। भारत से हिन्दुत्व की जड़ें उखड़ेंगी तो विश्व में इस श्रेष्ठ जीवन पद्धति का आधार ही नष्ट होगा। हिन्दुत्व यहां के रोम रोम में बसा है।' स्वा. वी. सावरकर कहते हैं - 'हिन्दुत्व ही एक मात्र शब्द था जो हमारे राष्ट्र के मेरुदंड के रूप में अस्तित्वमान था।' हिन्दुत्व के इन पुनीत भावनाओं के परिणामस्वरूप ही कश्मीर के ब्राह्मणों की व्यथा से मद्रास के नागर का हृदय भी हाहाकार कर उठता था। हिन्दु जन हिन्दुत्व की रक्षा के लिये ही प्राण हथेलियों पर लेकर लड़ते थे। हमारी माताएं हिन्दुओं पर होने वाले अत्याचारों पर आंसू बहाती थीं तो उनकी विजय पर गर्व करती थी। अर्थात् राष्ट्र के रूप में ही हिन्दुत्व भाव प्रकट होता था। हमारी विकसित विचारधारा ने ही हमें सिखाया की भरण पोषण माँ करती है। अतः जहां-जहां से हमारा भरण पोषण होता है वह हमारी 'माँ' है यह हमारी धारणा बनती गयी 'माता पृथिवि, पुत्रोऽहं पृथिव्याम्' अतः धरती हमारे लिये जमीन का टुकड़ा न रहकर धरती माता, भारत माता बनी, गंगाजल केवल पानी नहीं- तीर्थ बना, गाय केवल चार पैर वाला पशु नहीं- गोमाता बनी। यही कारण था कि धर्मनिरपेक्षता का डिंडिमी बजाने वाले, हिन्दुत्व से कोई रिश्ता नहीं मानने वाले, हमारे पूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने विदेशों में भारत महोत्सव किया तो वृक्षारोपण किया, प्रोक्षण के लिये अन्य जल नहीं गंगाजल का ही उपयोग किया, मंगल स्वर के लिये यहां से मंगल बाद्यवादक बुलाये, दीप प्रज्ज्वलन किया। मुख से हिंदुत्व की आलोचना, निंदा परंतु अंतर्मन का हिंदु भाव व्यवहार में प्रकट हुआ। अतः भगवान को मानने वाला, नहीं मानने वाला, मंदिरों में जाने वाला, नहीं जाने वाला हर कोई हिन्दु है। यह आत्मा का भाव है, इसीलिए पूजा पद्धति उपासना पद्धति से जकड़ा नहीं है। प.पू. चंद्रशेखर सरस्वती स्वामी जी के मठ में कुछ इसाई बंधु गये। वहां हिन्दु जीवनपद्धति का अनुभव लिया, उसका साक्षात् स्वरूप देखा तब वे इतने प्रभावित हुए कि हिन्दु धर्म स्वीकारने का मन हुआ। स्वामी जी को अपना मानस बताया तब पूज्यवाद स्वामीजी ने कहा कि इस प्रकार के परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं है कारण उन्होंने हिन्दु जीवनमूल्य प्रत्यक्ष व्यवहार में लाये हैं। हिन्दु परम्परा, श्रद्धास्थानों का सम्मान करना स्वीकार किया है अतः ईसा की पूजा करते हुए भी वे हिन्दु हैं - हिन्दु इसाई यह प्रयोग इसलिये संभव है कि हिन्दुत्व भौतिक विचार नहीं अध्यात्मिक अवस्था है। केवल जन्म से हिन्दु होना पर्याप्त नहीं, मन से, कर्म से हिन्दु होना महत्व का है।

लोकमान्य तिलक, स्वातंत्र्य वीर सावरकर, स्वामी विवेकानंद आदि आधुनिक महर्षिओं ने भी हिन्दुत्व की अवधारणा स्पष्ट करते हुए उपास्यास्थानां अनियमः (उपासना पद्धति का अनाग्रह) भारत को पितृभू, पुण्यभू मानना, भारत को माँ मानना, उसकी परम्पराओं का आदर करना, भारत के गौरव से गौरवान्वित होना, अपमान से अपमानित होना इतनी एकरूपता, साधना आदि बिन्दु रखे हैं। स्वामी जी ने तो कहा है अपने लाहौर के भाषण में कि हिन्दु शब्द का उच्चारण होते ही बिजली जैसा शक्ति प्रवाह शरीर में संचारित

होगा तब ही वह सच्चा हिन्दु होगा। कौनसी भी भाषा बोलने वाला, कौनसे भी देश में रहने वाले हिन्दु के बारे में ममत्वभाव हो। किसी भी हिन्दु के सुखदुख के साथ समरस होना ही हिन्दुत्व का लक्षण है। महात्मा गांधी जी ने भी माना था, हिन्दुत्व अर्थात् सत्य की सतत् खोज। उदासीनता हटाकर यह प्रक्रिया जारी रहने के कारण तेजस्वी बनकर हिन्दुत्व सारे विश्व में प्रकाशमान होगा। अर्नाल्ड टायनबी जैसे विचारक ने भी स्पष्टता से प्रतिपादन किया है कि बीसवी शताब्दी के अंत में सारे विश्व में संभ्रमावस्था अव्यवस्था निर्माण होने वाली है तब उससे संवारने की क्षमता विश्व के एक ही तत्वज्ञान में है वह है हिन्दु। उनके शब्द हैं-

Shri Ramkrishna's message was unique in being expressed in action. The message itself was the perenial message of Hinduism.'

Today we are still living in this transitional chapter of the worlds history but it is already being clear that a chapter which had a western beginning will have to have an Indian ending if it is not to end in, self destruction of human race. In the present age the world has been united on the material plane by Western technology. But this Western skill has not only annhilated distance, it has armed the peoples of the world with weapons of devastating power at a time when they have been brought to point-blank range of each other with yet having learnt to know and love each other. At this supremely dangerous moment in human history, the only way of salvation for mankind is an Indian way.

वसुधैव कुटुम्बकम्

हिन्दुत्व-हिन्दु की अवधारणा में वसुधैव कुटुम्बकम् वृत्ति का महत्व है। आज यातायात व दूर संचार यंत्रणा के कारण किलोमीटर की दूरी तेजी से कम हो रही है परंतु अनेक भौतिक उपलब्धियों के बावजूद भी कही अपूर्णता का अहसास है। पूर्णता केवल भारत से, उसके अध्यात्म से ही प्राप्त हो सकती है यह धारणा बनना प्रारंभ हुआ है। व्यक्तिनिष्ठता के कारण परिवार बिखर रहे हैं। भारत का वसुधैव कुटुम्बकम् का सिद्धांत पुनः अंकुरित हो रहा है। स्नेह, सुरक्षितता परिवार में ही मिल सकती है। सुसंस्कृतता के बिना व्यक्तिगत परिवार भी नहीं बन पाता है तो विश्व कुटुम्ब कैसे बनेगा? कुटुम्बसंकल्पना के कारण ही अंगांगी भाव, परस्परावलंबिता का भाव पुष्ट होगा तभी 'सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु का संस्कार हो सकेगा। हिन्दुत्व की यही विशेषता समझना, उसके प्रति गौरव की भावना भावी पीढ़ी में संक्रतित करना यह महत्वपूर्ण दायित्व हिन्दुओं को ही निभाना है।'

शापादपि - शरादपि

ब्रह्मतेज व क्षात्रतेज का सम्पूर्ण सहयोग राष्ट्रजीवन समृद्ध बनाता है। बुद्धि या बल, जिससे चाहो उससे हम जीत सकते हैं - शापादपि-शरादपि की भूमिका मायने रखती है। बॅ. जीना की चुनौती भरे आह्वान को स्वा. वीर सावरकरजी ने उत्तर दिया था। जीना ने कहा था 'हिन्दुओं, हमसे बचके रहो। भारत से हमें बाहर निकाल दिया जायेगा तो हमें आश्रय देने वाले अनेक देश हैं परंतु हमने अगर आपको भारत से हकेल दिया तो दुनियां में आपको अपनाने वाला कोई देश भी नहीं है। और ध्यान में रखो हम शेर और सिंह हैं।' स्वत्वविस्मृत हिन्दु के मन में घबराहट निर्माण करने वाला यह विधान था। स्वा. वीर सावरकर जैसे तेजोमूर्ति यह कैसे सहन कर पाते ? उन्होंने बॅ. जीना को उत्तर दिया - 'जीना-साहब, आपका बहुत-बहुत अभिनंदन ! हमारा सिद्धांत 'हिन्दुओं का हिन्दुस्थान का आपने पुरजोर समर्थन किया है। दूसरी बात आपके शेर या सिंह होने की। हम एकदम स्वीकार करते हैं। परंतु याद रखो, हम मनुष्य हैं- ऐसे मनुष्य कि जिनके हाथ में चाबुक है और चाबुक के इशारों पर शेर सिंहों को नचाना जानते हैं।' सहिष्णुता और समर्थता, विक्रम और वैराग्य दोनों से भी विजयी होने की आकांक्षा रगरग में भरना चाहिए। 'रग रग हिन्दु मेरा परिचय को' हमारा पक्ष धर्म का है- 'यतोधर्म स्ततो जयः' का स्थायी मानस हमारा है।

हिन्दु एक जीवन पद्धति

राष्ट्र को परिभाषित करने वाली भौगोलिक (देश) राजनीतिक (राज्य) अवधारणाओं से अलग ऐसी आध्यात्मिक, सांस्कृतिक (राष्ट्र) अवधारणा हमारी है जो उपर्युक्त विवेचनों से प्रकट होती है- इस राष्ट्र की परम्परा को, अस्मिता को, गरिमा को गौरवान्वित रखने वाले अनेक महानुभाव कौन थे ? श्रीराम, श्रीकृष्ण से लेकर इस देश के लिये अपना सर्वस्व लुटाने वाले कौन थे ? उनके मन में कौन सी विचारधारा के प्रति प्रेम था ? बाहर से यहां संस्कृति का अध्ययन करने के लिये अनेक लोग आयें वह कौन सी संस्कृति है ? एकमेव उत्तर है हिन्दु। हिन्दु। हिन्दु यह एक सम्प्रदाय नहीं जीवन पद्धति है यह हमारी मान्यता अब सर्वोच्च न्यायालय ने भी अपने दि. ११ दिसम्बर ९५ के निर्णयपत्रक में मान्य की है। उनके निर्णय के कुछ प्रमुख बिन्दु -

(१) धर्मपंथी बीज की कसौटियां हिन्दु धर्म को लागू नहीं होंगी।

(२) हिन्दुत्व का कोई संकीर्ण अर्थ समझना आवश्यक नहीं है यह तो भारतीय जन की जीवनशैली है।

(३) हिन्दुत्व का प्रयोग-किसी अन्य जातिपंथ के प्रति आक्रमक भाव वैरभाव या असहिष्णुता का सूचक नहीं है।

हिन्दुत्व - सामंजस्य करने वाली योजना -

अतः हिन्दुत्व को अन्य भौतिकतावादी पंथों के समकक्ष रखना गलत है। राष्ट्रीय भावजागरण के लिये यह एक सर्व समावेशक, वैश्विक ग्रहणशीलतायुक्त, सामंजस्य करने वाली योजना है। अतः 'हम हिन्दु है' यह कहने पर संकीर्ण, हठधर्मी या अन्य मतावलंबियों के विरोधी हो नहीं सकते। हमारे राष्ट्र की आत्मा, उसकी पहचान हिन्दु ही है। हिन्दु राष्ट्र की घोषणा इसी कारण सर्वआश्वासक, सर्व हितकारी सिद्ध होगी। हिन्दुओं का ही दायित्व है कि अपनी गौरवशाली राष्ट्रीयता का, संस्कृति का परिचय अपने व्यवहार से दे। हिन्दुत्व एवं राष्ट्रीयत्व एकरूप है यह उसीसे पुनः उजागर होगा।

अध्ययन हेतु पुस्तकें

१. राष्ट्र चिंतन
२. राष्ट्र जीवन की दिशा - पं. दीनदयाल जी
३. अमृत बिन्दु - सेविका प्रकाशन
४. हिन्दुत्व - सीतारामजी

पुण्यपावन

पुण्यापावन ध्येयसाधन क्या नहीं यह सार्थ जीवन - धृ.
चरण पावन चल रहे थे रामप्रभु और जानकीके
धूलिकण इस धरती के माँ, करे पूनित मलिन तनमन - १
रजपुतानी की चितासे, जो उठे स्फुल्लिंग के कण
प्रज्वलित वे ही करेंगे व्यक्ति व्यक्ति बाह्य अन्तर - २
है नहीं अभिलाष हम को वस्त्र की अरू आभरणकी
रुचि ही शुचि मांगल्यकी और शील है अति दिव्यभूषण - ३
मातृभूकी दिव्यताका वितरने संदेश भूपर
हम सुशीला और सुधीरा करे विचरण सेविका बन - ४
जन्म दुर्लभ भरतभूपर नित्य गूंजे संतवाणी
इस जनममें क्यों न करले, आत्मसुमसे मातृपूजन - ५

कार्य पद्धति क्रमांक १

कोई भी संस्था या संगठन कार्य सुचारु रूप से चलने के लिए उसकी एक कार्यपद्धति होती है। उस संस्था अथवा संगठन की विचार प्रणाली का दर्शन उसमें होता है। राष्ट्रसेविका समिति एक विशिष्ट ध्येय से प्रेरित होकर कार्य करती है। उस ध्येय को जीवन में उतारने के लिए अनुशासन आवश्यक है। क्योंकि इतिहास से स्पष्ट होता है कि उद्देश्य कितने भी श्रेष्ठ हों, अनुशासन के अभाव में सफलता नहीं मिलती है। परंतु स्नेहहीन अनुशासन से श्रद्धा एवं समर्पण भाव निर्माण नहीं हो सकते हैं। इसीलिए एक अभिनव कार्यपद्धति 'एकचालिकानुवर्तित्व' को समिति ने स्वीकारा है। सम्पूर्ण हिन्दू समाज अपना एकात्म परिवार ऐसी हमारी मान्यता है। वं. ताई जी भी हमें बताती थी कि अपना घर एक छोटा परिवार और अपना राष्ट्र, समाज अपना बड़ा परिवार है। अतः हमने भी पारिवारिक कार्यपद्धति को स्वीकारा-जहां स्नेह भी है, अनुशासन-स्वयंशासन भी है। यह कोई प्रशासन प्रणाली नहीं - जीवनप्रणाली है। परिवार के घटकों में आंतरिक अपना-पन होता है। उसीसे निर्माण होता है विश्वास, श्रद्धा-सेवा-समर्पण भाव, कर्तव्य और त्याग की प्रेरणा-वह भी अतीव सहज-स्वाभाविक रूप से। परिवार में आयु से, अनुभव से ज्येष्ठ श्रेष्ठ व्यक्ति होता है। उसके मन में सभी परिवारजनों के बारे में अपार स्नेह, कल्याण की चिंता होती है। अपना जीवन परिवार के लिए त्यागपूर्ण व्यतीत करता है, सभी के सुख में अपना सुख मानता है और परिवार गौरव के केन्द्र बिन्दु के साथ सामंजस्य से सबको जोड़कर रखता है। अतः सभी के मन में उसके प्रति गौरव और सम्मान की भावना होती है- स्वाभाविक, उसकी इच्छा-वह आदेश न होते हुए भी पूरी करने में तत्परता होती है। यह कानून का नहीं स्वयंप्रेरणा से स्वीकारा हुआ बंधन होने के कारण मनःपूर्वक काम होता है- वह श्रेष्ठ स्तर का काम होता है।

हमारे संगठन में भी राष्ट्र गौरव यह समान ध्येय है, अतः हमारी वंदनीया प्रमुख संचालिका को भी हमारे परिवार की प्रमुख मानते है और वही स्नेह, कर्तव्य भावना दोनों ओरसे उमड़ पड़ती है। श्रद्धा के कारण उनकी इच्छा हमारे लिए आदेश बनता है- स्वेच्छा से यह होने के कारण औपचारिकता लेशमात्र भी नहीं रहती है।

जन अनेक मन एक -

परिवार में परिवारजन साथ-साथ रहते तब परिवार एकात्म रखने के संस्कार प्राप्त करते हैं। उसके लिए सामंजस्य, समरसता, सेवा, परिश्रम करने का अभ्यास होता है। यह नित्य सानिध्य प्राप्त होने का एक स्थान अपने हिन्दु समाज परिवार में है। अपनी दैनंदिन शाखा, वहाँ ध्येय निष्ठा, अनुशासन, परस्पर स्नेह व समर्पण हमारा स्वभाव बनता जाता है। सामूहिक जीवन, विचार, व्यवहार, क्रिया-प्रतिक्रियाओं में समानता आती है और जन अनेक मन एक की अनुभूति उत्साह उल्लास भर देती है।

हर एक व्यक्ति में सुप्त नेतृत्वगुण होते हैं- उनको विकसित किया जाता है। शाखा में एक मुख्य शिक्षिका-वह छोटी आयु की भी हो सकती है- आदेश देती है, उसका पालन होता है- किस प्रकार से आदेश प्रभावी होंगे वह समझने लगती है। शाखा में और भी विभाग होते हैं। वे बदल-बदल कर दिये जाते हैं अतः अनेक सेविकाएं सब प्रकार से काम करने में सक्षम बनती है। किसी का भी एकाधिकार नहीं होता है। अपने जैसे अनेक निर्माण करो का संस्कार दृढ़ होता है- निर्णयशक्ति बढ़ती है।

परस्पर विश्वास कार्य का आधार-

नेता और अनुयायी का एक उत्तम उदाहरण श्रीकृष्ण एवं अर्जुन का है। अर्जुन पराक्रमी है, बुद्धिमान है परंतु शंका से ग्रस्त है। अपना समाधान श्रीकृष्ण ही कर सकते हैं यह समझ कर वह नम्रता से उनको प्रश्न पूछता है। श्रीकृष्ण भी तरह-तरह से उसका समाधान करते हैं- अर्जुन का शंका निरसन होने पर भी वे अपना निर्णय उस पर लादते नहीं हैं- 'यथेच्छसि तथा कुरु' यह श्रीकृष्ण की भूमिका है। अर्जुन को विश्वास है कि श्रीकृष्ण जो बतायेंगे वह अपने हित का ही होगा और श्रीकृष्ण को विश्वास है कि उन्होंने अर्जुन को सब प्रकार से समझाया है- निर्णय उसी को लेना है- वह जो निर्णय लेगा वह उचित ही होगा। इस प्रकार का विश्वास अपने कार्य का आधार है।

हमारी कार्यपद्धति जोड़ने की है -

सामान्यतः ऐसा दिखाई देता है कि पदलालसा बहुत होती है। पद अपने ही पास रखने के उचित अनुचित प्रयत्न किये जाते हैं। वास्तविक जनतंत्रीय प्रणाली में जहां चुनाव प्रक्रिया है वहां अनेक प्रकार की धांधलियां हो सकती हैं। अयोग्य व्यक्ति भी शरीरबल, धनबल के आधार पर चुनाव जीत सकता है। अपनी पारिवारिक पद्धति होने के कारण व्यक्ति की गुणवत्ता परखी जाती

है- उस आधार पर दायित्व सौंपा जाता है। अधिकार पद पर नियुक्ति नहीं है। कोई सेविका मैं ही इस कार्य के लिए सर्वथा एवं पूर्ण रूप से एकमेव योग्य व्यक्ति हूं ऐसा सोचकर अपने समर्थकों के साथ शक्तिप्रदर्शन नहीं करती है। हमारी ज्येष्ठ, अनुभवी, दायित्व निर्वाह करने वाली अधिकारी बहन-अपनी सहकारी बहनों से खुलकर चर्चा करती है और दायित्व किसको सौंपना है इसका निर्णय लेती है। संगठन के माध्यम से देशसेवा करने का एक भाग्यशाली अवसर है इस दृष्टि से वह सेविका दायित्व ग्रहण करते समय सोचती है। दूसरी महत्व की बात यह है कि 'अयोग्यो पुरुषो नाऽस्ति' इस पर हमारा विश्वास होने के कारण हर एक के लिए काम होता ही है। हमारी कार्यपद्धति जोड़ने की है तोड़ने की नहीं।

हर कार्य महत्व का -

घर में माँ सभी की क्षमताएं जानती है। उसके कार्यकुशलता के आधार पर एक-एक काम सौंपती है- हर एक काम उतना ही महत्व का है यह समझाती है- अपनी मर्जी का ही काम मिलने पर, नहीं, तो जो काम मिलेगा वह अपनी मर्जी का ही मानकर, पूर्ण मन से करना है। माँ की ममतामयी वाणी और विश्वास के कारण माँ की बात मानी जाती है- कार्यप्रतिष्ठा का संस्कार अमिट होता है। क्षमाशीलता के कारण भी आज्ञापालन करने में उत्साह आता है - सुरक्षितता की भावना के कारण कार्यक्षमता बढ़ती है।

निर्णय, कानूनी बंधन नहीं, नैतिक बंधन है- फिर भी अपनी कार्यपद्धति में तानाशाही है ऐसा आक्षेप लेकर अपप्रचार किया जाता है। उसका शब्दार्थ, एक नेता की आज्ञानुसार चलना ऐसा मानकर उसको तानाशाही मानते हैं। उसका तथ्य समझने का प्रयत्न भी नहीं करते है। किसी प्रश्न पर या योजना पर निर्णय प्रमुख संचालिका अकेली अपने मन से नहीं लेती है तो उस प्रश्न पर खुलकर चर्चा होती है। प्रस्तावित विचार के अनुकूल ही बोलना है ऐसा नहीं है। अनुकूल-प्रतिकूल विचार सुनने के पश्चात् संगठन-हित एवं सहमति का निर्णय प्रमुख संचालिका लेती है। सभी की सहमति उसमें प्रतीत होती है। वह निर्णय प्रमुख संचालिका का, या और किसी का नहीं अपितु-संगठन का होता है और सभी को बंधनकारक है। यह बंधन कानूनी नहीं, नैतिक है। इसीलिए वह अनुशासन स्वयंशासन पद्धति है।

तानाशाही एवं एकचालिकानुवर्तित्व में मूलभूत अंतर है। तानाशाह रुक्ष स्वार्थी, सत्तालोभी होता है। स्वार्थपूर्ति की धून में वह अपने अनुयायियों के दुःख, कष्टों की चिंता नहीं करता है। उसके विरुद्ध कोई भी मत प्रदर्शित नहीं कर सकते। अपने का बचाने के लिये 'जी हुजूर' वृत्ति बढ़ाई जाती है। झूठी प्रशंसा, लाचारी की भावना पुष्ट होती है। अपनी कार्यपद्धति स्वार्थ रहित होने के कारण अधिक गुणाधिष्ठित दायित्व अपेक्षित है।

शुद्ध सात्विक प्रेम, कार्य का आधार -

तानाशाह को यह भय सतत् सताता रहता है कि उससे कोई अधिक प्रभावी तो नहीं बन रहा है ? अपना महत्व कम हो जाने की संभावना से वह दूसरों को आगे बढ़ने में बाधाएं निर्माण करता है। किसी पर भी विश्वास नहीं रखता है- इसलिए अकेला पड़ जाता है- शांति समाधान भी उससे दूर भागते हैं। अपनी कार्यपद्धति का आधार ही शुद्ध सात्विक प्रेम और विश्वास है। 'एक दीप दूसरा जलाये- ऐसे अगणित होवे' यही हमारी धारणा होने के कारण अधिकाधिक कार्यकर्ता निर्माण करने के प्रयत्न रहते हैं। उसमें सफलता पाने में गौरव मानते हैं। प्रथम छोटे दायित्व उठाते-उठाते आगे बढ़ते जाते हैं, दायित्व बोध और कार्य क्षमता भी बढ़ती है। उसकी चिंता बड़े लोग करते हैं। अनुशासन से स्वयंशासन तक पहुंचते हैं।

श्रृंखला पद्धति -

श्रृंखला पद्धति यह अपनी एक और विशेषता है। वं. प्रमुख संचालिका केन्द्रीय कार्यकारिणी, अंचल, प्रदेश, विभाग, जिला, तहसील, महानगर, नगर, ग्राम आदि स्तर की कार्यकारिणी का आपस में सम्पर्क, समन्वय, सामंजस्य होता है। ऊपर से नीचे तक और नीचे से ऊपर तक विचारों का आदान प्रदान होता है। रक्ताभिसरण जैसी ही यह प्रक्रिया है। वह जितनी सक्षम रहेगी उतना ही अपना कार्य प्रभावी होगा।

दूसरी व्यवस्था है जनतंत्रात्मक। वह तानाशाही से अलग दिखाई देती है क्योंकि उसमें उदारता का आभास होता है। परंतु वह भी परिपूर्ण व्यवस्था सिद्ध नहीं हुई। जनतंत्र में संख्या का महत्व होता है। निर्णय बहुमत से लिया जाता है। यह बहुमत ऐसे लोगों का हो सकता है जिनको उस विषय का कुछ भी ज्ञान नहीं है या अधूरा ज्ञान है। अपना पद स्थिर रखने के स्वार्थी उद्देश्य से किसी उच्चतर नेता के इशारे पर अनुकूलता प्रकट की जा सकती है। ५१ विरुद्ध ४९ ऐसा भी बहुमत होता है अर्थात् लगभग आधे लोगों का विरोध होने पर भी प्रस्ताव पारित होता है। वह हितकारक होगा ऐसा भी नहीं। इस पृष्ठ भूमि पर सर्वत्र खुली चर्चा होना, उसके पश्चात् संगठन के हित का विचार करके निर्णय एक व्यक्ति-जिसके प्रति आदर, विश्वास सबके मन में है- लेता है यह सराहनीय है। 'नासमझी से, बहुमत से लिये गये निर्णय से सोच समझकर एक व्यक्ति ने प्रकट किया हुआ निर्णय अधिक उचित व लाभदायी होता है।'

विविध कार्यपद्धतिओं का तुलनात्मक निरीक्षण करने के पश्चात् स्नेह, सेवा, विश्वास, आत्मीयता के आधार पर विकसित श्रृंखलाबद्ध अनुशासनपूर्ण पारिवारिक अनौपचारिक भाव होने वाली अपनी कार्यपद्धति ही श्रेष्ठ है। ऐसा सिद्ध हुआ है।

कार्य पद्धति क्रमांक २

राष्ट्र सेविका समिति की कार्य पद्धति का बाह्य स्वरूप उसके दैनिक, साप्ताहिक शाखा, शिविर, वर्ग, उत्सवों के माध्यम से देखा जा सकता है। यहां बाल, तरुण, प्रौढ़ महिलाएं एकत्रित आती हैं तथा शारीरिक कार्यक्रम करती हैं। शरीर व्यायाम के लिए शारीरिक कार्यक्रम, आत्मसुरक्षा के लिए शस्त्रास्त्रों का अभ्यास तथा मानसिक विकास के लिए बौद्धिक कार्यक्रम होते हैं। बौद्धिक कार्यक्रमों की सम्पूर्ण जानकारी जैसे समिति का सूत्र, ध्येय, उद्देश्य, तीन तत्व, तीन आदर्श आदि प्राप्त होती है।

साधारण व्यक्ति के मन में प्रश्न उठते हैं कि समिति क्या है ? क्यों है ? इसका लक्ष्य क्या है ? क्या राष्ट्र समर्पित व्यक्ति निर्माण की जा सकती है। क्या इसमें कुछ व्यक्तिगत लाभ भी है ? प्रत्येक प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए हमें समिति का अध्ययन ही करना पड़ेगा। समिति समझनी पड़ेगी।

समिति समझने के लिए आवश्यक है उसके बाह्य आंतरिक तथा भावनात्मक विचारप्रणाली का अध्ययन करना।

जैसे किसी व्यक्ति की पहचान उसके नाम और बाह्य स्वरूप से होती है। समिति की पहचान उसके कार्यक्रमों से तथा नाम से होती है। आंतरिक पहचान के लिए उसके तत्व, उद्देश्य एवं कार्य प्रणाली को समझना आवश्यक है।

समिति की कार्य पद्धति में एक चालिकानुर्वितत्व का महत्व है। समिति एक परिवार है, अर्थात् यह एक पारिवारिक जीवनपद्धति है। वं. ताईजी हमेशा कहती थी कि 'हमारा घर छोटा घर है तथा देश एक बड़ा घर है। घर में सभी सदस्यों के बीच अपनेपन का, प्यार का रिश्ता होता है, जिससे एक दूसरे के प्रति विश्वास, आत्मीयता, कर्तव्य, दायित्व जैसे अनेक बंधन होते हैं। इन बंधनों के कारण ही स्वार्थ त्याग, समर्पण का भाव निर्माण होता है। मुझे केवल अपने लिए ही नहीं दूसरों के लिए भी जीना है यह भावना निर्माण होती है।

देश रूपी इस परिवार में, राष्ट्र में सभी जनता सदस्य हैं। परिवार जैसे वातावरण निर्माण करने से आपस में विश्वास, आत्मीयता, कर्तव्यबोध जगेगा। एक दूसरे के सुखदुख बांटने से, त्याग की भावना जगने से हम प्यार के बंधनों में स्वयं प्रेरणा से बद्ध होकर राष्ट्र की सेवा कर सकेंगे। इसी विचार से यह पारिवारिक जीवनपद्धति अपनायी गयी है।

समिति का प्राण है 'हिन्दुत्व' जो भारत का राष्ट्रीयत्व है। हिन्दुत्व की मूल भावना परिवार में निहीत है। अतः यह पद्धति अनिवार्य है।

तर्क तो ठीक है परंतु आचरण में कैसे आएगा ? परिवार के सदस्य भी आज एक साथ नहीं रहते हैं कार्य व्यस्तता के कारण एक दूसरे से मिलना भी नहीं होता, जिससे उनके मध्य भावनिक सम्बन्ध भी टूटने लगते हैं। फिर भिन्न-भिन्न प्रांतों के लोग, जिनकी वेशभूषा, भाषा, आचार, विचार, व्यवहार भोजन सब में भिन्नता है, तो परिवार जैसे व्यवहार कैसे संभव होगा ? इसलिए समिति ने सम्पर्क पद्धति अपनायी है।

समिति की दैनिक, साप्ताहिक शाखाएं, उत्सव, शिविर, सम्मेलन के माध्यम से सेविकाएं निरंतर एक दूसरे के सम्पर्क में रहती हैं, एक दूसरे के निकट आती हैं। निरंतर मिलने से अपनापन बढ़ता है। एक साथ रहने से एक रिश्ता सा बन जाता है। पारिवारिक भावनाओं को बल मिलता है।

जैसे उत्तर की सिंधू ताई जी, दक्षिण की रुक्मिणी आक्का, पश्चिम की शांता ताई, पूर्वोत्तर राज्यों के बच्चे महाराष्ट्र के नागपूर में आराम से एक परिवार का जीवन बिता रहे हैं। एक सा भोजन कर रहे हैं। कोई भेदभाव नहीं। समिति केन्द्र कार्यालय एक छोटा सा भारत ही है। विभिन्न प्रांतों से आने वाली सभी सेविकाएं यहां आ कर अपनी भिन्नता को भूलकर एकत्रित रहती है।

कोई कार्य या संगठन किसी एक के नेतृत्व में चलता है। तभी वह लक्ष्य तक पहुंच सकता है। बहुनायकत्व विनाशकारी होता है। लेकिन वह नेतृत्व होना कैसा चाहिए ? नेता सद्गुण, सुलक्षण सम्पन्न होना चाहिए। शौर्यवान, वीर्यवान, सामर्थ्यवान होना चाहिए। केवल संकटों के समय नहीं तो, हर समय कोई निर्णय लेते हुए अपने अनुयायियों को साथ लेते हुए लक्ष्य तक पहुंचने वाला होना चाहिए।

यहां एक प्रसंग याद आता है। जब विभीषण अपने भाई रावण को छोड़कर श्रीराम की शरण में आया, तब सुग्रीव, जाम्बबन्त आदि वानरों ने उसे शरण न देने की सलाह दी। क्योंकि वह शत्रु पक्ष का था। केवल हनुमान ने विभीषण की योग्यता का प्रमाण दिया था। सब की सुनने के पश्चात् श्रीराम ने अपनी सूझबूझ से निर्णय सुनाया था कि "दोस्तो आप सबका कहना मैं मानता हूं। लेकिन मेरा एक नियम है, जो मेरी शरण में आएगा मैं उसे आश्रय दूंगा। यह मेरा व्रत है। फिर भी आप सभी को भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। हम सदैव सतर्क रहेंगे। वह हमारा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता। और ऐसा प्रयत्न वह करता है तो उसे भुगतना पड़ेगा। मैं तीनों लोगों के राक्षसों का संहार केवल अपने नाखूनों से ही कर सकता हूं। और आगे क्या हुआ यह सभी को विदित ही है।" यह है सही नेता का सही परिचय। जिसके पास असाधारण पराक्रम होता है वही शरणागत को, फिर चाहे वह शत्रु

पक्ष का ही क्यों न हो आश्रय दे सकता है। दया, धर्म, प्रेम इत्यादि बातें बोलने और करने योग्य होता है।

और एक प्रसंग, जब आसुरी शक्ति विश्व व्यापी हो गई, शुम्भ निशुम्भ, चण्ड मुण्ड आदि राक्षसों का संहार करना दैवी शक्ति के उपासक पुरुषों को भी असम्भव हो गया तब स्त्रीशक्ति का अविर्भाव हुआ। देवी ने सारे स्त्री समाज को जगाया। स्वयं युद्ध का संचालन करते हुए आसुरी शक्ति का संहार किया तथा दैवी शक्ति की स्थापना की। ऐसे ही नेतृत्व की आज आवश्यकता है।

समाज में एकचालिकानुवर्तित्व यह आज विवाद का विषय बना हुआ है। इसे एकाधिकार, हिटलरशाही की दृष्टि से देखा जाता है। परंतु एकाधिकार और हिटलरशाही में समाज को सोचने का या अपनी बात रखने का कोई मौका नहीं दिया जाता है। अपितु अपने आदेश प्रजा पर थोपे जाते हैं। और पालन न करने की स्थिति में दंड दिया जाता है। परंतु समिति कार्यपद्धति में सभी को अपने अपने स्तर पर विचार रखने का चर्चा करने का पूर्ण मौका दिया जाता है। केन्द्र से ग्राम तक जो श्रृंखला शाखा के माध्यम से निर्माण की गई है, वही उसका माध्यम है। केन्द्र में एक वर्ष में दो बार बैठकें होती हैं। प्रथम, अखिल भारतीय स्तर पर प्रांतीय कार्यकारिणी तथा प्रतिनिधियों की और दूसरी केवल अ.भा. कार्यकारिणी तथा सदस्यों की।

वर्ष भर में अ.भा. स्तर पर लेने के कार्यक्रम, प्रस्ताव, अनेक सामाजिक, राष्ट्रीय समस्या, महिलाओं की समस्याओं पर विचार किया जाता हैं। कार्य की दिशा तय की जाती है। इसमें मतमतान्तर भी होते हैं। परंतु अंत में सर्वसम्मति से निर्णय लेकर वह प्रमुख संचालिका के द्वारा घोषित किया जाता है। यह निर्णय आदेश का रूप लेता है और तत्पश्चात् मतमतान्तर समाप्त हो जाते हैं तथा प्रत्येक सेविका यह निर्णय लेकर अपने प्रांत में आती है। प्रांतीय बैठक लेकर सम्पूर्ण प्रांतीय कार्यकारिणी तथा विभाग कार्यकारिणी में यह विषय रखे जाते हैं तथा विभाग कार्य निर्देश दिये जाते हैं। ये निर्देश विभागीय कार्यकारिणी अपने अपने जिला कार्यकारिणी को अवगत कराती है। इसी प्रकार तहसील, ग्राम तक यह निर्णय पहुंचाए जाते हैं और कार्यान्वित किए जाते हैं।

यह तो हुआ केन्द्र से ग्राम तक का मार्ग, परंतु जो विषय केन्द्र में निर्णय रूप लेते हैं, उससे पूर्व उनकी चर्चा केन्द्र द्वारा भेजे गये पत्रक के अनुसार ग्राम से प्रांत तक हर स्तर पर होती है तथा चर्चा का सारांश लेकर ही प्रांतीय कार्यकारिणी केन्द्र तक पहुंचाती है। अतः जहां अपना विचार, मत स्पष्ट रूप से रखने का पूर्ण मौका दिया जाता है उसे एकाधिकार, तानाशाही कैसे कहा जा सकता है। नगर में अनेक शाखाएं होती हैं। प्रत्येक शाखा की अपनी स्वतंत्र कार्यकारिणी आवश्यक है जिसमें शारीरिक कार्यवाहिका, निधि कार्यवाहिका, बौद्धिक कार्यवाहिका, उत्सव कार्यवाहिका, गीत कार्यवाहिका एवं मुख्य शिक्षिका होती है। सबकी समय समय पर बैठकें होती हैं। शाखा में गट पद्धति होती है। प्रत्येक गट की एक गटनायिका होती है। मुख्य शिक्षिका गट नायिकाओं की बैठक लेती है और उन्हें अपने अपने गट की सेविकाओं से सम्पर्क रखने के लिए आग्रह करती है। इस प्रकार शाखा की प्रत्येक सेविका को उसकी योग्यता के अनुसार कार्य सौपां जाता है। गट पद्धति यह सम्पर्क का उत्तम मार्ग है जिससे निरंतर सहवास, बातचीत तथा आत्मीय भाव निर्माण किए जाते हैं और यही भाव शनैः शनैः राष्ट्रीय भावों में परिवर्तित होते हैं।

जलचक्र - यह पद्धति जलचक्र के समान है। धरती का पानी सूर्य किरणों के द्वारा वाष्प में परिवर्तित होता है। वह शुद्ध होकर मेघ रूप पाता है और आकाश में समाहित होता है। जहांसे वर्षा का रूप लेकर पुनः धरती पर आता है। इसी प्रकार सेविकाओं के विचार निकटतम अधिकारी द्वारा ऊपर निर्देशित श्रृंखला द्वारा केन्द्र तक पहुंचते हैं जहां उनका संस्करण, शुद्धिकरण किया जाता है और केन्द्र से आदेश के रूप में प्रत्येक शाखा तक आते हैं। जलचक्र में शीत वायुमण्डल को स्थान है, वही स्थान इस विचार चक्र में अधिकारियों के स्नेहमय, विवेक प्रेरित, कर्तव्य कठोर मार्गदर्शन का होता है।

नेता की महानता तथा बल का वास्तविक परिचय होता है उसके अनुयायियों के द्वारा। आदर्श अनुयायी कैसा हो ? इसलिए एक कथा हम सुनते हैं। एक बार आद्य शंकराचार्य नदी में स्नान करते करते नदी के दूसरे किनारे पर पहुंच गये। और वहां से अपने शिष्यों को सूखे वस्त्र लाने का इशारा किया। सभी शिष्य घबरा गये। सूखे कपड़े ले जाना हो तो तैर कर नहीं जा सकते। और फिर इतना लम्बा फासला तैरकर जाने की भी किसी की हिम्मत नहीं थी। किनारे पर कोई नांव भी नजर नहीं आ रही थी। इस सोच विचार में ही शिष्यों ने दूसरे किनारे पर नजर डाली तो आश्चर्य की सीमा न रही। गुरु तो सूखे कपड़े पहन कर खड़े हैं। और उनका एक शिष्य पद्मपाद उनके सामने हाथ बांधे खड़ा है। उसने गुरु की आज्ञा सुनते ही सूखे वस्त्र लेकर पानी में प्रवेश किया। कैसे जाऊंगा यह विचार नहीं किया। पानी पर जैसे जैसे पैर उठाता तो रखने के लिए नदी में से एक एक कमल ऊपर आता। उन पर पैर रखकर वह दूसरे किनारे पहुंच गया। इसी कारण उसका नाम पद्मपाद रखा गया। गुरु की आज्ञा पालन करना इतना ही ध्यान में रखा, कैसे पहुंचुंगा यह नहीं सोचा।

सेविकाओं के मन में भी आज्ञापालन के समय पद्मपाद का भाव होना चाहिए। आंधी, तूफान या निबिड अंधकार के भय से हम आज्ञा की अवज्ञा नहीं करेंगे। इस स्थिति में आने के लिए आवश्यक है अनुशासन, स्वअनुशासन। समिति कार्य पद्धति में अनुशासन का बहुत महत्व है। समिति में कार्य आज्ञा से होता है। चाहे हजारों सेविकाएं क्यों नहीं हो आज्ञा का पालन एक साथ होता है। आचार पद्धति तथा शारीरिक प्रशिक्षण के माध्यम से आज्ञा पालन का अभ्यास कराया जाता है। आज्ञा पालन हमारा कर्तव्य है। यह तो स्वयं स्वीकृत स्वयं शासन पद्धति है। अतः सर्वश्रेष्ठ है।

स्त्री राष्ट्र की आधार शक्ति

राष्ट्र की प्रतिष्ठा, गरिमा उसकी भौतिक समृद्धि पर नहीं अपितु उस राष्ट्र के नागरिकों की सुसंस्कृतता, सच्चरित्रता पर निर्भर होती है। इसका माध्यम है माता या मातृसदृश स्त्री। अतः राष्ट्र निर्माण में उसका स्थान गौरवपूर्ण-महत्वपूर्ण है। भावी जीवन की नीव माँ ही भरती है क्योंकि बालकों को उसका ही सान्निध्य अधिक प्राप्त होता है। किसी भी भवन की मजबूती, स्थिरता उसकी नींव की मजबूती पर निर्भर होती है। परंतु दृष्टिपथ में आता है भवन, नीव नहीं। नीव के पत्थरों की वह आकांक्षा भी नहीं होती है परंतु परखकुशल व्यक्ति पहचानता है। यह परखशक्ति अधिकतम लोगों में आनी चाहिए तो ही नीव के पत्थरों की उपेक्षा नहीं होगी। एक पुराना मराठी गीत है 'असू आम्ही सुखाने पत्थर पायातील, मंदिर उभवणे हेय आमुचे शील।' अर्थात् नींव के पत्थर बनने में हमें आनंद है। मंदिर-निर्माण यही हमारा शील है। शील स्थायी भाव है, स्वभाव है। बिना प्रयत्न अपने आप सहज होने वाली क्रिया स्वभाव होता है। माँ का संस्कार देना ऐसा ही सहज स्वभाव है। इसमें कमी आती है तो नींव हिलती है- राष्ट्रमंदिर हिलने लगता है- जैसे भूचाल आया है।

स्त्री चेतना स्तंभ -

इसीलिये कहा जाता है कि स्त्री संस्कृति की, राष्ट्र भवन की आधारस्तंभ है। चेतन स्तंभ है। हिन्दु स्त्री ने अपने प्राणों की ऊर्जा से संस्कृति के लोकपावन प्रवाह को अमर और अक्षुण्ण बनाये रखा है। उसका अस्तित्व उज्वल बनाकर उसे स्थायित्व प्रदान करने में उसका अनमोल योगदान है। संस्कृति के पौधे को अपने प्राणों के रस से सींचा है और समय आने पर उसके लिये अपने प्राण भी न्यौछावर किये हैं।

माँ संस्कारों का भंडार -

माता से बालक अनजाने में ही बहुत कुछ सिखता। सीखने वाला और सिखाने वाला दोनों को ही सीखने-सिखाने की प्रक्रिया की कल्पना नहीं है। माँ बालक के साथ बात करती है। मृदुता से वह कुत्ता, बिल्ली, गाय को प्यार से खिलाती है। बालक को भोजन खिलाते समय वह कौर कव्वे का, चिड़िया का, बिल्ली मौसी का ऐसी बात बताती है। कभी तुलसी के सामने दीप जलाकर 'दुष्ट बुद्धि विनाशाय, दीपज्योति नमोऽस्तुते' कहती है। कभी चंद्रमा को दिखाकर चंदा मामा है ऐसा बताती है कभी संतों की वीर पुरुषों की कहानियां बताती है और उसके मन में पशुदया, पेड़पौधों के प्रति निसर्ग के प्रति आत्मीयता, शौर्य, त्याग आदि के संस्कार देती है। उस आयु में बालक का भाव विश्व माँ में ही व्याप्त है। भगवान से भी अधिक श्रद्धा माँ के प्रति रहती है। उसके द्वारा इस आयु में दिये गये संस्कार शाश्वत होते हैं। इसी आयु में उसको ज्ञान, बुद्धि और शक्ति मिलती है। कारण माँ अज्ञान का पटल अत्यंत कोमलता से हटाती है। भगवान श्रीकृष्ण-अर्जुन का चित्र देखकर प्रश्न पूछता है बालक। देवी भुवनेश्वरी जैसी माँ- "तुम्हें सारथी बनना है तो ऐसे सारथी बनो।" यह संस्कार देती है। 'प्रसाद बांटना है। बाँटकर खाओ' का भाव जगा सकती है। भ्रातृप्रेम, भातृप्रेम, देशप्रेम, सृष्टिप्रेम, परमेष्टिप्रेम की सीढ़ियां बालक माँ के ही मार्गदर्शन से चढ़ना सीखता है।

संस्कृति की अभिरक्षिका -

माता केवल अपने घर की नहीं अपितु अपने सम्पूर्ण समाज की संस्कृति की अभिरक्षिका एवं सर्वश्रेष्ठ सुरक्षा केन्द्र है। मानवीय जीवनमूल्यों की वह पौधशाला है। व्यक्ति और परिवार की धात्री है। आदर्श माता ही आदर्श संतान निर्माण कर सकती है। माँ या माँ जैसी कोई स्त्री इसीलिए संस्कारित होना आवश्यक है। वह स्त्री कन्या, भगिनी, पत्नी भी हो सकती है जिनका सहवास मातृभाव से परिवारजनों को प्राप्त होता है। कौन सी भी अवस्था हो स्त्री का स्थायी भाव मातृत्व ही है। माँ के माध्यम से ही उसे बाह्य विश्व का परिचय होता है। हम अपने कमरे की खिड़की से बाहर देखते हैं। खिड़की जितनी बड़ी है उतना बड़ा बाहर का क्षेत्र देख पायेंगे। उसकी चौखट टेढ़ी मेढ़ी है तो वैसा ही बाहर का दृश्य दिखाई देगा। उसकी कांच अगर धुंधली-मैली है तो हमें वैसा ही दिखेगा। सृष्टि का स्पष्ट, एकात्म मनोरम रूप का दर्शन खिड़की पर निर्भर है इसीलिए उसका महत्व है। माँ की सोच की उदारता, निष्ठा, स्पष्टता जितनी होगी उतना ही बालक का संस्कार होगा यह बात पक्की।

गृहिणी अपने रसोई घर में अनेक डिब्बों में से मनचाही बीज निकाल कर योग्य मात्रा में खाद्य पदार्थों में डालती है वह स्वाद बनता है। वैसे ही बालक का जीवन सुंदर सुघड़ बनाने के लिए उसके मन में क्या कब डालना है यह भी वह जानती है- जानना चाहिए। अपना भाई, पिता, बालक, पति के चेहरे की एक-एक रेखा वह पहचानती है। जूते उतारना, बस्ता रखना, दरवाजा खोलना-बंद करना, प्रवेश करते समय घंटी बजाना ऐसी छोटी-छोटी कृतियों से वह उनका मनोभाव भाप लेती है, अपनी ममता से वत्सलता से स्नेह से बिगड़ी दशा को संवारती है। अनावश्यक गुब्बार निकल जाता है, पुनः स्वस्थ मानसिकता, प्रसन्नता खिल उठती है। छोटों को नहलाते हुए, कपड़े पहनाते हुए, बाल संवारते हुए उनसे जो सहज बातें होती हैं, स्नेहसिक्त स्पर्श होता है, उससे

व्यक्तित्व निर्माण होता है- 'सृष्टि का, परमेष्टि का मैं एक अंश, उससे प्रेम करुं, उसका शोषण न करुं' यह भाव जागृत होता है। त्याग, सेवा, पौरुष, मितव्ययता की परतें चढ़ते जाते हैं।

सुमार्ग प्रेरणादायी -

वीर माताओं में ऐसी शक्ति होती है कि अपने होनहार पुत्र को भीषण युद्ध प्रसंग में विजय माला पहनाकर विजय तिलक करती है, आशीर्वाद दे कर विदा करते समय कहती है- 'आओ बेटा'- अपनी माँ के गौरव की लाज बचाओ। जिजामाता ने भी शिवबा को निराशा के क्षणों में प्रोत्साहित करते हुए कहा था - 'हार से दुखी होकर अपना जीवन समाप्त करना चाहते हो ? मरना तो एक दिन है ही, परंतु कायर की नहीं, वीर मृत्यु को स्वीकार करो- शत्रु के साथ लड़ते-लड़ते शहीद हो जाओ और मेरे मातृत्व को गौरवान्वित करो।' अपने पति को चेतना, प्रेरणा देने वाली वीर पत्नियों के अनेकों उदाहरण भारतीय इतिहास के पन्ने पन्ने पर अंकित है। खंडो बल्लाळ की बहन ने अपनी सारी सम्पत्ति शिर्के को दे कर स्वराज्य के अनुकूल बनाने की प्रेरणा दी थी।

उज्जैन के कवि श्रीकृष्ण सरलजी ने भगतसिंह की जीवनी लिखी परंतु वह प्रकाशित करने की किसी प्रकाशक की हिम्मत नहीं हो रही थी। उनके मन की बेचैनी उनकी पत्नी समझ गयी। साधक जैसे व्रतस्थ रहकर अपने पति ने यह निर्मिति की है वह सभी तक पहुंचना कितना महत्व का है यह भी वह जानती थी। उसके पास सोने चांदी के जो भी थोड़े आभूषण थे वे अपने पति को दे दिये। उनके दो छोटे पुत्रों ने यह देखा - उनको लगा हम भी तो भगत सिंह के कोई हैं। बदन पर कपड़े थे उनके अतिरिक्त सब सूती, ऊनी कपड़े कबाड़ियों को बेच कर वह धन अपने पिताजी को दिया। पुस्तक छप गयी। विमोचन के लिए माता विद्यावती की अध्यक्षता में विशाल कार्यक्रम का आयोजन किया। जराजर्जर परंतु तेजस्वी माता को श्रीकृष्ण जी ने पुस्तकविमोचन के लिए देने हेतु हाथ बढ़ाये, परंतु विद्यावती जी ने अपने हाथ खींच लिये- पुस्तक हाथ में लेने को उन्होंने मना किया। श्रीकृष्ण जी असमंजस में पड़े। 'क्या भूल हो गयी कोई ?' उन्होंने पूछा। विद्यावती ने कहा - 'हाँ! बड़ी भारी भूल हो गयी। भगत सिंह के पहले चंद्रशेखर आज़ाद शहीद हुआ, उसकी जीवनी पहले लिखी जानी चाहिए। मैं कैसे यह पुस्तक स्वीकार करुं ?' कुछ बातचीत के बाद उन्होंने कहा कि 'इतने लोगों के सामने आश्वासन दो कि तुरंत उसकी चरित्र की रचना करुंगा तब मैं यह पुस्तक स्वीकार करुंगी।' श्रीकृष्ण जी ने भी चाकू से अपनी उंगली काटकर उस रक्त से विद्यावती माता का तिलक किया और १ साल के अंदर चंद्रशेखर आज़ाद की जीवनी लिखूंगा ऐसा वचन दिया।

जागे नारी जागे देश -

अयोध्या से लौटे कारसेवकों को उनकी नाती पोतियों ने पूछा - 'मंदिर बनाये बिना कैसे वापस आये ? जाओ मंदिर बनाकर आओ। आपात्काल में कारागृह में बंद हुए अपने घर के पुरुषों को कितनी कन्या, बहन, पत्नी, माँ ने पत्र लिख कर, स्वयं मिल कर बताया कि माफी मांगकर आओगे तो, तुम्हारे लिये घर का दरवाजा कभी नहीं खुलेगा। अत्यंत आतंकित क्षेत्रों में अपने पुत्रपुत्रियों को पूर्णकालिक कार्य करने के लिए भेजने वाली आधुनिक माता बहनों की नसों में उन्हीं वीर माता बहनों का खून दौड़ता है। इसीलिये पिता की मृत्यु होने से परिवार का मन बदलता है तब भी अपनी बेटियों को न रोकने वाली माताएं राष्ट्र की परम शक्ति हैं। जागरुक माताओं की संख्या कम होने के कारण ही मुंबई में सैंकड़ों क्विंटल विस्फोटक उतर सकता है, पुरुलिया में शस्त्र उतारे जाते हैं, शत्रु का हवाई जहाज इतने अंदर तक आ सकता है, विलासिता के कारण पैसे को ही सर्वस्व माना जा रहा, बच्चों को माँ का स्नेह नहीं मिलने के कारण वे आतंकवादी, क्रूर उपभोगवादी बन रहे हैं, पशुवृत्ति दानवीवृत्ति प्रबल हो रहीं है- प्रचार माध्यम उसमें अग्रेसर हो रहे हैं। इस अपप्रवृत्ति को रोकने हेतु स्त्री को अपने दायित्व का बोध हो इसी कारण से भारतीय संस्कृति में महिलाओं का कितना सम्मान है उसको उजागर करने हेतु राष्ट्र-सेविका समिति ने अपने उद्देश्यों को एक सूत्र जोड़ा है -'स्त्री, राष्ट्र की आधार शक्ति है। इस प्रबल आत्मशक्ति को जागृत कर 'जागे नारी जागे देश' का संकेत देना आवश्यक है। 'मैं एक सामान्य गृहिणी माता क्या कर सकती हूं' ऐसा सोचकर निराश होने से बात बनेगी नहीं। 'मैं तो शक्ति स्वरूपिणी दुर्गा की कन्या हूं। परिस्थिति का सामना कर सकती हूं' ऐसा संकल्प करना है। केवल अपने समाज का, राष्ट्र का नहीं अपितु संम्पूर्ण विश्व के मानव समाज का भविष्य पिता के मस्तिष्क से भी माताओं के हृदय में अधिक सुरक्षित रह सकता है यह पहचान कर अपनी दिव्यत्व की चिनगारी को प्रज्वलित रखना यह हमारी परम्परा युगों युगों से है परंतु जिन देशों में स्त्री का ऐसा आदर नहीं था, उसे एक भोग्य वस्तु माना जाता है उनकी भी अपनी तूफानी परिस्थिति देख कर भारतीय विचारधारा के अनुसार सोचना पड़ रहा है। अमेरिका जैसे सम्पन्न देश के राष्ट्रपति की पत्नी को यह कहना पड़ा है कि पिछले कुछ दशकों से हमने एक ही सबक सीखा है कि जहां महिलाओं का सम्मान है, उनकी प्रगति होती है वे ही देश प्रतिष्ठा प्राप्त कर आगे बढ़ सकते हैं।

मातृशक्ति

हे मातृशक्ति देश की तू जाग अब तू जाग
हे नारी शक्ति देश की तू जाग अब तू जाग।।ध्रु।।

उषःकाल की प्रभा तुझे जगा रही
विहंग की ये टोलियां प्रभात गा रही
टल गई निशा घनी प्रलयकाल सी
सूर्य रश्मियां सखी तुझे जगा रही
विश्व को जगाने वाली सुप्त क्यों तू आज।।१।।

तू शिवा की वीर जननी देश की महान्
तू कराल काली बनी झांसी में वहां
स्वतंत्रता की वेदी रक्त से सनी जहां
वो क्रांतिवीर प्रेरणा तू खो गई कहां
है तेरे ही साथ जुड़े देश के ये भाग।।२।।

भावी राष्ट्र योजना तेरे ही कोख से
दे नवीन कल्पना नवीन स्वप्न से
बुझ रहे ये दीप देख कालिखों भरे
दीन हीन से बने वत्स मा तेरे
स्नेह से संवारने तू छेड़ दे ये राग ।।३।।

समस्त राष्ट्रशक्तियां तुझे जगा रही
दिग्दिगन्त से यहीं आवाज आ रही
चण्डमुण्ड नाशिनी असुरमर्दिनी
संगठित देवशक्ति हे महामनी
संकटों से तारने कर तू महायाग ।।४।।

राष्ट्र सेविका समिति ने स्त्री जागरण एवं संगठन के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन का व्रत लिया है। केवल एक स्त्री सर्वगुण सम्पन्न, कलानिपुण, चरित्रवान होकर काम नहीं चलेगा। समाज के प्रत्येक व्यक्ति की मानसिक, बौद्धिक वैचारिक और शारीरिक सुदृढ़ता विकसित होनी चाहिए। किसी विशाल उपवन में यदि केवल एक ही पौधा अत्यंत विकसित है, फलों फूलों से लदा है तो उसका कुछ भी लाभ नहीं होगा क्योंकि वह अकेला ही सबके आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बनेगा। हमें तो उपवन के प्रत्येक वृक्ष को विकसित बनाने का, उसको फुल्लकुसुमति करने का यत्न करना है क्योंकि प्रत्येक की प्रगति में, बौद्धिक सांस्कृतिक उन्नति में राष्ट्र का उत्थान सन्निहित है।

कार्यशरण समिति की सेविका

हमारे संगठन का नाम 'राष्ट्र सेविका है समिति है।' 'सेविका' शब्द में गूढार्थ समाया हुआ है। सेवाभाव यह उस शब्द की आत्मा है। सेवाकार्य करने वाली सेविका इस अर्थ से अपने आंखों के सामने चिकित्सालय में सेवा करने वाली परिचारिका आती है। निःसंशय बीमार व्यक्ति की सेवा करना जितना कठिन है उतना ही महत्वपूर्ण है। परंतु वह सेवा कुछ घंटों के लिए की जाने वाली है। जब तक नौकरी का समय रहेगा तब तक के लिए। अतः यहां पर सेविका शब्द का वास्तविक अर्थ जो राष्ट्र सेविका में निहित है, अधिक स्पष्ट होना आवश्यक है।

हमारी सेविका राष्ट्र की सेवा करने वाली है। स्वयंप्रेरणा से राष्ट्रसेवा करने वाली। दिन के कुछ घंटे नहीं तो २४ घंटे सेवा करने वाली। अपने प्रत्येक कार्य के माध्यम से राष्ट्र की सेवा करने वाली। उदा. पन्ना दाई को यदि हम देखें तो, स्वयं के पुत्र का बलिदान राजा के वंश को बचाने के लिए किया। इसमें राजनिष्ठा तो थी ही परंतु यह निर्णय उसने समय की आवश्यकता के अनुसार स्वयंप्रेरणा से लिया था। केवल राजा की सेवा यह भाव नहीं तो मेरे द्वारा राज्य की रक्षा (वंश रक्षा से) यह महत्वपूर्ण राष्ट्रकार्य उसने किया।

अर्थात् हम जो भी कार्य करते हैं उसमें राष्ट्र की सेव कैसे हो यह देखना सेविका का कार्य है। स्वयंप्रेरणा, सेवाभाव यह गुण उसमें होना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

कार्यनिष्ठा और समरसता -

जो कार्य हमने करना स्वीकार किया है उसमें निष्ठा होना अत्यंत महत्वपूर्ण और आवश्यक है। निष्ठा यह कार्य में आने वाली रुकावटों से मन को विचलित नहीं होने देती।

वं. मौसीजी के पुत्र श्री बापूसाहेब हमेशा कहा करते थे कि समिति की सेविकाएं हैं, पीछे नहीं हटेंगी किसी कार्य में। सच है व मौसी जी के साथ की अधिकारी सेविकाएं थी ही ऐसी। वं. मौसीजी को प्रवास पर भेजना है तो घर से अनुमति लेने उनके घर जाती थी माई नागले। वह समय तरुणियों को अकेले बाहर भेजने का नहीं था और वह भी समाज कार्य के लिए। प्रवास के समय वं मौसीजी के घर का दायित्व लेती थी स्व. मा. काकू रानडे। अपना नाती घर में बीमार होने पर भी वर्ग का दायित्व छोड़कर न जाने वाली कर्तव्यकठोर स्व. मा. सुशीलाताई आम्बेडकर। इनका सेवा भाव यह साक्षात कार्यनिष्ठा और समरसता के आदर्श हैं हमारे लिए।

एक और ऐसा ही उदाहरण हमारे सामने आता है। हम स्त्रियों का जीवन से विवाह पश्चात् कुछ और होता है। विवाहपूर्व नियमित समितिकार्य करने वाली एक सेविका को ससुराल में समिति में जाने की अनुमति ही नहीं परंतु किसी भी प्रकार का सम्पर्क रखने की भी अनुमति नहीं थी। संयोगवश उनके घर के सामने समिति की शाखा लगती थी। ध्वज को वह रोज मन ही मन में प्रणाम करती थी। यह कार्य निष्ठा की ज्योत उसने अपने मन में निरंतर प्रज्ज्वलित रखी और लगभग २० वर्ष पश्चात् उसे मौका मिलते ही पुनः कार्य शुरू किया।

सेविका को वास्तववादी होना चाहिए -

राष्ट्र सेविका समिति का ध्येय अखिल भारतीय हिन्दु महिलाओं को संगठित करना है। यह संगठन महिलाओं की महिलाओं द्वारा है। महिलाओं की अपनी एक मर्यादा है। आज शिक्षा प्राप्ति के कारण जैसे गृहस्थी के अतिरिक्त हम कुछ अन्य दायित्व अपने ऊपर लेने की क्षमता रखते हैं नौकरी उसमें समाजकार्य भी सम्मिलित है। परंतु हमारी संगठन कुटुम्बवत्सल है। हमारा ध्येय अपने परिवार से शुरू है। अतः कार्य करते समय गृहस्थी और समिति कार्य में समन्वय की आवश्यकता है। समाज सुधारने निकली महिला का घर और कोई सुधारने आये यह उचित नहीं। हम अपने घर में भी आदर्श स्थापित करें जिससे हम पर कोई उंगली ना उठाएँ। परंतु किस समय गृहस्थी कार्य को महत्व देना और किस समय समाजकार्य को इस ओर ध्यान देना आवश्यक है। प्रसंगानुसार किसी कारणवश हमें परिवार के साथ लम्बे समय तक रहना पड़ सकता है। परंतु मन में ध्येय के प्रति जागरुकता हो और मन ध्येय से ना हटे तो चाहे जितने समय पश्चात् हम उसी उत्साह से फिर से अपने कार्य में जुट सकते हैं। आवश्यकता है स्वयंप्रेरणा से राष्ट्र सेवा करने का भाव।

आज्ञाकारिता -

संगठन में निष्ठा के साथ-साथ उतना ही महत्वपूर्ण गुण है 'आज्ञापालन'। संगठन के कुछ नियम होते हैं। व्यक्तिगत हम

कितने भी सक्षम हों शारीरिक और आर्थिक दृष्टि से, परंतु यहां हमें आदेशानुसार ही कार्य करना होगा। समिति के सम्पर्क में आने के दिन से वह सेविका कहलाती है। परंतु समिति उससे विभिन्न दृष्टिकोण से प्रशिक्षण दे कर वास्तविक सेविका बनाती है। समिति के प्रारंभिक दिनों की बात है। लगभग ४० वर्ष पूर्व की। कुछ प्रौढ़ सेविकाओं के साथ कुछ तरुण सेविकाओं को समूह बनाकर प्रचार हेतु ग्रामों में भेजा गया था। धनराशि समिति की ओर से प्रदान की गई थी और उतने में ही निर्वाह करने का आदेश दिया गया था। स्वयं का धन उपयोग में लाने की अनुमति नहीं थी। हमारी वर्तमान प्रमुख संचालिका वं उषा ताई भी ऐसे ही एक समूह में थी। निर्धारित समय में प्राप्त धनराशि को संयम से खर्च करने के कारण कभी भूखा भी रहना पड़ा होगा परंतु किसी ने भी अपने जेब से पैसे खर्च नहीं किये। नहीं थे इसलिये नहीं तो वैसा आदेश था इस लिये। अपना कार्यक्रम पूर्ण कर ही वह घर लौटी है। हमको किसी भी समस्या का सामना करते हुए किसी भी परिस्थिति में रहना पड़ सकता है। परंतु हर स्थिति में हमारी निष्ठा, सेवाभाव कम नहीं हो इसका प्रशिक्षण कार्य करते करते ही किया जा सकता है। जो आज्ञापालन करता है उसे आज्ञा देते भी आना चाहिए। आज्ञा देना और आज्ञा का पालन करवाना यह भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। समिति में जो अधिकारी आज्ञा देती है उसे दूसरे की आज्ञा पालन भी करना पड़ती है। शाखा में एक छोटी सेविका मुख्य शिक्षिका होती है। उसकी आज्ञा प्रमुख संचालिका का भी पालन करती है।

व्यक्तित्वविकास -

सेविका का जीवन एक पूर्ण विकसित पुष्प के समान होना चाहिए। अनेक सद्गुणों से युक्त, कलापूर्ण सादगी का जीवन होना चाहिए। जीवन बहुमुखी होना चाहिए। अपने व्यवहार से दूसरे को सुख हो, वे अपना अनुकरण करें। अच्छे विचारों के कारण अपना सम्पर्क बढ़ाएं ऐसा प्रयत्न हो। सारे सद्गुण जन्म से ही प्राप्त हो यह तो सम्भव नहीं, परंतु कार्य करते करते समाज के विभिन्न व्यक्तियों के सम्पर्क में भी प्राप्त किए जा सकते हैं। आवश्यकता होती है दूसरों के गुण को परखने की, मान्य करने की और अपने में उतारने की इच्छा की। विभिन्न पहलुओं से विकसित इस जीवन को ही व्यक्तित्व कहते हैं। जो केवल अपने ही परिवार का विचार न करते हुए समाज और राष्ट्रहित के विचार की बात सोच सकता है। हम ईश्वर को पूर्ण विकसित पुष्प ही समर्पित करते हैं। अर्द्धविकसित नहीं। अतः सेविका का अपना विशेष व्यक्तित्व हो। उसकी सोच तथा कार्य उसको सामान्य से ऊपर उठाने वाला हो।

सेविका की गुणग्राहकता -

संगठन का विस्तार, ध्येयप्राप्ति के लिए आवश्यक है लोक संग्रह। सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति में कौन सा गुण है और उसका उपयोग संगठन कार्य में कहां होगा इसकी परख करना आवश्यक है। प्रत्येक में कुछ ना कुछ गुण तो आवश्यक होता है। हमारी कार्ययोजना ऐसी हो जिसमें इन सबका उपयोग हो। कहा जाता है -

अमंत्रंअक्षरं नास्ति, नास्ति मूलमनौषधम।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति, योजकस्त्र दुर्लभः।।

कोई गाने वाली है तो कोई चित्रकार, किसी की दमंग आवाज हो तो अच्छी आज्ञाएं देने को कार्य कर सकेगी, तो किसी के पास लोकसंग्रह करने की कला हो। ऐसे सभी का उपयोग कर हम उन्हें योजनाबद्ध काम में लगा सकते हैं।

संकल्पशक्ति की आवश्यकता -

जब कोई नया कार्य शुरू होता है तो सभी में अत्यंत उत्साह होता है। परंतु धीरे-धीरे वह कम होने लगता है। क्योंकि मन में कार्य के उद्देश्य को पूर्ण करने की संकल्प शक्ति कम होती है। समाज में विविध प्रकार के प्रलोभन भी हमें एक कार्य में स्थिर नहीं होने देते हैं। परंतु जिसके मन में अपने कार्य के प्रति निष्ठा है, श्रद्धा है, उसका मन इन प्रलोभनों से विचलित नहीं होगा। कितनी भी विषम परिस्थिति हो वे उसमें से सहज से बाहर निकलेंगे और अपना कार्य करते रहेंगे, आवश्यकता है प्रण की, संकल्प की। यहां हम रामभक्त हनुमान का उदाहरण ले सकते हैं। सीता की खोज में निकले हनुमान मैनाक पर्वत ने दिये हुए फलों का स्वीकार तो करते ही नहीं है परंतु सुरसा के मुख से भी सही सलामत बाहर निकल आते हैं। लंका में रावण के शयनगृह में एक से एक सुंदर स्त्रियों को देखकर भी उसके रोमांच पुलकित नहीं हुएँ। सीता के सामने भी उन्होंने आत्मगौरव की कोई बात नहीं की। ऐसा संयमित व्यक्तित्व का उदाहरण हमें कार्य करते समय अपने सामने सदैव रखने की आवश्यकता है।

प्रत्येक कार्य महत्वपूर्ण -

छोटे से छोटे कार्य का भी अपना महत्व होता है। कार्य का महत्व उसके छोटे और बड़े होने पर निर्भर नहीं करता है, परंतु प्रत्येक छोटे बड़े कार्य का अपना महत्व होता है। हम घर के सभी कार्यों को समान महत्व देते हैं और व्यवस्थित करते हैं, जिससे हमारा घर सुंदर दिखे, आने वालों का मन प्रसन्न हो। वह कार्य स्वादिष्ट व्यंजन बनाने का हो, कपड़े साफ करने का हो या घर में सफाई का हो। सेविका को संगठन का कोई भी कार्य करते समय यही दृष्टि रखनी चाहिए। यह निरपेक्ष वृत्ति निर्माण करने के लिए आवश्यक है योगसाधना। निरपेक्ष वृत्ती से किए कार्य में एक अलग ही आनंद है। किसी भी कार्य में हमारा परिश्रम तथा कौशल कम न पड़े इसका ध्यान रखना आवश्यक है। गीता में

इसे योग कहा है। "योगः कर्मसु कौशलम्"। कुशलता से कार्य करना योगसाधना है।

आचार विचार तथा उच्चारण में एकवाक्यता हो -

विचार यह व्यक्ति का परिचायक लक्षण है। हमारे मन में अनेक विचार आते हैं परंतु प्रत्येक विचार कार्यान्वित नहीं होता है। कुछ ही विचार कार्यान्वित होते हैं। हमारे संगठन का कार्य व्यक्ति के आचार विचार पर निर्भर होता है। जो विचार हम समाज के सम्मुख आग्रहपूर्वक रखते हैं, उनका हमारे आचरण होना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। बोलेंगे कुछ और क्रिया में कुछ, इसका परिणाम समाज पर अच्छा नहीं होगा। समाज हमारे व्यवहार को देखता है। विचार, आचार में एकता हो, समन्वय हो। कुछ तत्व केवल बोलकर सुनाने के लिए हो। परंतु जो कार्य हम समाज से करवाना चाहते हैं इसका क्रियान्वयन हमसे भी हो यह आवश्यक तथा महत्वपूर्ण है। स्वदेशी वस्तुओं का आग्रह रखने वाली सेविकाओं को अपने घर में भी स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करना होगा। वंदे मातरम् गीत का महत्व हम दूसरों को बताएंगे तो उस राष्ट्रगीत का आदर हमें भी करना चाहिए। यदि हम भ्रष्टाचार का विरोध करते हैं तो हम भी उसके शिकार ना हो इसका ध्यान रखना होगा। यह सब हमारे व्यवहार में होगा तो ही समाज हमारा अनुकरण करने का प्रयत्न करेगा। हमारा आदर करेगा। हमारे लिए उसके मन में विश्वास निर्माण होगा। अतः विचार, उच्चारण तथा आचार का त्रिवेणी संगम हमें बनाए रखना होगा।

सेविका -

आदर्श सेविका कैसी हो यह शब्दों में बांधना तो संभव नहीं। फिर भी आवश्यक दृष्टि देने का प्रयास यहां किया गया है। यह तो निश्चित ही स्पष्ट हुआ होगा कि सेविका का कार्य केवल दैनिक शाखा, साप्ताहिक शाखा, उत्सव शाखा, बैठक शिविर तथा वर्गों तक ही सीमित नहीं है। घर में, समाज में, कार्यक्षेत्र में, जगते, सोते, सभी समय वह राष्ट्र की सेविका है। मेरी प्रत्येक साँस मुझे मेरे सेविका होने का स्मरण दिलाने वाली हो। मेरे रग-रग में सेविका समाहित हो। इससे हम समाज में अपनी पहचान बना सकते हैं। किसी पारिवारिक कार्य में, सामाजिक क्षेत्र में, व्यावसायिक क्षेत्र में, सामाजिक संकट के समय हमारी कार्य योजना और पद्धति की प्रशंसा होती है। और हमारा असामान्यत्व अन्यों के नजर में आये बिना नहीं रहता। आप पर भरोसा करने लगेंगे तथा जिम्मेदारी भी विश्वास के साथ सौंपेंगे। सेविका स्वयं के लिए कभी कोई कार्य नहीं करती है। उसका हर कार्य संगठन के लिए, देशहितार्थ होता है। समिति सेविका द्वारा स्वीकार की गई 'कृति'। जैसे- पानी में रहते सिर पर पानी का बोझ महसूस नहीं होता है, वैसे ही कार्य में समरसता हो तो कार्य का बोझ नहीं लगेगा। सेविका दूसरों के लिए क्षमाशील होती है परंतु अपने लिए अत्यंत कठोर। ■

दो ध्येयाकांक्षी मन जब एक होंगे

धन और ऋण, दो विद्युत प्रवाह एक हो जाते हैं तब सारे विश्व को प्रकाशित कर सकते हैं। दो ध्येयाकांक्षी मन भी जब एक हो जाते हैं, तब विशाल सामर्थ्य निर्माण हो जाता है। हिन्दु संगठन रूपी तारा यंत्र से उसे प्रवाहित किया तो समस्त संसार को प्रकाश देने का चमत्कार वह करेगा। अमानुषता का भीषण अंधकार उससे अपने आप ही नष्ट होगा। मानवता का नंदादीप जलेगा। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' यह वैदिक प्रार्थना सार्थ होगी। कृण्वन्तो विश्वमार्यम् वाली प्रतिज्ञा भी सच निकलेगी।

अपने उत्सव

भारत यह खंडप्राय देश है। इसमें प्रांत, भाषा, वेश की विविधता है, वैसी उत्सवों की भी। इनमें से राष्ट्रीय महत्व के पांच पर्व समिति में विशेष रूप से मनाये जाते हैं। पर्वों से जुड़ी विशेष प्रेरक ऐतिहासिक घटनाओं का पुनः पुनः स्मरण हमारे जीवन में सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक मूल्यों के प्रति श्रद्धा निर्माण करता है - स्फूर्ति देता है।

वर्ष प्रतिपदा

इसे ही युगादि कहते हैं। हिन्दुओं का नव वर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से प्रारंभ होता है। प्रतिपदा- नये वर्ष की ओर हमने कदम उठाया है यह 'प्रतिपदा' शब्द से ध्वनित होता है। फाल्गुन अमावस्या के दिन सिंहावलोकन करना और वर्ष प्रतिपदा के दिन प्रातःकाल सूर्योदय के समय राष्ट्रीय इतिहास का साक्षी हमारा उत्प्रेरक ध्वज लहराकर मांगल्य के लिये प्रार्थना करना-

ब्रह्मध्वज नमस्तेऽस्तु सर्वाभिष्टफलप्रद
प्राप्तेऽस्मिन् वत्सरे नित्यं मद्गेहे मंगलं कुरु।

यह लगभग हमारी ६००० वर्षों की परम्परा है। राजा उपरिचर ने (यह कुरु वंश का पूर्वज) इंद्र की सहायता की। इंद्र ने उसे प्रसन्न हो कर ध्वज दिया। और उपरोक्त श्लोकबद्ध प्रार्थना करने का आग्रह किया। अतः हमारे पंचांगों में इस दिन के सामने वर्षप्रतिपदा के साथ लिखा रहता है ध्वजारोपण। प्राचीनकाल में विजयोत्सव, आनंदोत्सव में ध्वजारोहण की पद्धति थी।

वर्ष प्रतिपदा हमारा राष्ट्रीय विजय दिन है। शकारि विक्रमादित्य ने अत्यंत प्रतिकूल परिस्थिति में अपने अद्भुत पराक्रम से आक्रमणकारियों का नृशंस शासन उखाडकर फेंक दिया। जन-जन में स्वाभिमान और राष्ट्रप्रेम की ज्योति प्रखर की। कहते हैं कि शालिवाहन ने मिट्टी के पुतलों में अर्थात् मृतवत् जनसमाज में राष्ट्र भावना के प्राण फूंक कर विजय प्राप्त की। शक अत्यंत क्रूर थे। उनके कार्यकाल में उनको तरुण सुंदर कुमारी युवतियां प्रतिवर्ष भेंट देनी पड़ती थी। कुछ स्थानों पर गुलामी के प्रतीक रूप में वर्ष प्रतिपदा के दिन ध्वज के स्थान पर उनके आसुरी विजय का प्रतीक-महिला के वस्त्र फहराने का आदेश दिया। शक जानते थे कि जब तक भगवा ध्वज हमारे सम्मुख है तब तक हमारा उज्वल राष्ट्रेतिहास भूलेंगे नहीं। विजय की इच्छा अदम्य ही होगी। अतः उसे नष्ट करना होगा। उनके दबाव के कारण वर्ष प्रतिपदा के दिन साड़ी फहराने की प्रथा रूढ़ हुई। शकारि विक्रमादित्य ने शकों पर विजय पायी। महिलाओं का सम्मान बढ़ाया और फिर एक बार भगवा ध्वज वर्ष प्रतिपदा के दिन घर-घर पर लहराने लगा। सूर्योदय के समय ध्वजारोहण करना और सूर्यास्त के पहले ध्वजावतरण ऐसी पद्धति है। उदीयमान सूर्य जैसा वर्धिष्णु तेज, वैभव हमारा ध्वज प्राप्त करे। गुलामी का अंधकार उसे स्पर्श न करे यह भाव है।

राष्ट्र सेविका समिति का उद्देश्य 'स्व' संरक्षण है। स्वाभिमान जागरण है। अतः वर्ष प्रतिपदा का पर्व समझ कर अपना सांस्कृतिक ध्वज घर-घर फहराया जाने का आग्रह है।

इस दिन कड़वा नीम प्राशन करने की भी पद्धति है। कड़वे नीम के नये पत्ते-पुष्प सहित लेकर उसमें नमक, हिंग, जीरा, इमली, मिश्री आदि पीसकर चटनी बनाकर प्रातःकाल प्रसाद रूप में खाते हैं। कड़वा नीम औषधि गुणयुक्त है। उसे नव वर्ष के प्रारंभ में खाना औचित्यपूर्ण है। वर्ष प्रतिपदा के पश्चात् धूप प्रतिदिन बढ़ती जाती है। नीबू प्राशन से धूप के विकार दूर होते हैं। अनेक कड़वी बातें निगलने के पश्चात् ही मधुर सुख का अनुभव आता है, यह भी संदेश है।

इस दिन का और भी एक महत्व है। ऐतिहासिक काल में हिन्दुओं की चेतना जगा कर उनमें विजिगीषु भावना भरने का कार्य शकारि विक्रमादित्य ने किया वैसा ही युग प्रवर्तक हिंदु संगठन खड़ा करने का कार्य करने वाले प.पू. डॉक्टर हेडगेवारजी का भी यह जन्म दिन है। राष्ट्र सेविका समिति ने संगठन तंत्र के संबंध में उन्हींसे मार्गदर्शन लिया है अतः उनके प्रति अपना आदर कृतज्ञता का भाव प्रकट करने हेतु हम उनका स्मरण करते हैं। यही एक उत्सव है जिसमें पू. डॉक्टरजी की भी प्रतिमा रखते हैं। अन्य सभी उत्सवों में जगज्जननी माँ अष्टभुजा एवं वं. मौसीजी के चित्र रखे जाते हैं।

यह दिन सृष्टि की उत्पत्ति का भी दिन माना जाता है। यह कालबोध सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक है। आत्मगौरव की भावना से जुड़ने के कारण यही दिन अपना नव वर्ष दिन मानना चाहिए।

इसी दिन से श्रीरामवरदायिनी देवी, राष्ट्रपुरुष श्रीराम की नवरात्रि तथा राष्ट्र संत समर्थ रामदास का जन्मोत्सव प्रारंभ होता हैं। शक्तिपूजा, सुजनरक्षा एवं संगठन की प्रेरणा इन्ह से हमें मिलती आयी है।

गुरुपौर्णिमा

भारतीय जीवन पद्धति में गुरु का अतीव महत्व है। गुरु और गोविन्द दोनों खड़े हैं किसको प्रणाम पहले करना है यह संभ्रम निर्माण होने पर गुरु को प्रथम वंदन करना है कारण उनके ही कारण गोविन्द मिले हैं। भारतीय विचारधारा के अनुसार ही जीवनरचना करने का कार्य करने वाली राष्ट्र सेविका समिति ने

भी अपने संगठन के लिए गुरु का महत्व माना है। परंतु किसी व्यक्ति को नहीं अपितु अपनी संस्कृति का चिरप्रतीक अखंड प्रेरणास्रोत भगवे ध्वज को अपना गुरु माना है। व्यक्ति कितना भी श्रेष्ठ हो, अपूर्ण है, स्खलनशील है, उसमें अहंकार, व्यक्तिनिष्ठा निर्माण हो सकती है, समिति का कार्य तत्वप्रधान है व्यक्तिप्रधान नहीं है इसी कारण ध्वज को ही गुरु का स्थान दिया है।

गुरु शब्द का अर्थ है अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करने वाला। जीवनदृष्टि तभी मिल सकती है जब जीवन का वास्तविक उद्देश्य समझ में आयेगा। गुरु के साहचर्य में रहते रहते यह दृष्टि मिलती है। गुरु के प्रभावी व्यक्तित्व के कारण होने वाली यह सहज प्रक्रिया है। हम भी अपने गुरु के सान्निध्य में नियमित रूप से रहते हैं। इसको देखकर ही अपने तेजस्वी भूतकाल की स्मृतियां जागृत होती है। उन्हीं पराक्रमी पूर्वजों का रक्त हमारी नसों में है यह प्रतीत होने पर विजिगीषु वृति निर्माण होती है। पौरुष को आधार चाहिए प्रेम का, विक्रम को आधार चाहिए वैराग्य का, भौतिकता को आधार चाहिए अध्यात्म का, बुद्धि को आधार चाहिए भावना का। यह सब इस ध्वज में साकार हुआ है। अतः उसको देखकर मन में ये भावनाएं पुष्ट होती हैं। केवल उपभोग के लिए नहीं- त्याग और सेवा-समर्पण के लिए हमारा जीवन है यह प्रेरणा स्वाभाविक रूप से मिलती है।

जीवन सफल बनाने की स्फूर्ति देने वाले गुरु के प्रति अपने मन में कृतज्ञता ओतप्रोत होती है। कृतज्ञता जहां है वहां कुछ देने की इच्छा अपने आप जगती है। अधिक से अधिक देने में, श्रेष्ठ आनंद, समाधान मिलता है। अपने भी गुरु को हम अधिक से अधिक दें यह भावना प्रबल होती जाती है। तन से, मन से, धन से, तन-मन धन-जीवन से गुरु की सेवा उसका कार्य करने में ही धन्यता लगती है। हमारे गुरु की तन से सेवा करना अर्थात् अपने कार्य हेतु चाहे जितने शारीरिक परिश्रम करना, कार्य में प्रत्यक्ष सहभागी होना, अपने कार्य से नये-नये लोगों को जोड़ने हेतु व्यापक सम्पर्क करना । मन से गुरु की सेवा करना अर्थात् इसी कार्य का सतत चिंतन करना। मनुष्य के कर्तव्य के पीछे उसका मन, उस मन का संकल्प, उसका बल होता है। मनुष्य के व्यवहार के पीछे उसके मन की प्रेरणा है। ऐसे आकर्षण शक्तियुक्त मन को इसी कार्य में लगाना यही हमारी साधना है। जहां मन लगता है वहां तन और धन भी दौड़ते हैं। किसी कार्य के लिये अपना मन देना अत्यंत आवश्यक है- वही साध्य करना है। मन में किसी कार्य की श्रेष्ठता, अनन्यता, आदर, श्रद्धा निर्माण होने पर ही मन वहां रमता है। मन का समर्पण श्रेष्ठ है, धन के समर्पण का अलग महत्व है। मन की बहुत इच्छा होने पर भी तन सक्षम नहीं रहता है। सक्षम होने पर भी कार्य संचालन के लिए धन की आवश्यकता समझकर अधिकतम धन समर्पण करना है। अपने कार्य में गुरुदक्षिणा का महत्व है। आषाढ़ पौर्णिमा के दिन भारत भर में गुरुपौर्णिमा मनायी जाती है। हम भी शाखा-शाखा में गुरुपूजन करते हैं। हर सेविका श्रद्धा से भगवद् ध्वज की पूजा करती है और अपनी गुरुदक्षिणा समर्पित करती है। यह समर्पण है, दान नहीं। दान से अहंकार निर्माण हो सकता है, समर्पण में निरपेक्षता, निर्लेपता, एकरूपता का भाव है। दान में पावती, नामफलक, प्रसिद्धि, गौरव की अपेक्षा है । समर्पण में यह कुछ नहीं है इसीलिये तो समर्पण-भक्तिसोपान की अंतिम सीढ़ी है। श्रद्धा से समर्पित धन का एक-एक पैसा उसी कार्य के लिए उपयोग में लाया जाता है यह संकेत है, विश्वास है। स्नेह और विश्वास अपने कार्य के मूलाधार हैं।

गुरुपौर्णिमा को व्यास पौर्णिमा भी कहा जाता है। वेदों में जो ज्ञान सूत्रबद्ध था उसका महर्षि व्यास ने १०८ पुराणों में विस्तार किया। इसीलिए वे जगद्गुरु बने- ऐसा एक भी विषय नहीं जिसको उन्होंने स्पर्श नहीं किया। ज्ञान का विस्तार करना यही हमारी जीवनवृत्ति है। समाज के हर एक स्तर तक, जीवन तेजस्वी, अर्थपूर्ण बनाने वाला यह ज्ञान पहुंचना चाहिए। यह कार्य करने वाले व्यास महर्षि का स्मरण करना हमारा कर्तव्य है। हमारे कार्य के माध्यम से हर व्यक्ति का जीवन आलोकित होगा यही अपना उद्देश्य है।

रक्षाबंधन

प्राचीन काल से 'रक्षाबंधन' यह हमारी अपनी विशेषता है। देवराज इंद्र वीरवेष पहनकर युद्धभूमि की ओर प्रस्थान करते समय उनकी पत्नी शची ने आरती उतारकर उनकी कलाई में राखी बांधी थी। 'मेरा सतीत्व, मेरा स्नेह एवं सदिच्छा के प्रतीक कोमल किन्तु मजबूत रेशमी धागे युद्धभूमि पर मेरे पति की, देवेन्द्र की सुरक्षा करेंगे' ऐसा उसका विश्वास था।

स्त्री-पुरुष संबंधों का इतना उदात्त स्वरूप विश्व में कहीं भी नहीं है। केवल सगी बहन ही भाई को राखी बांधती है ऐसा नहीं तो किसी भी युवक को राखी बांधकर उसको हम भाई बना सकते हैं। मंगल पवित्र नाता निर्माण कर सकते हैं यह अद्भुत है।

इस दिन कालांतर से भाई बहन का पवित्र नाता प्रकट करने वाला यह पर्व बन गया। सुदूर बसे हुए भाई बहन एकत्र आते हैं। भाई बहन का रिश्ता मंगल है, पवित्र, निःस्वार्थ है। उसकी सदिच्छा, सतीत्व, स्नेह से गूंथे हुए धागों की राखी भाई को बहन बांधती है। दोनों परस्पर रक्षा के लिए सिद्ध होते हैं। बहन आपत्ति में हो तो भाई उसका साथ देता है और भाई धर्मपथ छोड़ता है तो बहन उसे सन्मार्ग पर लाने का प्रयास करती है। जो बह जाती नहीं वह बहन ऐसा कहा जाता है।

समाज में समरसता एवं भ्रातृभाव निर्माण करने का यह पर्व-संगठन के लिए श्रेष्ठ आधार है।

समिति में हम ध्वज को राखी बांधते हैं। उसके अर्थात् भारत माँ के गौरव-सन्मान के लिए कटिबद्ध होते हैं। माँ के सम्मान की रक्षा का बंधन हमने स्व-प्रेरणा से स्वीकार किया है। जब हम ध्वज की सुरक्षा करते हैं तो वह भी हमें कार्य की प्रेरणा दे कर हमारी सुरक्षा करता है। 'धर्मो रक्षति रक्षितः।'

रक्षाबंधन के दिन सेविकाएं भी एक दूसरे को राखी बांधकर अपना प्रेम भाव प्रकट करती हैं। रक्षा बंधन संदेश भी हरेक साल केन्द्र कार्यालय से सबको भेजा जाता है।

अपनी द्वितीय प्रमुख संचालिका वं. ताईजी-अपने हाथ से राखियां बनाती थी, सेविकाओं को बांधती थी। अड़ोस पड़ोस में रिक्शा चालक, अस्पताल, कात्यायनी अर्थात् मतिमंद बालकों का विद्यालय आदि सार्वजनिक स्थानों पर जाकर आप उनसे राखी बांधकर स्नेह भाव रखती थी।

इस दिन की और एक विशेषता सागर पूजन की है। हमारी भारत माँ का वर्णन 'सागरवसना पावन देवी' किया जाता है। तीनों ओर से वह सागर वेष्टित है। इसी जल मार्ग से हम दूर दूर तक व्यापार के लिए जाते रहते। जलदेवता की पूजा व प्रार्थना सुरक्षितता के लिए की जाती है।

इसको श्रावणी पौर्णिमा भी कहते हैं। जनेऊ बदलना गायत्री मंत्र का जप करना यह इस दिन की विशेषता है। अतः इसे ब्राह्मवृत्ति का पर्व माना जाता है। समाज के अलग-अलग वर्णों के लिये अलग प्रकार से गायत्री मंत्र का जाप किया जाता है।

इस उत्सव की विशेषता स्नेह बंध की है। भाई-बहन, पति-पत्नी, सेवक वर्ग-मालिक-परस्पर राखी बांधते हैं तो परस्पर विश्वास, स्नेह, सामंजस्य भाव बढ़ता है। अपनत्व की भावना बढ़ाने हेतु यह संपर्क का उदात्त माध्यम है। हरेक शाखा ने एकेक उपक्रम हमेशा के लिए स्वीकारना चाहिए जैसे कि अपंग, अंध विद्यालयों में, शासकीय कार्यालयों में, कारागृह में जा कर राखी बांधना। उनसे सम्पर्क रखना। महिला छात्रावास में भी हम सम्पर्क कर सकते हैं।

विजयादशमी

आश्विन शुक्ल दशमी- माँ दुर्गा ने इसी दिन महिषासुर पर विजय पायी थी। दुर्गा यह संगठित मातृशक्ति का प्रतीक है। महिषासुर उन्मत्त हुआ, उसने सुरशक्ति को भी त्राहि भगवान किया। (सुर) देव शूर थे, वीर थे, शस्त्रास्त्रसम्पन्न थे। परंतु विघटित थे। अतः परामूत होते रहे, अंततः वे एकत्रित आये, उनके संगठित तेज ने माँ दुर्गा का निर्माण किया और हरेक ने अपने पास जो जो उत्तम था जीवन भर की जो साधना थी, पुंजी थी वह देवी को प्रदान की। माँ दुर्गा सिंह पर आरूढ़ है। सिंह जनशक्ति का प्रतीक है। सब शस्त्रों से माँ दुर्गा ने दुष्टों का संहार किया। वह विजयी हुई। संगठित शक्ति हमेशा अपराजिता शक्ति होती है। व्यक्ति-व्यक्ति ने साधना कर कुछ उत्कटता, विशेषता, निपुणता प्राप्त करनी है और वह राष्ट्रदेवता को अर्पण करना है। इसी से राष्ट्र बलशाली, विजयशाली बनता है।

आश्विन प्रतिपदा से माँ दुर्गा की आराधना प्रारंभ होती है। नवमी को शस्त्र पूजन किया जाता है। हमारी लगभग सभी देवताएं शस्त्रधारी है। परंतु शस्त्र आतंक के लिए या निर्बलों पर चलाने के लिए नहीं। अपितु खल-निर्दालन और साधुरक्षण के लिये हैं। आज के युग में वाणी भी महत्वपूर्ण शस्त्र है जो दुधारी है। दुर्गा के पास अनुग्रह निग्रह शक्तियां हैं। सज्जनों का अनुग्रह और दुर्जनों का निग्रह उसका जीवनसूत्र है। वही हिन्दुओं ने अपनाया है।

प्राचीन काल में कुछ नियम थे। उनके अनुसार वर्षा ऋतु में युद्ध बंद रहता था। सब अपनी-अपनी खेती पर ध्यान देते थे। आश्विन माह तक फसल तैयार होने के बाद, खेती का काम पूर्ण हो जाता था। वर्षा ऋतु समाप्त होने के कारण रास्ते भी सेना के आवागमन योग्य बनते थे। अतः नवमी को शस्त्र पूजन कर विजयादशमी को युद्ध के लिये प्रस्थान किया जाता था। शूर वीर राज्य की सीमाएं लाँघते थे। आज भी हमें सीमाएं लांघनी हैं- स्वार्थ की व्यक्तिवाद की। इन सीमाओं को लाँघने के पश्चात् राष्ट्रीय दृष्टिकोण निर्माण होगा, जीवन का निश्चित उद्देश्य सामने दिखेगा तब सही रूप से सीमोल्लंघन होगा और एकेक व्यक्ति जब इसी संकल्प से प्रेरित होकर स्वार्थ भाव की सीमा लाँघकर आगे बढ़ेगा तब विजया दशमी यथार्थ होगी।

माँ दुर्गा शत्रुओं का संहार करती है। हमने भी अपने आंतरिक शत्रुओं का- काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर का दमन करना है। अहंकार पर नियंत्रण करने से ही जीवन विजयी होता है।

विजयादशमी राष्ट्र सेविका समिति का स्थापना दिन है। २५ अक्टूबर १९३६ में वं. मौसीजी ने इसी दिन समिति कार्य प्रारंभ किया। अतः समिति में इस दिन का अनन्य महत्व है। इस दिन प्रभात शाखा में ध्वजारोहण के पश्चात् प्रार्थना की जाती है।

इस पर्व के साथ इतिहास की एक सुंदर घटना जुड़ी हुई है। वरतन्तु ऋषि के एक शिष्य कौत्स ने शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् गुरु को दक्षिणा देने की इच्छा व्यक्त की। कौत्स को वह मान्य नहीं था। वे निस्पृह थे। उन्होंने कहा 'बेटा तुम्हें दिये गये ज्ञान का उचित उपयोग करो, बस!' परंतु वरतंतु अपने निश्चय पर अडिग थां। अंत में उन्होंने कहा १०० कोटि स्वर्ण मुद्रा गुरुदक्षिणा ला दो। भाव था कि यह हार कर चुप बैठेगा। वरतंतु आज्ञा शिरसावंद्य मानकर वो रघु राजा के पास पहुंचा। स्वर्ण मुद्रा की मांग की। रघु राजा सोचने लगे। 'क्या किया जाए क्योंकि कुछ दिन पहले ही उन्होंने अपनी पूरी सम्पत्ति दान की थी।' कहा, 'वत्स कल आ जाओ।' आपको स्वर्ण मुद्रा मिलेगी। अब राजा सोचने लगा पूरी सम्पत्ति मैंने दान की है, अब इंद्र से युद्ध करके

ही स्वर्ण मुद्रा लानी पड़ेगी। इंद्र तक यह विचार पहुंचा। उन्होंने रात को झोपड़ी के पास स्वर्ण मुद्राओं की वर्षा की। दूसरे दिन रघु राजा ने वरतंतु को बताया 'मुनिवर, ये रही आपकी स्वर्ण मुद्राएं।' वरतंतु ने उसे चाहिए थी उतनी ही ले ली। शेष ले जाने के लिए वो तैयार नहीं था। और शेष मुद्राएं रखने के लिए रघु राजा तैयार नहीं थे। हर व्यक्ति निरपेक्ष निर्मोही, अपरिग्रहव्रती थी। अतः उन मुद्राओं का रघुराजा ने दान किया। जिस वृक्ष के पास मुद्राओं की वर्षा हुई थी उस वृक्ष का नाम है 'आपटे'। उसके पत्ते सोने के प्रतीक समझकर विजयादशमी के दिन घर के बड़े लोगों को दिये जाते हैं। यह सुवर्ण देने से हम निर्मोही रहें यह आदत पड़ जाती है।

अज्ञातवास के एक साल के बाद पांडवों ने शमी वृक्ष में छिपाये शस्त्र निकालकर युद्ध में विजय प्राप्त की। शमीपत्र भी भगवान को चढ़ाये जाते हैं।

मकर संक्रमण

सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है, अतः इस पर्व को मकर संक्रमण कहते हैं। संक्रमण अर्थात् सम्यक् क्रमण, योग्य मार्गक्रमण, परिवर्तन। सूर्य का अब उत्तर गोलार्ध की ओर प्रवास प्रारंभ हो जाता है। उसको उत्तरायण कहा जाता है। हिन्दु पंचांग के अनुसार सूर्य १२ राशियों से मार्गक्रमण करता है। प्रत्येक माह में राशि बदलता है। मकर संक्रमण के बाद दिन तिलतिल से बड़ा होने लगता है और ठंड कम होती है। यह पर्व दक्षिण के प्रांतों में पोंगल नाम से मनाया जाता है।

इस पर्व पर विशेष महत्व होता है। तिलगुड़ का। तिलगुड़ हमें संगठन शास्त्र के कुछ पाठ पढ़ाता है। तिलगुड़ दे कर हम कहते हैं, तिलगुड़ लो और मीठी बाते करो। तिल में स्नेह है और गुड़ में मिठास। संगठन के लिए ये दोनों बातें अत्यावश्यक है। परंतु इन गुणों से परिपूर्ण होने के लिए उन्हें एक लम्बी प्रक्रिया से जाना पड़ता है। तिल धोये जाते हैं। सुखाये जाते हैं। पश्चात् उनको भूंजते हैं। कूटते हैं तब तेल निकलता है। संस्कृत में तेल को स्नेह कहा जाता है। सहज स्नेह एवं मृदु वाणी लोगों को आकृष्ट करती है। संगठन कार्य में अन्य अन्य लोगों को जोड़ने के लिए यह आवश्यक है। गुड़ को भी कूटा जाता है। दो भिन्न गुणधर्मी वस्तुओं का संयोग होकर, उत्तम स्वाद निर्माण के लिए प्रक्रिया की आवश्यकता है। वैसा ही संगठन में अलग-अलग स्वभाव के लोग आते हैं- उन पर भी एक प्रक्रिया की आवश्यकता है- वाणी की मलिनता, दुर्गुण के कंकड़ पत्थर दूर फेंकने होंगे। वं. ताईजी कहती थी वैसे मुंह में मिश्री रखकर बोलना होगा।

संक्रमण पर्व पर दान किया जाता है। अपने पास है या जो हमने प्राप्त किया है उस पर केवल हमारा अधिकार नहीं है, समाज का भी है- समाज को देने के पश्चात् ही उसका हम उपयोग कर सकते हैं। ईशावास्योपनिषद् हमें यही सिखाता है कि जो कुछ भी इस विश्व में निर्माण हुआ वह ईश्वर ने किया है। त्याग-भावना से उसका उपभोग करो। किसी के भी धन की अभिलाषा मत करो। उपभोगप्रवण वर्तमान परिस्थिति में परिवर्तन लाना है तो निर्मोही, निर्लेप, निरभिलाष बनना आवश्यक है।

इन पांच उत्सवों के अतिरिक्त तीन आदर्श महिलाओं के जन्मदिन स्मृतिदिन मनाना है। प्रांतीय स्तर पर विशेष महत्व होने वाले महिला पुरुषों का भी अंतर्भाव करना है। श्रीराम, श्रीकृष्ण जन्मोत्सव तथा अन्य, विविध लोकपर्वों को सामाजिक संस्कार का अधिष्ठान दिया जाना चाहिए। वं. मौसीजी का जन्म दिन आषाढ़ शु. १० संकल्प दिन, स्मृति दिन कार्तिक/मार्गशीर्ष कृष्ण १२ संपर्क दिन तथा वं. ताईजी आपटे का स्मृति दिन स्मृति माघ फाल्गुन कृ. १२ सेवा दिन के रूप में सम्पन्न करना है। जन सम्पर्क-संग्रह-संस्कार के लिये इन विविध उत्सवों का कल्पकता एवं कुशलतापूर्वक उपयोग किया जावे।

रक्षाबंधन सार्थ करे

धर्म-संस्कृति-परम्परा का रक्षण करने सज्ज रहे
ध्येयसाधनापथ पर चलते रक्षाबंधन सार्थ करे। ।धृ।।

गौरवमय इतिहास हमारा स्वाभिमान से पुनः स्मरे
द्वैतभाव को तिलांजलि दे ऐक्य मंत्र का घोष करे
चिनगारी को हिन्दुभाव के तेजी से प्रज्वलित करे
त्याग-स्नेह के सिंचन से हम ज्योतित उसको सदा रखे। ।१।।

ऐक्यशक्ति से इस समाज को एक नया संजीवन दे।
विघटन वृत्ती विनाशकारी उसे छोड़ बलवान बने
संघटना की दिव्य शक्ति का साक्षात्कार पुनश्च करे
वैभवशाली राष्ट्र बने फिर रक्षाबंधन सार्थ करे। ।

ध्वज भगवा गुरु महान, भारत भू सम्मान

ध्वज भगवा गुरु महान, भारत भू सम्मान
नारायण की तेज प्रखरता
अग्निशिखा सम यह लहराता
है प्रतीक यह प्राचीनता का
संस्कृति का अभिमान, भारत भू-सम्मान ।।१।।

शांति, क्रांति और त्याग सिखाता
वैभव का भी मार्ग दिखाता
अग्निशिखा ही महान, भारत भू सम्मान ।।२।।

पथ दर्शक है ऋषिमुनियों का
अमूर्तरूप निस्पृहता का
मानदण्ड है मानवता का
सद्गुरु एक महान, भारत भू सम्मान ।।३।।

शिक्षा दिक्षा हमें प्राप्त हो
कृतघ्न कभी ना, कृतज्ञ हम हो
तनमन धन से गुरुपूजन हो
आत्मार्पण ही महान, भारत भू सम्मान ।।४।।

संक्रमण गीत

प्रगति पथकी राह लिये। आगे ही तो बढ़ना है।
दैन्य आपदा अपनी मिटाकर। फिर से वैभव पाना है।
प्रगति के पथ जाना है।
जय जय भारत जय हे देश। संक्रमणा का नवसंदेश ।।ध्रु।।

हृदयकमल भाव जिसे। मधुवचनों का गंध जिसे।
स्नेहमयी रज्जू से गूंथी। एकता की जयमाला है ।।१।।

युद्धमेघ नभमें आये। कडाड बिजली थर्राये
घुआँधार यदि विपदा बरसे। संगठीत हो दटना है ।।२।।

स्वार्थ की लहरे टकराती। जीवन नौका बलखाती
नेता के प्रति निष्ठा रखकर। पहले तट पर जाना है ।।३।।

प्रान्तियता का वृथाभिमान। भाषा की है जिद महान
अखण्ड भारत का ही चिंतन। नित्य हृदय में करना है ।।४।।

स्वार्थभाव का त्याग करें। एकत्रित हो बल पाये।
तभी फिर से हम देख सकेंगे। भारत भाग उजाला है ।।५।।

हो सजग चिर साधना में

हो सजग चिर साधना में। हो सजग चिर साधना में।।
सजग प्रहरी से निरंतर
ध्येय-पथ पर चलें अविचल
निमिष के युग-युग मिटाकर
प्रेम सरिता बहे अविरल
हो सभी आराध्यमय-इस राष्ट्र की आराधना में।।१।।

मूंद पलकों में निरंतर
मातृभू की छवि अलौकिक
भाव भक्ति के अमिय से
छूट जाये मोह लौकिक
जाग जीवन का समर्पण - देशहित की कामना में।।२।।

ध्वंस का होता मुखर
सिसकती संवेदनाएं
नारी जब निर्माति हो तब
बिखरती क्यों भावनाएं
सृजन के संकल्प लिए नव-संगठन की कल्पना में।।३।।

विश्व के उन्नत क्षितिज में
अरुण ध्वज लाये सवेरा
हिन्दु तत्वों की धरा ही
प्राणपंछी का बसेरा
विश्वव्यापी संस्कृति हमारे-धर्म की उपासना में।।४।।

भगवा ध्वज हमारा गुरु

समिति तत्वपूजक है। व्यक्तिपूजा नहीं मानती। इसलिए समिति ने किसी व्यक्ति को गुरुस्थान नहीं दिया है। हिन्दु राष्ट्र की अत्युच्च आकांक्षाओं का प्रतीक जो भगवा ध्वज उसे ही गुरु माना है। हिन्दुओं की सब धार्मिक और ऐहिक आकांक्षाएं इस ध्वज में एकत्रित हुई है। इस ध्वज को गौरव के साथ ऊंचा उठाना हमारा दायित्व है। हिन्दु राष्ट्र का उत्थान भगवे ध्वज के सम्मान पर निर्भर है ऐसा हमारा विश्वास है।

देवी अष्टभुजा

देवी अष्टभुजा-जगज्जननी-राष्ट्र सेविका समिति की आराध्य देवता है। अर्थात् पूर्ण विकसित भारतीय स्त्री का रूप हम उसमें देखते हैं। हम शक्तिपूजक एवं गुणपूजक हैं उनको ही मूर्त रूप देकर अपनी देवताओं की आकृति बनायी है। यह केवल मूर्तिपूजा नहीं सद्गुणपूजा है, यह स्पष्ट है। शक्ति के बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। बैटरी के सेल्स में शक्ति है तब तक ही वे प्रकाश दे सकते हैं। शक्ति क्षीण होने पर हम उनको फेंक देते हैं। शिवजी ने भी कहा है कि जब मैं शक्तियुक्त हूं तब शिव होता हूं अन्यथा शव होता हूँ अर्थात् जीवन में गतिशीलता केवल शक्ति के कारण ही प्राप्त होती है। जगज्जननी साक्षात् शक्ति है। उसके कारण ही कुछ करने की प्रेरणा मिलती है। वही स्त्री का रूप है। नवदुर्गा का महत्व अपने धर्म में इसीलिये है। शून्य के पीछे १ से ९ के आंकड़े होते हैं तब उसको मूल्य प्राप्त होता है। केवल शून्य को कोई महत्व नहीं। मूल्य उसके पीछे के आंकड़े की शक्ति हैं।

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।।

शक्ति के भी विविध रूप है, उनमें तीन विशेष महत्व के हैं- बुद्धिदात्री, शक्तिदात्री, समृद्धिदात्री। एक ही स्त्री किसी की माँ होती है, किसी की भाभी है, मौसी है, चाची है, बुआ भी है। स्त्री एक ही है उसको अनेक रूपों में देखा जाता है। भगवती एक ही है उसकी अनेक रूपों में उपासना की जाती है-

या देवी सर्व-भूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्त नमस्तस्यै नमो नमः।।
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

शक्ति का इन सभी रूपों में पूजन होने लगा। सर्वप्रथम मनुष्य को जीवन का ज्ञान हुआ। पवित्र, शुद्ध, तेजस्वी, उज्वल, विचार निर्माण करने वाला ज्ञान-ये विचार प्रवाहित करने वाला, रखने वाला ज्ञान। उसको माँ के रूप में देखा - माँ सरस्वती-वेश शुभ्र, आभरण शुभ्र, हाथ में पुस्तक (ज्ञान का प्रतीक) वीणा-जीवन-संगीत सदैव सुरेल रहे इसलिये वीणा के तारों को विशिष्ट बंधन स्वीकारना पड़ता है तभी दिव्य, स्वर्गीय संगीत निर्माण होता है। हंसवाहिनी नीरक्षीरविवेकी है।

ज्ञान याने जीवन के अंतिम सत्य की खोज मैं कौन हूं ? ज्ञान के बिना मनुष्य जीवन व्यर्थ है। अज्ञानी व्यक्ति को सम्मान नहीं मिलता- ज्ञानी का सम्मान सर्वदूर होता है। 'स्वदेशे पूज्यते राजा-विद्वान सर्वत्र पूज्यते।' ज्ञान ही मनुष्य का आचरण नियंत्रित करता है। हम तो अमृतपुत्र हैं। यह ज्ञान जीवन में मानवता, दिव्यता, तेजस्विता निर्माण करता है। यह स्फुरण चैतन्यदायी है-

मानव जीवन का विकास हुआ। गोधन, पशुधन, धान्यधन की कल्पना आयी। जीवनावश्यक चीजों की संख्या बढ़ी। उनकी क्रय, विक्रय विनिमय शक्ति बढ़ी। उनको नाम दिया माँ लक्ष्मी। लक्ष्मी अर्थात् शोभा-अलंकरण-श्री। लक्ष्मी रक्त कमल में विराजमान हैं। वह निर्लेप है-सुन्दरता का और रजोगुण का भी प्रतीक है। फिर भी वह शुभ्रवर्णा रजतस्रजां हिरण्यमयी, हस्तीनादप्रबोधिनीम् है। उसके आठ रूप हैं- धनलक्ष्मी, धान्यलक्ष्मी, धैर्यलक्ष्मी, शौर्यलक्ष्मी, विद्यालक्ष्मी, कीर्तिलक्ष्मी, विजयलक्ष्मी, राज्यलक्ष्मी। लक्ष्मी प्रयत्नशील उद्योगरत सत्शील व्यक्ति के पास रहती है। उद्योगिनः पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।

वैभव, समृद्धि का रक्षण करने के लिए शक्ति चाहिए। आक्रांता को भले ही उसका रूप रौद्र दिखे परंतु हमारे लिये तो वह माँ है- काली माता दुर्गा माता। उत्पत्ति के साथ-साथ विलय भी आवश्यक है। जहांसे आये वहां जाना हैं। माँ की कोख से आये माँ की गोद में ही जाना है। यह स्वाभाविक स्थिति है- डरने का भयभीत होने का क्या कारण ? परंतु जो दुष्ट हैं- आतंक निर्माण करता है, ममता की कोमलता नहीं समझता है, उसको समझाने

के लिए उग्र रूप धारण कर उसे प्रताड़ित, दंडित करना पड़ता है। दैन्य, विघ्न, रोग, शत्रुभावना, पाप, शत्रुभावना का विनाश करना ही आवश्यक है। उस शक्ति को कोई लांघ नहीं सकता- इसलिये वह दुर्गा है- दुर्गामाता है।

शक्ति, बुद्धि, समृद्धि के समुचित समन्वय से ही समाज जीवित रहता है। इनमेंसे, किसी एककी कमी होने पर राष्ट्र जीवन उद्वेलित हो जाता है। तीनों का कृपा प्रसाद चाहिए। इन तीनों देवताओं का दर्शन हमारी भारत माता में होता है। कविवर्य बंकिम चटर्जी लिखते हैं त्वं हि दुर्गादशप्रहरणधारिणी-कमला कमलदलविहारिणी-वाणी विद्यादायिनी उसी माँ की हम कन्याएं, ज्ञानदायिनी सरस्वती माँ का-समृद्धदायिनी लक्ष्मी का, शक्तिशालिनी दुर्गा का रूप धारण करें वैसा जीवन में व्यवहार करें।

भागवत जैसे ग्रंथों में देवी की उत्पत्ति की कथा संकेत रूप में दी है। सारी सृष्टि दानव शक्ति के अत्याचारों से पीड़ित है। अनादि काल से सुरासुर वृत्ति का संघर्ष चलता आया है। असुर प्रबल हुए उनके प्रकोप से बचने हेतु सुरगण आदि शक्ति के शरण में गये। उनके पास बुद्धि थी शक्ति थी, धन भी था, परंतु वे संगठित नहीं थे। उनकी हार का कारण आदि- शक्ति ने पहचाना-उनको कहा कि हरेक के पास जो जो अच्छा शस्त्र है वह उसको दे दें। वह मातृशक्ति संगठित शक्ति और दुष्टता के विनाश का संकल्प लेकर खड़ी हुई और असंभवसा दीखने वाला कार्य कर दिखाया। आसुरी वृत्ति का विनाश तब ही होता है जब उसका प्रतिरोध मातृशक्ति के मन में होता है और उसकी समाप्ति के लिए वह कृतसंकल्प होती है। आज भी जीवनमूल्यों की अनैतिकता के पैरों तले कुचलने वाली अहंमन्य दानवी शक्ति, भौतिक उपभोगवाद को सर पर ले रही है। इसको हटाने के लिए माताओं को संगठित प्रयत्न करना चाहिए। अपराजिता शक्ति का रूप धारण करना चाहिए।

अष्टभुजा के आठ हाथ हैं परंतु मस्तक एक है। विराट् कार्यशक्ति को विचारशक्ति, चिंतनशक्ति, एकही केन्द्र से प्राप्त होती है। तब बुद्धिभेद नहीं होता-कार्यशक्ति प्रभावी होती है। आठ हाथ है, चारों वर्ण, चारों आश्रम, चारों पुरुषार्थ के प्रतीक हैं। सभी हम एक शरीर के अंग हैं, हमारा हित इस शरीर से जुड़कर रहने में है, हमारा हित एकही है, ऐसा सोचा तो अंगांगी भाव के कारण स्पर्धा, ईर्ष्या, मत्सर नहीं रहेगा। शुद्ध एकात्मता की अनुभूति ही रहेगी। विघटनात्मक, व्यक्तिकेन्द्रित वृत्ति के कारण होने वाले संकट टलेंगे। अध्यात्मिक कार्यशक्ति भी उसमें समाहित है। अपनी कार्यशक्ति माँ के चरणों में समर्पित होनी चाहिए। सामूहिक कार्यसंकल्प हितकारक है। हमें प्राप्त होने वाली शक्ति सृजनशील है। सुजनता के रक्षण के लिए है। एक ही वस्तु सुजन और दुर्जनों के हाथों में होने पर उसका उपयोग भी अलग प्रकार से होता है।

विद्याविवादाय धनंमदाय
शक्तिःपरेषां परिपीड़नाय।
खलस्य साधोर्विपरीतभेतद्।
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय।

साधुरक्षण के लिए हमारी शक्ति का उपयोग है।

जगज्जननी के आठ हाथों में आयुध हैं। हमारे कोई भी देवता निःशस्त्र नहीं है। उसका समयानुसार सही उपयोग होता है। हम हिंसाचारी, युद्धपिपासू या समाज विध्वंसवादी नहीं कि शस्त्रों का अंधाधुंध उपयोग करें।

हमारे एक सेनाधिकारी ने कहा था कि - "We shall not be the first to use the weapons but we shall also not be the second to use them." हमारी जगज्जननी के हाथों के आयुध स्त्री के एक-एक विशेष गुणों के प्रतीक हैं।

अग्निकुंड

सबसे पहले दाहिने हाथ में अग्निकुंड है। शुद्धता, तेजस्विता, दाहकता का प्रतीक है वह। अग्नि स्वयं जलकर भी दूसरों का जीवन समृद्ध करता है। हमारी संस्कृति त्यागमय है। अग्नि अशुद्धि ही जलाता है। व्यक्ति में दोष रहते ही है। अपने गुणों के प्रभाव से वे दूर करना चाहिए। भारतीय स्त्री की तेजस्विता, पवित्रता उसके शुद्ध शील में है। यही उसकी विशेषता है। उसी के कारण विश्व में उसका सम्मान होता है। भारतीय स्त्री शील के लिए जीवित रहती है। शील के लिए लड़ती है। शील के लिए मृत्यु को भी स्वीकार करती है। सांस्कृतिक तूफानों में भी अपनी यह विशेषता कायम रखती है। अग्नि सीमा में बद्ध है तब तारक है- सीमा तोड़ने पर संहारक है। कौनसा भी तत्व संहारक बने, विनाशक बने या तारक-विधायक बने वह उसका उपयोग करने वाले की विवेक बुद्धि पर निर्भर है। यह विवेक स्त्री में होना अनिवार्य है तभी तो वह सर्वसंरक्षक की भूमिका निभा पायेगी। अग्नि का और भी एक गुण है- उर्ध्वगमिता। वह कभी अधोगामी नीचे नहीं जाता है। हमारी संस्कृति भी ऐसी उर्ध्वगामिता है अधोगामी, नहीं। उसको दबाना असंभव है। चिरप्रगति की राह में चलने वाली हिन्दु संस्कृति का संरक्षण मातृरूपा स्त्री का ही है।

स्मरणी

माँ के दूसरे हाथ में माला है। नामस्मरण का अलग ही महत्व। प्रतिक्षण आराध्य का स्मरण हमें सन्मार्ग पर ही चलने की प्रेरणा देता है। यह स्मरणी हमें नित्य अपने ध्येय का स्मरण दिलाती है। जीवन में मोह के, आसक्ति के इतने क्षण आते हैं कि हम अपने जीवित का लक्ष्य भूल सकते हैं। हमारे शरीर को ऐसी आदत लगनी चाहिए की हमारा मन ध्येय की ओर खींचता जाये। इष्ट का स्मरण करते समय उसके पूर्ण रूप का ध्यान होता है। यह ध्यान, ध्येयविषय का निरंतर स्मरण, हमें इष्ट की प्राप्ति कराता है। हमारे

राष्ट्र को परमवैभव तक ले जाने हेतु संगठन-उसके हम घटक यह स्मरण नित्य रखना यही हमारी साधना है। साध्य को प्राप्त करने के लिए साधना आवश्यक है- साधना के कारण हम सफल होंगे। प्रेम के सूत्र में बद्ध अनुशासित सेविकाओं की माला अखंड कार्यसाधना करती है। निद्रा आलस्य में जीवन का एक क्षण भी गंवाना नहीं है। मनुष्य का जीवन सीमित है। जो क्षण जाता है उसको हम कभी भी वापस नहीं ला सकते हैं। अतः उसका राष्ट्रसेवा के लिए उपयोग ही यह अखंड स्मरण दिलाती है।

खड्ग:

तीसरे हाथ में जो खड्ग है वह हमारे असिधाराव्रत को स्पष्ट करता है। यह शस्त्र दुधारी है। धर्मरक्षणार्थ उसका उपयोग हो, न कि स्वार्थ के लिए। लड़ाई में शस्त्र या शस्त्रसज्ज हाथ नहीं लड़ता, लड़ता है मन। और मन लड़ता है तब ही यश मिलता है। मन से लड़ने वालों की संख्या यदि कम हो तो भी वे यशस्वी होते हैं। हमारी माँ के हाथ के खड्ग के पीछे दुष्टदमनार्थ संकल्पित उसका मन है अतः यशप्राप्ति निश्चित है। हमारे पास भी एक दुधारी शस्त्र है- अपनी वाणी। इसका उचित उपयोग होगा तो उसमें स्नेह होगा- लोग अपने से जुड़ेंगे। उसका दुरुपयोग होने पर लोग हमसे टूटेंगे। वह संगठन को मारक है। शस्त्र का घाव भरता है, वाणी का कभी भी नहीं, अतः वाणी का सावधानीपूर्वक उपयोग हम करें इतनी अपेक्षा है। तपःपूत शब्दों में काफी शक्ति होती है। भगवान श्रीकृष्ण के शब्दों के कारण ही अर्जुन की संभ्रमित बुद्धि निश्चयात्मिका बुद्धि बनी। माँ के शब्दों में भी वीरता, कर्तव्यभावना, राष्ट्रीय चेतना जगाने की शक्ति है। उसने अपनी शक्ति का पूरी तरह से उपयोग करना है।

वरदहस्त

माँ का चौथा हाथ वरदहस्त है। माँ क्षमाशील है- शरणागत को अभय उसका प्रण-व्रत है। करुणामयी, ममतामयी माँ अपने सत्वशील संतानों को शुभाशीष देती है। आश्वासक स्पर्श से हमें सुरक्षितता प्राप्त होती है। गलती हुई और वह मान ली तो माँ क्षमा करेगी और कहेगी, "बेटा, एक बार गलती की बार बार नहीं करना।" व्यक्ति सुधरने की संभावना रहती है। माँ के पास जाकर अपनी गलती मान लेना। यह माँ के प्रति विश्वास और खुलेपन का लक्षण है। ऐसा ही मातृत्व आज अपेक्षित है। अन्यथा मानसिक दूरी बढ़ती जायेगी-अपराधों में फंसते जायेंगे-सुधार होने की संभावना क्षीण होती जायेगी।

त्रिशूल

त्रिशूल दंड पर आरोहित केसरिया ध्वज माँ ने अपने हाथ में पकड़कर हिन्दु संस्कृति की ध्वजा ही फहराई है। त्रिशूल-त्रिगुणात्मक प्रकृति का प्रतीक है। कायिक, वाचिक, मानसिक बुराईयों को दूर करने के लिए त्रिशूल का उपयोग होता है। सत्त्व, रज, तम का संतुलन, उच्च आनंदमयी अवस्था तक ले जाता है। ऐसे मजबूत ध्वज दंड पर फहरने वाला भगवा ध्वज, हमारी त्याग पर आधारित तेजस्वी संस्कृति को दर्शाता है। विक्रम और वैराग्य के रंग से यह ध्वज रंगा है। विश्व को प्रकाश देने वाले उदीयमान सूर्य जैसा इसका रंग। अज्ञान अंधःकार हटाकर ज्ञान का प्रकाश जीवन में लाता है। प्रदीप्त अग्नि जैसा यह रंग त्याग और तेजस्विता की प्रेरणा देता है। इस रंग के प्रति हिन्दु मानस में प्रगाढ़ श्रद्धा है। उसके सामने वह नम्र होता है। सभी हिन्दु वीरों ने इसीसे प्रेरणा ले कर विजय प्राप्त की है। हिन्दुओं के विजयी इतिहास का साक्षी यह ध्वज हमारा गुरु है, श्रद्धास्थान है, प्रेरणा केन्द्र है। हमारे जीवन मूल्य व दृढ़ जीवनशक्ति का स्रोत यही ध्वज है। इनको जीवित रखने का ही मतलब है यह ध्वजा फहराना।

गीता

हिन्दुओं के तत्वज्ञान को धारण करने वाली श्रीमद्भगवद्गीता देवी अष्टभुजा ने हाथ में धारण की है। ध्येयप्राप्ति के लिये आवश्यक ज्ञान, कर्म, भक्ति का मधुर संगम गीता में है- कर्म ज्ञानाधिष्ठित हो, ज्ञान कर्म के लिए प्रेरणादायी हो। ज्ञान और कर्म के साथ भक्ति भी चाहिए जिससे जीवन में नम्रता आयेगी-अन्यथा ज्ञान, कार्य का अहंकार होगा, जिससे बुद्धि भ्रष्ट होगी और वह सर्वनाश को आमंत्रित करेगी।

यह हमारा राष्ट्रीय ग्रंथ है, इसमें हिन्दुत्व का निचोड़ है। सारा विश्व, मानवी जीवन में निर्माण होने वाली संभ्रमावस्था दूर कर कर्तव्य की प्रेरणा देने वाले, ईश्वरीय वाणी को धारण करने वाले, इस ग्रंथ का सम्मान करता है। अनासक्त कर्म अर्थात् सम्पूर्ण श्रद्धाभाव से किया हुआ कर्म ईश्वर को तुष्ट करता है। कर्तव्यविमुखता निष्क्रियता, कायरता, पलायनवादी वृत्ति हमारा, तत्वज्ञान स्वीकार नहीं करता। अर्जुन जैसे बुद्धिमान, कर्तव्यदक्ष युवक कर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं उनको कर्तव्यबोध कराया है गीता ने। देह कर्ता है हम निमित्तमात्र है यह भावना गीता में प्रकट होती है।

घंटा

घंटा है नादब्रह्म का प्रतीक-ध्वनी एक उर्जा है। ध्वनि के कारण नींद टूटती है, जागृति आती है। जागृति चेतना का रूप है। नींद अर्थात् निष्क्रियता। घंटानाद उत्साहवर्धक है, वह मंदिर की घंटा का नाद है तो मन प्रसन्न होता है। यह प्रदूषण निर्माण करने वाला कर्कश ध्वनि नहीं है। भगवान के मंदिर में जाते समय हम घंटा बजाते हैं। मन को आगाह करते हैं। हम मंदिर में ईश्वर के सामने झुक कर आये हैं- घंटा के ध्वनिकंपन का मंगल आघात मन को नम्र बनाता है। नादलहरों में प्रचंड सामर्थ्य है। निद्रायुक्त समाज को जागृत करने वाला यह घंटानाद हमें बताता है हम जागृत समाज के घटक है- निद्रा आलस्य के कारण कर्तव्य नहीं भूलेंगे।

इन स्वरों से हमें चेतना मिली है। पूजा के समय भी घंटा की पूजा करते समय हम कहते हैं-

आगमार्थं तु देवानां गमनार्थं तु रक्षसाम्।
कुरु घंटे रवं तत्र देवताव्हानलक्षणम्।।

दैवी शक्ति को आह्वान करने वाली, दुष्ट शक्ति को भगाने वाला ध्वनि हमें पूज्य है।

कमल

विविधता में एकता का दर्शन करने वाला सुंदर सुगंधित पुष्प भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। यह लक्ष्मी का निवास स्थान है- वैभव, ज्ञान का सूचक है। किचड़ में जन्म होने पर भी किचड़ की गंदगी या पानी में रहते हुए भी दुर्गुणों से हम ऊपरउठ सकते हैं। निर्लेपता, अनासक्ति का संस्कार कमल से हमें मिलता है। मनुष्य जीवन में सौंदर्य, सुगंध उसके ज्ञान की है गुणों की है। भारत गुणपूजक है, ज्ञानपूजक है। कमल की पंखुड़ियां विविध रंगछटाओं को बिखेरती हैं। परंतु उनको जीवनरस एक ही डंठल से मिलता है। हम भी अनेक व्यक्ति है, हमारे अनेक पंथोपंथ है, सबको हिंदुत्व की डंठल से जीवनरस प्राप्त होता है। जब तक हम इससे जुड़े रहेंगे, हम जीवित रहेंगे। इससे अलग होना अर्थात् मृत्यु-अपने अस्तित्व की समाप्ति। हम भी संगठन के साथ रहेंगे तभी हमारा अस्तित्व रहेगा। संगठन से छूटना उसको विरूप करना, अपना अस्तित्व समाप्त करना है यह ध्यान में रहे।

कमल कोमल है परंतु उसकी शक्ति अमित है। सौंदर्य के कारण कमल की ओर आकृष्ट होने वाला भ्रमर उसके गुणों के प्रभाव से अपनी भ्रमरी वृत्ति, विनाशक प्रवृत्ति भूल जाता है। कमल में बंदी बनता है। सात्विक गुणों में विनाशक प्रवृत्तियों को नियंत्रित करने की शक्ति है। भारतीय स्त्री के अंगभूत गुणों की यह शक्ति उसे प्राप्त करनी चाहिए।

अष्टभुजा देवी सिंहवाहिनी है। सिंह अपने पराक्रम से वनराज बनता है। उसको सब डरते हैं ऐसे सिंह को अपनी सँवारी बनाने वाली हमारी माँ है। सभी प्रकृति के लोगों को अपने कार्य के लिये उपयुक्त बनाने की शक्ति उसमें है। हम उसकी कन्याएं उनमें भी यह शक्ति निर्माण होनी चाहिए।

सिंहावलोकन

स्वयमेव मृगेंद्रता। आवश्यक उतना ही संहार, स्वयं की शिकार से ही गुजारा।

सिंह जनता का भी प्रतीक है। वह सो जाता है तब क्षुद्र प्राणी भी उसको नोचते हैं। परंतु वह जगता है, उसको आत्मशक्ति का भान आता है और वह दहाड़ता है तब सब दुम दबा कर भागते हैं। भारतीय जनता की भी अपनी सोयी हुई अस्मिता जागृत करने पर उसके प्रभाव से सब लोग प्रभावित हुए।

देवी के सिंहासीन से एक विशेष भाव निर्माण करता है। यह जलप्रवाह, अखंड प्रवाहित रहने वाली भारतीय संस्कृति का द्योतक है। हिन्दु जीवन धारा को कोई रोक नहीं सकता। अनेक बाधाओं को पार करता हुआ यह पुण्य प्रवाह बहता रहेगा।

वटवृक्ष हिंदु समाज की विशालता, आश्रयशीलता, अक्षयता दिखाता है। वटवृक्ष की टहनीयाँ से ही नया वृक्ष निर्माण होता है। हिन्दु समाज की जड़ें भी ऐसी ही शाश्वत अस्तित्व का विश्वास देने वाली हैं।

संगठना की फलश्रुति

संगठना है सामाजिक व्यक्तियों की एकात्मकता।

संगठन की शक्ति यह केवल संख्याबल में नहीं। परस्पर सहानुभव, निरपेक्ष स्नेहभाव, संकट समय में परस्पर सहायता के लिए दौड़ते हुये जाने की तत्परता, समाज के सुख दुःख में अपना सुखदुःख देखने की प्रवृति, यह संगठना का मूर्त रूप है। संगठन के सारे घटकों में यह प्रवृत्ति, जागृत करना यही संगठना की फलश्रुति है।

दुर्गा आरती

जय जगदम्बे नत मस्तक हो, गाऊ मंगल आरती
प्रतीक मानवता का तू है, अष्टभुजा तू कहलाती।।ध्रु।।

शक्ति देवता उमा लक्ष्मी वैभव की है अधिकारी
सरस्वती तू बुद्धिमती यह त्रिभुज रूप तव मनहारी
परब्रह्म तू वरद हस्त से जग में जीवन भर देती।।१।।

अमर हमारा हिन्दु धर्म है अक्षय वट यह दिखलाता
इस धरती पर जितने पंथ है इसी वृक्ष की वे शाखा
सहिष्णुता है छाया इसकी अखिल विश्व को दे शांति।।२।।

धैर्य शौर्य का मूर्त रूप तुम सिंहवाहिनी होती हो
खड्ग हाथ में सबल हो कर शील रक्षण है करती
दुष्टों का निर्दालन करके भक्तों को है अभय दिलाती।।३।।

कमल फूल खिल जाये तो दश दिशा सुगंधित होती है
व्यष्टि समष्टि संगम यह सृष्टि की अनुपम रीती है
पंकज होकर भी प्रसन्न है, यह प्रसन्नता हम को भाती।।४।।

हिन्दु सती की पवित्रता अति उज्वल फिर भी दाहक है
अग्नि कुंड की ज्वाला जैसे दिव्यता प्रती पहुंची है
अटल ध्येय के प्रति कार्य की कमी न होवे विसंगति।।५।।

श्रीमद् भगवद् गीता यह तो सकल ज्ञान का है भण्डार
हिन्दु धर्म की विशेषता जो आत्मज्ञान का यह आधार
ज्ञान भक्ति के बिना व्यर्थ सब इसी तत्व को बतलाती।।६।।

विध्वंसन की वृत्ति छोड़कर भ्रमर बद्ध है पंकज में
कृतार्थ हो जाती है नारी तेज सती का पाने में
घण्टानाद कर रही जागृति, अखिल राष्ट्र को दे स्फूर्ति।।७।।

त्रिगुणात्मक यह त्रिशुल हाथ में असुरों का संहार किया
त्यागमूर्ति गेरुए रंग का राष्ट्र ध्वज जब फहरा
त्यागी बन कर मान बढ़ाओ यही संदेश तू देती।।८।।

समर्थ अपना राष्ट्र हो यह समिति भी बलशाली हो
इस कारण ये दिव्य आयुध आज हमें भी प्राप्त हो
तुम बिन कोई न रक्षक माने, कृपा करो अब जगन्मति।।९।।

सम्मुख आ कर आशीष दो, राष्ट्र सेविका समिति को
संघटना का कमलपुष्प यह, अर्पण है निज माता को
भारत भूपर उदय अस्तु ते गूंजे यह मंगल उक्ति।।१०।।

मातृत्व का आदर्श - जिजामाता

सूर्य से पहले अभिवादन करें पूर्व दिशा को
शिवबासे पहले अभिवादन जीजामाता को

ऐसा कहा गया है। सूर्य प्रत्यक्ष प्रकाश देता है शिवबा ने स्वयं पराक्रम से हिंदवी साम्राज्य निर्माण किया परंतु जिनकी कोख से ये तेजस्वी वीर निकलें उनको प्रणाम करना अत्यंत आवश्यक है।

जीजामाता के बारे में बालकृष्ण लिखते हैं - She had a head of a man over the shoulder of a woman

अर्थात् विकल्प से महिला की राजनीति में गति कम है। कितना विपरीत विश्वास। शिवाजी महाराज के जन्म से पूर्व ८ शतकों तक मुस्लिमों के सतत आक्रमणों के कारण हिन्दु समाज दुर्बल, स्वत्वहीन बन गया था। उसकी प्रतिकार शक्ति लुप्त हो गई थी। गुलामी की चूभन भी मिटती जा रही थी। 'यही हमारी नियति है - भगवान रखेगा वैसा रहना है' यह मानसिकता बन गयी थी। हम 'स्वामी' है की भावना समाप्त होकर किसी ना किसी मुस्लिम राजा की नौकरी करना और उनका पक्ष ले कर दूसरे मुस्लिम राजाओं से लड़ना अर्थात् हिन्दुओं से ही लड़ना उनको काटना, मारना। उनकी विजय में अपनी विजय मानना यह मानसिकता बनी थी। हम हिन्दु है यह कहलाने में भी हीनता का भाव मन में बना था। राजा अर्थात् वह मुसलमान ही होगा हम राजा नहीं बन सकते ऐसा न्यूनगंड हिन्दु समाज में भरा था। हिन्दुओं की उदासीनता के कारण विस्मृति में खोयी, अस्मिता को जगाने वाली पुनः हिन्दु राष्ट्र का चाणक्य नीति के अनुसार पुनर्निर्माण करने वाली, हिन्दुस्थान को यवन स्थान बनने से रोकने वाली एक दृढ़ संकल्प की महिला १७वीं शताब्दी में जन्मी- सिंदखेड के राजा लखुजी जाधव के कुल में-नाम था जीजा।

बाल्यकाल में ही हिन्दु देवालयों, श्रद्धास्थानों का मुस्लिमों द्वारा अपमान, महिलाओं का अपहरण ये नित्य की घटनाएं वह देखती थी। यह देखकर उसका मन व्याकुल हो उठता- किसकी विजय के लिए हिन्दु मर रहे हैं ? यह शौर्य वे अपनी स्वतंत्रता के लिए क्यों नहीं दिखा सकते ? उनको कौन प्रेरित करेगा ? उसके इन प्रश्नों का उत्तर देने में कोई भी समर्थ नहीं था। बाल जीजा के मन पर एक-एक खरोंच उठ रही थी।

लखूजी राजे जाधव के घर प्रति वर्ष रंग पंचमी का पर्व धूमधाम से मनाया जाता था। १६०५ की रंगपंचमी अपूर्व थी। उस दिन मालोजी भौंसले अपने पुत्र शहाजी को ले कर उपस्थित थे। शहाजी और जीजा परस्पर गुलाल खेलने लगे। मालोजी ने मजाक में कहा - 'बहुत ही योग्य जोड़ी है दोनों की।' मालोजी की सांपत्तिक स्थिति अपनी जैसी अच्छी नहीं इसलिए मालोजी के साथ यह रिश्ता करने की जाधवराव की इच्छा नहीं थी। जाधव जैसे देवगिरि के यादवों के वंशज थे वैसे भौंसले भी सिसोदिया राजपूत वंश के थे। अपनी सांपत्तिक स्थिति की बात मालोजी को खलती रही। कहा जाता है कि एक दिन उसको सपना आया कि खेत में विशिष्ट स्थान पर खोदने से विपुल धनसंग्रह उसको मिलेगा, वैसा ही हुआ। निजामशहा ने भी मालोजी का दर्जा बढ़ाया। निजामशहा का यह अप्रत्यक्ष आदेश है यह मान कर जीजा, शहाजी का विवाह ठाठ बाट से सम्पन्न हुआ।

वीररमणी तपस्विनी -

शहाजी-जीजा का सहजीवन प्रारंभ हुआ। शहाजी राजा के मन में महत्वाकांक्षा जगी कि दक्षिण में मुस्लिम राज्यों पर रोक

लगा कर हिन्दुओं के हाथों में सत्ता केन्द्रित हो। उत्तर दक्षिण के मुस्लिम एक होने पर हिंदुओं का जीना दूभर होगा इस उद्देश्य से दोनों में मित्रता नहीं हो ऐसा प्रयत्न चल रहा था। हिन्दुओं का स्वतंत्र राज्य निर्माण करने की भी शहाजी की कल्पना थी। शहाजी राजा को परिवार की ओर देखने को फुरसत ही नहीं मिलती थी। परंतु जीजाबाई ने ससुराल के सभी लोगों का मन अपने शालीन व्यवहार से जीत लिया।

फिर भी एक शल्य उसके मन में था। शहाजी राजे निजामशाही के आधार स्तंभ तो लखूजी जाधव निजामशहा के। शत्रु की सेवा में मायके ससुपाल संबंधों में दरार बढ़ रही थी। ऐसी अवस्था में जीजा को पुत्र हुआ उसका नाम संभाजी रखा। निजामशहा ने लखूजी राजा को छलकपट से मारा इसकी चीढ़ आकर दोनों कुल एक हो गये परंतु मुस्लिमों की विश्वासघाती वृत्ति से वह दुखी हुई। यवनविरोधी हिन्दु शक्ति खड़ी करने की अनिवार्यता बार-बार उसके मन में प्रतीत होने लगी। गर्भस्थ शिशु पर भी उसके संस्कार होते रहें। ऐसी अवस्था में उसको शिवनेरी पर पुत्र हुआ दि. १९.२.१६३० फाल्गुन कृष्ण तृतीया शके १५५१।

शहाजी राजा का सहवास बाल शिवबा को कम ही मिलता था। मुस्लिम अत्याचारों से व्यथित होकर जीजाबाई ने शिवबा के मन में स्वतंत्रता की आकांक्षा निर्माण की। यवन हमारे देश के शत्रु हैं यह धीरे-धीरे उसके मन में बैठने लगा। विजापूर के दरबार में बादशाह को उसने प्रणाम नहीं किया। बंगलोर में शहाजी राजा के साथ कुछ दिन रहते समय जीजाबाई के ध्यान में आया कि विलासिता पूर्ण वातावरण में रहने से वह शिवबा को चाहे जैसे संस्कार नहीं दे सकेगी। अतः बंगलोर से पुणे में दादोजी कोंडदेव के संरक्षण में शिवबा के साथ जाकर रहने का निर्णय लिया। जीजाबाई की दृढ़ धारणा थी कि हिन्दुओं की दैन्यावस्था, गुलामी दूर करने के लिए मुझे अपने पुत्र को ही तैयार करना है। गर्भावस्था से लेकर यही विचार प्रबल था- वैसे ही संस्कार बाल शिवाजी को देने हेतु पुणे जैसा और कोई स्थान नहीं था। पति को छोड़कर इतने दूर रहना लोकापवाद था परंतु यह एक महान योजना का अंश है ऐसी स्पष्ट कल्पना होने के कारण वह लोकापवाद सहन करती रही।

प्रभावी गृहस्थी

मुझे ही परिस्थिति बदलने वाला पुत्र निर्माण करना है। दादोजी कोंडदेव व जीजाबाई ने शिवबा को युद्धकला के साथ-साथ रामायण, महाभारत के माध्यम से जीवन दृष्टि भी प्रदान की। दृढ़ धर्मनिष्ठा, महापुरुषों के प्रति श्रद्धा, सादगी, शुद्ध चारित्र्य, स्वाभिमान आदि गुणों का बीजारोपण भी अनौपचारिकता से हुआ। स्त्री माँ के समान है, उसका अपमान राष्ट्र का अपमान है- यह महत्व का संस्कार दिया। पद्मिनी की कथा बताते हुए यवनों के राज्य में स्त्री कितनी असुरक्षित है यह बताकर स्त्री का सम्मान तुम्हें ही पुनः प्रतिस्थापित करना है यह आकांक्षा जगायी।

कसबा पेठ के पुराने गणेश मंदिर का जीर्णोद्धार करके विघ्ननाशक देवता का आशीर्वाद प्राप्त किया और रहने के लिए लाल महल बनवाया। गुंडों को दंड दे कर धाक निर्माण किया। मावल क्षेत्र में चलने वाले आपसी झगड़े, बाल शिवबा और जीजाबाई के सामने लाने की पद्धति दादोजी कोंडदेव ने निर्माण की। प्रत्यक्ष न्यायदान का ही यह प्रशिक्षण था। रांझा के पाटील ने एक महिला का मान भंग किया। उसको शिवबा के सामने लाया गया। वह क्या न्याय देता है ? सबकी आँखें उस ओर लगी थी। उस पाटील के दर्जे का विचार न करते हुए शिवबा ने उसके हाथ पैर तोड़ने का दंड दिया। जीजा के संस्कार प्रभावी रहें। न्यायदान में किसी का पद, प्रतिष्ठा या रिश्तों का दबाव नहीं होना चाहिए। उस क्षेत्र में रहने वाले मावल बालकों का योजनापूर्वक उपयोग करके जीजाबाई ने उनको भी युद्ध का प्रशिक्षण दिया। जीजामाता उनको भी संस्कारक्षम कथाएं बताती थी। उनके गुणों का, शक्तिबुद्धि का उपयोग देश के शत्रु के साथ लड़ने के लिए सामूहिक रूप से करने की प्रेरणा उनके मन में जगायी। यह करते करते सामाजिक समरसता की घूंटी भी पिलायी! भविष्य में प्राणों की बाजी लगाने वाले साहसी सहकारी भी शिवबा को इस प्रक्रिया से प्राप्त हुए।

स्वराज्य संस्थापना की शपथ -

स्वराज्य संस्थापना की कल्पना मन में साकार करते करते ही एक दिन शिवबा अपने साथियों को रायरेश्वर स्वयंभू शिव मंदिर में ले गया और अपने रक्त का अभिषेक करते हुए प्रतिज्ञा की। यह देख कर सभी साथियों ने भी शिवबा का अनुकरण किया। स्वतंत्र, सार्वभौम हिन्दु साम्राज्य हो यह ईश्वर की इच्छा है यह उन्होंने तय किया। जीजामाता को इसका पता चला तब उसने उनको शाबासी दी। इससे प्रोत्साहित होकर तोरणा किले पर अपना अधिकार जमाकर स्वराज्य का श्रीगणेश किया।

एक बार शिवबा और जीजामाता चौसर पट खेल रहे थे। शिवबा ने पूछा, 'क्या शर्त रखना है विजय मिलने पर ?' जीजामाता के सामने वाले खिड़की से कोंढाणा किले पर लहराने वाला हरा झंडा दिख रहा था। विधर्मिओं की अन्यायी सत्ता की वह निशानी। जीजामाता ने तुरंत कहा 'मेरी विजय होने पर वह झंडा जो सामने फहर रहा है- उसका रंग बदलना चाहिए।' कितनी सूचक व प्रेरक शर्त। आज बेट द्वारका जाते समय श्रीकृष्ण मंदिर से पहले ही जो आँखों में भरता है वह भी अतिक्रमणकारियों का हरा झंडा। परंतु आज कोई जीजामाता नहीं जिसकी आंखों में वह चुभेगा।

सौभाग्य या स्वराज्य

शिवबा का प्रताप विजापुर दरबार तक पहुंचा तब उसको

रोक लगाने हेतु बादशहा ने शहाजी राजे को अकस्मात् बंदी बनाया और पैरों में बेड़ियां डालकर विजापुर के रास्ते पर घुमाया। शिवाजी शरण आयेगा, शहाजी के प्राणों की भीख मांगेगा, ऐसी उनकी अपेक्षा थी। स्वराज्य या सौभाग्य ऐसा प्रश्न खड़ा हुआ तब जीजामाता ने स्वराज्य को अग्रक्रम दिया और कांटों से कांटा निकलने की नीति अपनायी। दिल्ली के बादशाह से संधान बांध कर उनको दोस्ती का आश्वासन दे कर उनका दबाव विजापुर के बादशाह पर डाला।

शहाजी राजे का जेष्ठ पुत्र संभाजी भी विजापुर दरबार में था। अफझल खान के साथ १६५५ में वह मोर्चे पर गया था। ऐसा कहा जाता है कि अफझल खान ने कपट से उसकी हत्या की। जीजाबाई वह भूल नहीं पायी अतः अफझल खान को मिलने जाते समय शिवबा को याद दिलायी। यही वह अफझल खान है जिसने संभाजी को कपट से मारा है। अफझल खान इतना पराक्रमी है कि तुम उसके साथ संधि करो- मिलने मत जाओ ऐसा कायरता का संदेश नहीं दिया।

शुद्धिकरण की नींव रखी

अफझल खान के मन में शहाजी राजा के बारे में द्वेषभाव था। शिवबा को तंग करने के लिए उसने बजाजी निंबालकर को अचानक बंदी बनाया। गले में सांकल बांधकर हाथी के पैरों तले कुचलने की सजा दी। नाईक राजे पांढरे ने मध्यस्थी करके वह सजा रद्द करने के लिए यशस्वी प्रयत्न किये। परंतु खान ने एक शर्त रखी। बजाजी को मुसलमान बनना पड़ेगा। बजाजी ने भी बादशाह अपनी बेटी से उसका विवाह करायेगा यह शर्त लगायी। बादशाह ने वह तुरंत मान्य की। यह घटना फलटन का निंबालकर परिवार व शिवबा को बहुत ही अपमानास्पद लगी। परंतु हिन्दु धर्म में पुनः उसको लाने का कोई रास्ता नहीं था। एक बार नित्यक्रमानुसार जीजामाता शिखर शिंगणापुर में दर्शन करने गयी तब वहां बजाजी को बुलाया और जैसे ही उसने जीजामाता को देखा, उनके पैर पकड़ कर रोने लगा। तब जीजामाता ने उसको पुनः हिन्दु धर्म स्वीकारने के लिये कहा। बजाजी तो आने के लिए उत्सुक था ही। जीजामाता ने मंत्री मंडल को बुलाया- धर्मान्तरण कैसे गलत-जबरदस्ती से था, और अब तक यह मामला एक तरफा रहने के कारण हिन्दु समाज का कितना-संख्यात्मक-राष्ट्रात्मक नुकसान हुआ है, इसलिए इच्छा होने पर घर वापसी की नीति कैसी आवश्यक है यह समझाया-बजाजी पुनः हिन्दु बना। उसको समाज में प्रतिष्ठा दिलाने के लिए शिवबा की पुत्री सखुबाई का विवाह बजाजी के पुत्र के साथ करवाया। शुद्धिकरण की प्रक्रिया को प्रतिष्ठा देने के लिए जीजामाता ने यह एक अति साहसी, क्रांति की दिशा में कदम उठाया था।

इसका परिणाम बहुत ही दूरगामी हुआ। मुस्लिमों को भी धक्का लगा। हिन्दु समाज की मानसिकता बदली परंतु बाद के काल में शासनकर्ताओं को, समाज नेताओं को यह भान नहीं रहा और मस्तानी का पुत्र समशेर बहादर को मुस्लिम ही रहना पड़ा। जीजामाता का अभिनंदन इसलिए अधिक करना चाहिए की एक स्त्री ने यह राष्ट्र हित के लिए सामाजिक क्रांति करायी। स्वराज्य के मंत्री मंडल के कामों में शुद्धीकरण का एक स्वतंत्र विभाग बनाया। मेधातिथी तथा देवल ऋषि के ५०० साल बाद स्वधर्म में लौटने का मार्ग खुला करने वाली, अलौकिक दृष्टि वाली एक महिला थी यह अभिमानास्पद है। नेताजी पालकर, पिलाजी तथा बाजी देशपांडे को घर वापसी का उदाहरण प्रसिद्ध है। केवल हिन्दु धर्म में वापस लाने तक बात सीमित नहीं थी। परंतु धार्मिक अत्याचार करके धर्मान्तरण करने वालों को कठोर दंड शिव छत्रपति देते थे। गोवा के पोर्तुगीज लोगों ने धर्मांतरित हिन्दुओं को वापस देने को नकारने पर उनका शिरच्छेद किया। गवर्नर ने घबड़ाकर अपना आज्ञा पत्र वापस लिया। आज भारत के अनेक भागों में जबरदस्ती से धर्मांतरण और उत्पीड़न हो रहा है। काश ! स्वतंत्र भारत के सत्ताधारिओं ने शिवचरित्र पढ़ा होता।

स्वा. वीर सावरकर 'छः स्वर्णिम पृष्ठों' में लिखते हैं - 'मुस्लिम धर्म में गये हिन्दुओं को वापस लाना धर्म विरुद्ध है, इस धारणा के कारण मुस्लिमों को इस्लामी धर्मसत्ता के संरक्षण के लिये कुछ भी चिंता करने का कारण नहीं रहा। उनकी एकमेव चिंता थी की अपना धार्मिक आक्रमण लगातार बढ़ाकर हिन्दुओं के पास राजसत्ता आयी तो भी इस्लामी धर्म सत्ता की कक्षा भारत भर फैलाने के भगीरथ प्रयत्न चलाना है।'

जीजामाता के कार्य को और एक प्रशस्तीपत्र -

अफझलखान अतुलित बलशाली, हिन्दुद्वेष्टा सरदार था। उसको मारकर शिवाजी जीजामाता को मिलने राजगढ़ पर गये, तब उन्होंने कहा 'संभाजी का बदला लिया- पराक्रम की शर्थ की। मेरी आंखें तृप्त हुई। भगवान की कृपा से यह स्वर्ण दिन आया है।' अफझलखान वध से हिन्दुओं की शक्ति और मुस्लिमों के अंदर डर बढ़ गया।

सिद्दी जौहर ने पन्हालगढ़ को घेर लिया था। दूसरी ओर से शाहिस्ते खान आक्रमण कर रहा था। कोई समर्थ सेनापति नहीं था। फिर भी मराठी सेना ने वृकयुद्ध के सहारे छापे मारें। पन्हालगढ़ का घेरा इतना पक्का था कि चींटी भी घुस नहीं सकती थी। सिद्दीजोहर पर बाहर से आक्रमण करने से ठीक होगा ऐसा शिव छत्रपती सोच रहे थे। अपना पुत्र इस प्रकार फंस गया है यह देखकर जीजामाता स्वयं हाथ में शस्त्र लेकर सिद्ध हुई। नेताजी पालकर ने उनको रोका। शिवबा बहुत चतुराई से

पन्हालगढ़ से निकल गये। माँ बेटे की भेंट हुई उसका शब्दों में वर्णन करना असंभव है।

१६४२ से शहाजी राजे, जीजामाता की भेंट नहीं हुई थी। स्वयं को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए पति विरह के दावानल में झोंक कर उनकी तपस्या चल रही थी। १६६१ में शहाजी राजे महाराष्ट्र में आये। स्वराज्य प्राप्ति का जीजाबाई को सौंपा हुआ कार्य पुत्र के द्वारा सफल होता हुआ देखकर उनको बहुत आनंद हुआ। परंतु वापस जाने के लिए वे मजबूर थें। तीन वर्ष बाद उनकी अपघाती मृत्यु हुई। जीजाबाई सती होना चाहती थी परंतु शिवबा ने उनको रोका। स्वराज्य स्थापना के कार्य में उन्होंने अपरंपार संकट झेले थे। परंतु शहाजी राजे की मृत्यु का दुख जबरदस्त था। फिर भी खवास खान के आक्रमण का समाचार मिलते ही मंगलोर की ओर नौदल मोर्चे में व्यस्त शिवबा को उन्होंने पत्र लिख कर सचेत किया और उसका पराभव करने की सूचना दी। 'हमारी मनोकामना पूर्ण करने वाले सुपुत्र आप हैं' ऐसी आशा भी प्रकट की। विश्वासघातकी बाजी घोरपडे व सावंत उनको भी छोड़ना नहीं था। राज्यकर्ता में कितना स्वाभिमान व चतुरस्त्रता चाहिए इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। १६६५ में अपनी दिव्यचरिता मातोश्री की सुवर्णतुला शिवबा ने सूर्यग्रहण के समय की और वह सारा सुवर्ण दान कर दिया।

शिवाजी हर संकट के बाद अधिक बलशाली होता है यह देखकर औरंगजेब ने और एक चाल चलायी। जयसिंह और दिलेरखान को संयुक्त मोर्चे की आज्ञा दी। जयसिंह एक नैष्ठिक हिन्दु कहलाता था। वह दूसरे एक हिन्दु को- जो हिंदवी स्वराज्य स्थापना के लिए कृतसंकल्प था उसको नामोहरम करने में औरंगजेब का साथ दे रहा था। यह भारत का दुर्भाग्य।

आगरा जाते समय शिवबा ने एक राज प्रतिनिधि मंडल नियुक्त कर उसका नेतृत्व जीजामाता को दिया। आगरा से औरंगजेब की कैद से शिवबा कैसे बाहर निकले सब जानते हैं परंतु वे जब वापस आकर माँ को मिले तब जीजामाता को कितना आनंद हुआ होगा। आगरा में शेर की गुफा में जाना, प्राण बचाकर आना यह योजना अद्‌भुत थी उसमें जीजामाता भी सहभागी थी।

प्रथम विवाह कोंडाणा का

जीजामाता की स्वराज्य प्रेरणा कितनी बलवती थी यह तानाजी मालुसरे कोंडाणा लेने के लिए अपने पुत्र का विवाह छोड़कर जाते हैं इससे सिद्ध होता है। परंतु धीरे-धीरे जीजा माता ने अपना निवास पाचाड में किया। राज्यव्यवस्था से अपना मन हटाकर वे ईश्वरभक्ति में समय व्यतीत करने लगी। अब उनका पुत्र सक्षमता से राज्य संभाल रहा था, सपना साकार हुआ था।

स्वप्न हुआ साकार

अब एक ही इच्छा थी ऐसे दिग्विजयी पुत्र का राज्याभिषेक देखने की। वह भी समारोह अत्यंत गरिमामय रीति से सम्पन्न हुआ। जीजामाता का जीवन कृतार्थ हुआ। इसी दिन के लिये जीवन भर उन्होंने यह प्रयास जारी रखा था। वह उनके बेटे का राज्याभिषेक नहीं था। हिन्दु अस्मिता सिंहासनारूढ़ हो रही थी। हिन्दु शब्द उच्चारने के लिए थर्राने वाले हिन्दु का स्वत्व, स्वाभिमान आज गर्व से सिंहासन पर अभिषिक्त होने वाला था। यह हो ऐसी ईश्वर की इच्छा थी - क्योंकि यह ईश्वरीय देश है। ईश्वरी इच्छापूर्ति का साधन बनने की कृतकृत्यता उसमें थी। यह समारोह देखने के बाद अपना जीवित कार्य पूर्ण हो गया है, यह शरीर छोड़ना चाहिए ऐसा उन्होंने सोचा और केवल २ सप्ताह के अंदर सचमुच वह चल बसी। इतने साल अत्यंत ममता से पाला हुआ अपना पुत्र स्वराज्य जनता को सौंपकर उन्होंने शरीर का मोह छोड़ दिया।

जय जिजा

घोष आज, घोष आज, जय जिजा करे
जय जिजा करे
नभोवितान व्याप्त कर निनाद फिर भरे
निनाद फिर भरे
जय जिजा, जय जिजा, जय जिजा ।।धृ।।

युगंधर प्रभू शिवा की वीर जननि तू
वीर शहाजी की वीर धर्मपत्नि तू
जय जिजा सुभावनी तेजदीप्ति तू
तेजदीप्ति तू, तेजदीप्ति तू
जय जिजा, जय जिजा,
जय जिजा ।।१।।

राष्ट्र अस्मिता जगाति दिव्य स्फूर्ति तू
कृष्ण घनघटा में दामिनी चमकति तू
दास्य अंधकार में जलाई ज्योति तू
दीप ज्योति तू, दीप ज्योति तू
जय जिजा, जय जिजा,
जय जिजा ।।२।।

शुभंकरी शिवाइ की दिव्य शक्ति तू
स्नेह, त्याग, शौर्य, तेज धैर्यमूर्ति तू
स्वराज्य शैल पर चढ़ी ध्वजा सुकीर्ति तू
ध्वजा सुकीर्ति तू, ध्वजा सुकीर्ति तू
जय जिजा, जय जिजा, जय जिजा ।।३।।

कर्तृत्व का महामेरु देवी अहल्याबाई होलकर

राष्ट्र सेविका समिति ने प्रारंभकाल से ही देवी अहल्याबाई का कर्तृव्य आदर्श रूप में माना है। गंगाजल के समान शुद्ध, पुण्यश्लोक, देवी, माताश्री आदि श्रेष्ठ उपाधियों से गौरवान्वित देवी अहल्याबाई अपने इतिहास का एक सुवर्ण पृष्ठ है। देवी अहल्याबाई की अपने जनसामान्यों की श्रद्धा, आदर तथा अपनेपन की भावनाओं को प्रतिबिंबित करने वाली एक लोककथा बतायी जाती है।

लोकमाता अहल्याबाई - वर्षा ऋतु! नर्मदा उफनती हुई बह रही थी। उसकी लहरें होलकर जी के राजगृह की दीवारों से टकरा रही थी। गांजा की नशे में धुत कुछ लोग आपस में बातें कर रहे थे। अचानक उन लोगों में से एक उठकर अपने तलुओं से दीवार को सहारा देता हुआ खड़ा हो गया। अन्य साथी भी उसके बुलाने पर हाथों से दीवार को सहारा देने लगे। वहां खड़े अन्य लोगों ने जब पूछा कि वे इस प्रकार क्यों खड़े हैं, तब उत्तर आया "क्या, इतना भी नहीं समझते हो ? अरे, अपनी माताश्री अंदर है। आओ, तुम लोग भी आ कर माँ को बचाने के काम में जुट जाओ।"

नशे में बेहोश व्यक्ति भी अहल्याबाई की सुरक्षा के बारे में कितना सजग है यह देखकर ऐतिहासिक सत्यासत्यता के बजाय जनमानस का दर्शन होता है।

व्यक्तिगत जीवन - देवी अहल्याबाई का जन्म इ. १७२५ में वर्तमान अहमदनगर जिले के जामखेड़ तहसील के चौंड़ी नामक छोटे से ग्राम में हुआ। माणकोजी शिंदे की यह कन्या १२ साल की हुई। एक बार पेशवे महाराज ने शिव मंदिर में शिवजी की पूजा में लीन अहल्या को देखा। उन्होंने मल्हार राव से इस बालिका को अपनी पुत्रवधू बनाने को कहा। और २० मई १७३७ इस शुभ दिन अहल्याबाई का विवाह खंडेराव के साथ सम्पन्न हुआ। वैभवसम्पन्न होलकर कुल में गुणसम्पन्न अहल्याबाई ने पदार्पण किया। पति के प्रथम दर्शन होने पर ही अहल्याबाई समझ चुकी कि वह जितनी विरक्त और सात्विक है, उतना वह सुखलोलुप और रंगीन प्रकृति का है। ऐसी ही मानसिक अवस्था में वह इ. १७४५ में पुत्र मालेराव एवं इ. १७४८ में कन्या मुक्ताबाई की माता बनी। पुत्र की दुराचारी वृत्ति से व्यथित सुभेदार मल्हारराव ने अहल्याबाई की योग्यता को परखते हुए उन पर कारोबार का अधिकाधिक दायित्व सौंपना शुरू किया।

अग्निपरीक्षा के क्षण - दि. २४ मार्च १७५४, कुंभेरी की लड़ाई में खंडेराव की मृत्यु हुई। मल्हारराव के आग्रह पर अहल्याबाई ने सती होने का निश्चय बदलकर प्रजाजनों की माता बनना श्रेष्ठ माना। अहल्याबाई राजनीति का एक एक पाठ मल्हार राव से ग्रहण कर पति के चिरवियोग का दुःख कम करने का प्रयास कर रही थी, तभी इ. १७६१ में उनको माँ की ममता से संभालने वाली उनकी सास गौतमाबाई का स्वर्गवास हुआ। और तीन साल के अंदर ही इ. १७६४ में उनके गुरु, मार्गदर्शक, पितृसदृश्य आधारस्थान मल्हारराव की मृत्यु हुई।

अब शासन का सम्पूर्ण दायित्व अहल्याबाई पर आया। उनका पुत्र मालेराव अपने दादाजी जैसा दूरदर्शी, राजनीति कुशल नहीं था। राजकार्य से भी उसे अधिक रुचि थी जंगली जानवरों का शिकार खेलने में। पूजापाठ के लिए आने वाले पंडितों के जूतों में तथा दान पात्रों में बिच्छू इ. रखना और उनके दंश से पीड़ित पंडितों की चीखें सुनने में उसे आसुरी आनंद मिलता था। इन हरकतों को देखकर तथा एक दर्जी के दुर्वर्तन से आशंकित मालेराव ने क्रूरता से की हुआ हत्या से व्यथित अहल्याबाई ने अपने पुत्र को महेश्वर में स्थानबद्ध किया। वहाँ पर ही उसकी मृत्यु हुई।

देवी अहल्याबाई की कन्या मुक्ताबाई का पति यशवंत फणसे, एक होनहार युवक था। मुक्ताबाई का पुत्र जो जन्म से ही कुछ दुर्बल था, उसकी मृत्यु हुई। उनकी उत्तराधिकारी बनाने का देवी अहल्याबाई का सपना भी टूट गया। यशवंतराव इस सदमे

को सह नहीं सका, उससे वे अस्वस्थ हो गये। तीन साल के अंदर ही वह भी अपने पुत्र के रास्ते चल पड़े। मुक्ताबाई ने पति के साथ सती होने का निश्चय किया। अहल्याबाई अपनी कन्या को इस निश्चय से परावृत्त नहीं कर पायी। देवी तीन दिनों तक अपने कक्ष से बाहर नहीं आयी। नियति को अपनी विजय का आभास हुआ। परंतु लोकमाता अपनी भूमिका नहीं भूल सकी। अहल्याबाई राजकर्तव्य का कठोरतापूर्वक पालन करते हुए मनः शांति एवं आत्मिक बल के लिए धर्मकृत्य में समय लगाती रही।

सदैव प्रतिकूल परिस्थितियों और दुर्भाग्य से संघर्ष करने के कारण शरीर क्षीण होता गया। दि. १३ अगस्त, १७९५ श्रावण (भाद्रपद) कृष्ण चतुर्दशी का दिन। गंगाजल सम निर्मल जीवन प्रवाह, अखंड शिवनाम-स्मरण करते हुए शिवप्रवाह में विलीन हुआ।

श्रेष्ठ प्रशासक - देवी अहल्याबाई ने संस्थान का कार्यभार संभाला। तब अनेक संकट उनके सामने थे। राज्य का पुराना अधिकारी गंगाधर चंद्रचूड राघोबादादा के सहयोग से बड़ी सेना लेकर इंदौर आ धमके। अहल्याबाई ने अपनी सेना के महिला पथक को सतर्क किया और राघोबा को कहा, "मेरे पुरखों ने अपने परिश्रम और पराक्रम से यह राज्य प्राप्त किया है। आक्रमण करने वालों को मूंह तोड़ उत्तर दिया जायेगा।" अहल्याबाई ने पत्र भेजा कि "मेरी महिला सेना पर आपने विजय पाई तो भी आपको कोई बड़प्पन नहीं मिलेगा। परंतु उल्टा हुआ तो आपकी ही हँसी उड़ाई जाएगी। इसका विचार करके ही आप युद्ध के लिए आगे बढ़े।"

राघोबा दादा हालात को समझ गये उन्होंने देवी अहल्याबाई को संदेश भेजा - "मैं आपसे लड़ने नहीं अपितु आपके इकलौते पुत्र की मृत्यु पर शोक प्रकट करने आया हूं।" अहल्याबाई ने प्रत्युत्तर भेजा। "शोक प्रकट करने के लिए इतनी बड़ी सेना का क्या काम ? आप अकेले पधारे, घर आपका है, आपका स्वागत है" राघोबा बाजी हार गये। पालखी में बैठकर आये। इस तरह से देवी ने राज्य को युद्ध के संकट से बचाया।

नारो गणेश नाम के अधिकारी की प्रामाणिकता पर देवी अहल्याबाई को संदेह था। इसलिए उसे बंदी बनाया। तुकोजी होलकर ने देवी अहल्याबाई को पूछे बिना ही उसे रिहा कर दिया और पूर्व पद पर बिठा दिया। लेकिन अहल्याबाई अपने प्रशासन में यह दखलअंदाजी बरदाश्त नहीं करेगी इस भय से वह बेचैन हुआ। इसलिए महादजी शिंदे के पास जाकर अहल्याबाई को समझाने की प्रार्थना की। महादजी ने कहा, "श्रीमंत पेशवे, मुगल, भोसले इनमें से किसी को कुछ समझाना है तो समझा सकता हूं। किन्तु अहल्याबाई के बारे में यह असंभव है। क्योंकि वह बहुत सोच समझकर निर्णय लेती है अतः उसे बदलना कठिन है।"

देवी अहल्याबाई के प्रशासन को दिया गया यह एक मौलिक प्रमाणपत्र ही है।

सेनापति तुकोजी, सेना के व्यय के लिए धन की माँग करता था। इसके बारे में सेना के खर्च के लिए राज्य कोष पर निर्भर नहीं रहना चाहिए।" ऐसी स्पष्ट विचार धारा थी। आवश्यक मात्रा में धन जरूर देती थी परंतु पहले दिये गये धन का पूरा हिसाब प्राप्त होने के उपरान्त ही अगले किश्त देने की उनकी नीति थी।

वीरता का परिचय - देवी अहल्याबाई ने बार-बार अपने अधिकारी नहीं बदले परंतु किसी का एकाधिकार न हो इसके बारे में भी वह हमेशा सतर्क रहती थी। सेना में भर्ती के बारे में भी देवी अहल्याबाई स्वयं ध्यान देती थी। सेना के प्रशिक्षण के लिए जी.पी. बॉयड नाम के अमरिकन अधिकारी की नियुक्ति की। कर्नल बॉयड इंदौर में रहकर संस्थान की सेना को प्रामाणिकता से प्रशिक्षित करने के लिए लिखित रूप से वचनबद्ध था। अपराधी चाहे कितना भी बड़ा हो, उसकी गलती माफ नहीं की जाती थी। निर्धारित राशि से अधिक धन किसी से नहीं लिया जाता था। देवी अहल्याबाई ने बार-बार युद्ध नहीं किया। एक बार चंद्रावत से युद्ध उसके होलकर शासन से विद्रोह के कारण हुआ। देवी अहल्याबाई को सामान्य महिला समझने में चंद्रावत ने बड़ी भूल की। अहल्याबाई ने सेनानी शरीफे भाई को बड़ी सेना के साथ भेजा और स्वयं युद्ध का संचालन किया। होलकर सेना की विजय हुई। सौभागय सिंह को तोप के मुंह से बांध कर उड़ा दिया। उससे सारे विद्रोहियों के छक्के छूटे और वे देवी की शरण में आयें। स्वभावतः दयालु होने के कारण अहल्याबाई ने सभी को क्षमा की। इस युद्ध के समय ६३ वर्ष की आयु में महेश्वर से रामपुर तक की लम्बी यात्रा करनी पड़ी। नाना फडणवीस को यह मालूम होने पर उन्होंने कहा "मैंने अभी तक देवी अहल्या के धार्मिक कार्यों की ही प्रशंसा सुनी थी, परंतु उसकी वीरता का परिचय आज प्राप्त हुआ है।"

न्याय व्यवस्था - देवी अहल्याबाई की निष्पक्ष न्याय व्यवस्था निश्चित ही अनुकरणीय एवं अभिमानास्पद है। महत्पुर के राजपूतों ने अपनी शिकायत प्रस्तुत करने पर देवी अहल्याबाई ने संबंधित कर्मचारियों को बुलाया और ११ सूत्रीय पत्रक दिया, जो उनकी न्यायबुद्धि का द्योतक है।

रघुनाथ सिंह निवाड़ी नामक एक रसोइया के मरने के बाद वह निपुत्रिक था ऐसे समझकर उसकी ४२६ रु. ३ आने ६ पाई की संपत्ति राजकोष में जमा कर दी गई। परंतु उनका एक पुत्र है ऐसा पता चलने पर वह राशि तुरंत उस पुत्र को वापस देने का आदेश दिया।

उनके राज्य में न्याय पाना बहुत सरल, सुगम था। उनकी न्यायपद्धति पर नागरिकों की इतनी श्रद्धा थी कि उनकी आज्ञा न मानना वे पाप समझते थे। श्रीमंत पेशवे द्वारा भी किसी पर अन्याय हुआ है ऐसा मालूम होने पर देवी अहल्याबाई उनसे स्वयं बात करके न्याय दिलवा देती थी।

लुटेरे भील बने शूर सैनिक - उन दिनों भीलों का उपद्रव बढ़ा था। उनको कुछ सामंतों का आश्रय था। देवी अहल्याबाई नें उनके मुखिया को दरबार में बुलाया और लूटमार करके यात्रियों को परेशान करने का कारण पूछा- ''सीधे रास्ते से जीने का कोई साधन न होने के कारण यात्रियों को लूटना पड़ता है।'' यह जबाव सुनकर उन्हें शस्त्र, वेतन और इज्जत देने की इच्छा देवी अहल्याबाई ने प्रकट की और भीलों पर यात्रियों की सुरक्षा की जिम्मेदारी सौंपी गई। यात्रियों से गुजरते समय एक कौड़ी कर के रूप में लेने की व्यवस्था शुरू की गयी, जो ''भील कौड़ी'' नाम से प्रसिद्ध है।

डाक व्यवस्था - इसवी १७८३ में अहल्याबाई ने महेश्वर से पुणे तक डाक व्यवस्था चलाने का दायित्व पदमसी नेन्सी नामक कंपनी को सौंपा था। डाक लाने-ले जाने के लिए २० जोड़ियां थी। डाक पहुंचने में विलंब होने पर प्रतिदिन उत्तरोत्तर देय राशि में कटौती होती थी। कुछ हानि होने पर कंपनी से क्षतिपूर्ति ली जाती थी।

अपमानों का चिन्ह मिटाया - तीर्थयात्रा करते समय देवी अहल्याबाई ने जब भग्न मंदिरों के अवशेष देखे तो उनका मन पीड़ा से व्यथित हुआ। इन मंदिरों में फिर से पूजन, धार्मिक ग्रंथों का पठन हो इसलिए योजना बनाई। राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से बद्रीनारायण से लेकर रामेश्वर तक व द्वारका से लेकर भुवनेश्वर तक अनेक मंदिरों का पुनःर्निर्माण किया। धर्मस्थल शासनावलंबी न हो, स्वावलंबी हो इसलिए उन्होंने उनको भूखंड दान दिये। इस प्रकार के धार्मिक कार्य के लिए सम्पूर्ण व्यय देवी अहल्याबाई ने अपनी व्यक्तिगत संपत्ति से ही किया। व्यक्तिगत संपत्ति का हिसाब भी वह राजकोष के हिसाब के समान रखती थी। व्यक्तिगत धर्म से अधिक महत्व राष्ट्र धर्म को देती थी। देवी अहल्याबाई ने धर्म क्षेत्र को राजाश्रय दिया परंतु राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया। राजनीतिक प्रदेश भिन्न होंगे परंतु उनको सांस्कृतिक एकात्म रूप दिया देवी अहल्याबाई ने। उनके मानव धर्म का लाभ पशु-पक्षियों को भी मिला। अनेक विद्वान अभ्यासकों को राजाश्रय दिया। गंगाजल की कावड़ निर्धारित स्थान पर निर्धारित समय पर पहुंचाने की व्यवस्था स्थायी रूप से की है। बुनकर उद्योग को प्रोत्साहन स्वरूप अन्न, वस्त्र, निवास, उद्योग के लिए धन एवं तैयार कपड़े बेचने की व्यवस्था की। महेश्वर को राजधानी बनाते समय वहां के ग्रामजनों का पूर्ण सहभाग लिया। अपनी राजधानी सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध बनाने के प्रयास किये।

राजकीय व धार्मिक दृष्टि से देवी अहल्याबाई का जीवन बेजोड़ था।

हे कर्मयोगिनी राजयोगिनी, जयतु अहल्यामाता जय-जयतु अहल्यामाता।
युगों युगों तक अमर रहेगी, यशकीर्ति की गाथा ।।धृ।।

दीप ज्योतिसम तिल तिल जलकर। स्वार्थभावना परे त्यागकर
प्रजावत्सला सतत प्रवाहित। उज्वल जीवनसरिता ।।१।।

कर्म भविष्य की प्रबल धारणा। कभी किसी से की न याचना।
यज्ञरूप जीवन ज्वाला में। प्रखर हुई तब आभा ।।२।।

जीवन भर स्वजनों का सह दुःख। कर्तव्यों से हुयी न परमुख ।
नीलकंठ सम गरल पान कर। क्षण क्षण जीवन बीता।।३।।

अन्नछत्र धर्मार्थ चलाएं। मंदिर, घाट कुए खुदवायें
परार्थसुख जीवन हो सार्थक, दिव्य-चरित्र की गाथा।।४।।

अध्ययन हेतु पुस्तकें

१. भारतीय वीरांगना - महालचंद्र बायड
२. अहल्या बाई होलकर - गोविन्द दास
३. अहल्या बाई होलकर - गोविदराम केशवराम जोशी
४. अहिल्या बाई - पं. हीरालाल शर्मा नेशनल बुक ट्रस्ट
५. कर्म योगिनी - अहल्याबाई - सेविका प्रकाशन

नेतृत्व की तेजस्वी ज्योति - रानी लक्ष्मीबाई

१८५७ के स्वतंत्रता संग्राम को अपने नेतृत्व से नया आयाम देने वाली साहसी, शूर युवती का चरित्र नित्य प्रेरणा देने वाला है। उनकी तेजस्विता, स्वदेशाभिमान, स्वातंत्र्य प्रेम अभूतपूर्व था।

रानी लक्ष्मीबाई का जन्म वाराणसी में कार्तिक कृ. १४ दि. १९ नवम्बर १८३५ को हुआ। मोरोपंत तांबे तथा भागीरथी की यह कन्यका मनकर्णिका मनु-छबेली नाम से परिचित थी। ब्रह्मावर्त में दूसरे बाजीराव पेशवा के आश्रय से तांबे परिवार रहता था। बाजीराव के पुत्र रावसाहब और नानासाहब के साथ मनु की भी शिक्षा प्रारंभ हुई। घुड़सवारी, मैदानी खेलों के साथ-साथ मनु युद्धकला में भी प्रवीण हुई। पेशवाओं के सान्निध्य से उसके मन में स्वतंत्रता का स्फुल्लिंग सुलग उठा। उसकी ही प्रलयंकर ज्वालाएँ १८५७ में प्रकट हुईं।

तेजस्वी बाल्यकाल - मनु के बाल जीवन की एक दो घटनाएं प्रसिद्ध हैं- वह छोटी थी तब उसको गंगा माता के किनारे जाकर बैठने की आदत थी। ऐसे ही एक दिन घाट पर नदी प्रवाह में पैर डालकर वह बैठी थी तब २-४ अंग्रेज सिपाही आयें और घाटों पर बैठने वाले सभी को हटाने लगे और 'मॅडम आ रही हैं उठो, हटो' का शोर मचा। सब लोग डर के मारे भागने लगे पर मनु वैसी ही बैठी रही। बार-बार बताने पर यह छोटी सी बालिका मान नहीं रही है ऐसा देखकर सिपाही गुस्सा हो गये। छोटी सी मनु निर्भयता से उनको पूछती है 'कौन आ रहा है - सबको क्यों हटा रहे हो ?' जब पता चला की कोई अंग्रेज अधिकारी की पत्नी आ रही है तो मनु ने कहा- 'वह कौन होती है हमको हटाने वाली। यह गंगामैय्या हमारी है। हम नहीं हटेंगे।' वे जबरदस्ती से उठाने लगे तब वह चिल्ला चिल्ला कर प्रतिकार करती रही।

नाना साहब और राव साहब, घुड़सवारी का अभ्यास कर रहे थे तब एक बार घोड़ा बेकाबू हो गया और नानासाहब गिर गये। मनु ने यह देखा तब वह जोर से हंस पड़ी। नानासाहब को बहुत गुस्सा आया। नोकर उनको उठाकर ले गया। दूसरे दिन मनु उनको देखने गई। नानासाहब का गुस्सा उतरा नहीं था। मनु को आती हुई देखकर उन्होंने दीवार की ओर मुँह फेर लिया। मनु के पूछने पर उन्होंने बताया 'हम गिर गये और तुम हंस रही थी ? अगर तुम गिर जाती तो ?' मनु अब तक मजाकी मानसिकता मे थी अब गंभीर होकर बोली- 'एक तो मैं घोड़े पर ऐसी पकड़ रखूंगी की घोड़ा बेकाबू होकर मैं कभी गिरूंगी नहीं। और यदा कदा गिरुंगी तब रोऊंगी नहीं। जो कुछ होगा धैर्य से सहन करुंगी।' मनु की नियति ही मानो बोल रही थी।

राज परिवार के होने के कारण नाना साहब रावसाहब हाथी पर बैठ रहे थे। छोटी मनु के मन में भी इच्छा हुई हाथी पर बैठने की तब उसको कहा गया 'तुम तो हमारे आश्रित की बेटी हो। हाथी पर बैठने की इच्छा कर रही हो। हाथी पर राजवंश के लोग ही बैठते हैं।' मनु को घोर अपमान महसूस हुआ। उसने कहा- आप भी देखेंगे कि मेरे दरवाजे पर ४-४ हाथी झूलेंगे। और सचमुच मनु का विवाह झांसी के राजा गंगाधर पंत नेवालकर से हुआ। हाथी पर बैठकर उसने रानी की शान से झांसी में प्रवेश किया। तुरंत उसने एक हाथी बहुत सजाधजाकर ब्रह्मावर्त में भेंट रूप भेज दिया। ऐसी थी यह मानिनी।

नेवालकर (पूर्व इतिहास) - गंगाधरपंत के पूर्वज रघुनाथराव इ.स. १७७० में झांसी के सूबेदार बने। उनके भाई शिवराम भाऊ १७७१ में सूबेदार बने। बसई समझौते के पश्चात् १८०४ में अंग्रेज और शिवराम भाऊ में समझौता हुआ उसके अनुसार झांसी का राज्य वंशपरम्परागत शिवरामभाऊ के वंशजों को ही मिलेगा ऐसा तय हुआ। शिवराम भाऊ के पुत्र गंगाधर राव इ.स. १८४२ में झांसी के अधिपति बने। ३० लाख रु. झांसी की आमदनी थी, उसमें से २ लाख रु. आमदनी वाला हिस्सा अंग्रेजों ने झांसी में व्यवस्था हेतु रखी अपनी सेना की व्यवस्था के लिये रख लिया।

वैभव सम्पन्नता - गंगाधर राव के राज्य में शासन तथा न्याय की उत्तम व्यवस्था थी। ठाकुर, बुंदेले का विद्रोह उन्होंने दबाया। परंतु वे रसिक, कलाप्रेमी थे। कलाकारों को आश्रय देते थे। उनका

महालक्ष्मी का मंदिर जगमगाता था। उनके पास ९२ हाथी, १०० घोड़े, ५००० घुड़सवार व ५००० पदाति थे। स्थान-स्थान पर बगीचे, तालाब, नाट्यगृह थे।

ऐसे सुंदर, वैभव सम्पन्न राज्य की स्वामिनी मनु बनी। गंगाधर राव को पुत्र नहीं था, पत्नी का स्वर्गवास हुआ था। कला सक्त राजा को संभालने वाली रानी आयेगी तो वह झांसी को बचायेगी। अंग्रेजों की आंखे इस राज्य पर गड़ी थी। मनु जैसी दृढ़निश्चयी, देशप्रेमी युवती उनसे टक्कर ले सकती है इस राजनीतिक उद्देश्य से यह विवाह हुआ ऐसा माना जाता है।

१८४२ में गंगाधरपंत और मनु का विवाह हुआ। दोनों की आयु में काफी अंतर था। १८५१ में लक्ष्मीबाई को पुत्र हुआ परंतु वह अल्पायु रहा। इस आघात से गंगाधरराव का स्वास्थ्य गिरने लगा। राजवैद्यों की दवाईयां व रानी लक्ष्मीबाई की सेवा का विशेष उपयोग नहीं हो रहा था। अतः एक बालक गोद लेने का निर्णय किया- गोद लिये हुए बालक का नाम दामोदर रखा गया। इस समारोह में झांसी राज्य के पॉलीटिकल एजेंट एलिस, सेना का प्रमुख अधिकारी मेजर मार्टिन, मोरोपंत आदि लोग उपस्थित थे। कंपनी सरकार को दत्तक विधान की स्वीकृति देने हेतु आवेदन पत्र गंगाधर राव ने भेजा। समय-समय पर अंग्रेजों को दी हुई सहायता एवं उनके साथ किये हुए संधि की ९वी शर्त (झांसी का राज्य वंश परम्परा से नेवालकरों के पास रहेगा) का स्मरण दिलाया गया।

झांसी अनाथ हुई - आखिर गंगाधरराव का शरीर दि. २० नवम्बर १८५३ को शांत हुआ। झांसी शहर शोक सागर में डूब गया। लक्ष्मीबाई पर तो कुठाराघात हुआ। मेजर मार्टिन और एलिस ने सांत्वना पत्र भेजा परंतु उसी समय उन्होंने राज्य का खजाना मुहरबंद किया। शिंदे की ६वीं टुकड़ी को उसके संरक्षण का दायित्व दिया। श्री गंगाधरराव के पत्र का उत्तर नहीं आने पर लक्ष्मीबाई ने १६ फरवरी १८५४ को गवर्नर जनरल के पास पुनः आवेदन पत्र भेजा।

विस्तारवादी नीति - लॉर्ड डलहौजी की नीति थी कि किसी का भी दत्तक विधान मंजूर नहीं करना और वह राज्य कंपनी राज्य से जोड़ना तथा अंग्रेजी राज्य का विस्तार करना। अतः रानी लक्ष्मीबाई के पत्र का उत्तर एक ही आने वाला था- आया भी - 'झांसी का राज्य अंग्रेजी राज्य में विलीन करो।' दत्तक विधान को मान्यता नहीं दे सकते।' एलिस यह पत्र लेकर रानी लक्ष्मीबाई के दरबार में पहुंचा तब सिंहनी जैसी गरज कर वह बोली- मैं मेरी झांसी नहीं दूंगी। एलिस को ऐसी अपेक्षा नहीं थी। अपनी भूमि, अपना राज्य विदेशियों को सौंपकर गुलाम बनना स्वीकार करना रानी के लिए असंभव था। परंतु अंग्रेज बलशाली थे। उनकी हड़पनीति के शिकार झांसी जैसे, पंजाब, सतारा नागपुर अयोध्या आदि अनेक राज्य थे।

महारानी लक्ष्मीबाई ने राजनीति के तहत अपना गुस्सा पी लिया और प्रतिशोध का अवसर खोजती रही। झांसी आते ही युद्धकाल का अपना शौक पति को बताकर महिला पथक तैयार करवाये थे। उसने कभी किसी गहने की, वस्त्र की चाह नहीं रखी इसका गंगाधरराव को आश्चर्य लगता था। उन दिनों में महिलाओं का घर से बाहर मैदान में आना समाज को मान्य नहीं था परंतु रानी लक्ष्मीबाई ने अपना शौक पूरा करने के लिए पति को मना लिया। उसका अब उपयोग होगा यह सोचकर रानी ने अपने व्यक्तिगत आपत्ति के कारण शोक में न डुबते हुए महिला सैनिकों का अभ्यास चलता रहे यह देखा।

विस्फोट की ज्वालाएं - ७ मार्च १८५४ को झांसी राज्य की स्वतंत्रता पूरी तरह समाप्त हुई। अंग्रेजों की सत्ता आकर १०० साल पूरे होने वाले थे। अंग्रेजों के अत्याचार बढ़ते ही जा रहे थे। अपनी भारत माता को धीरे-धीरे गुलामी के शिकंजे में फंसाने का उनका कुटिल षड्यंत्र सभीके ध्यान में आया था। विद्रोह की ज्वाला भीतर भीतर सुलग रही थी। ३१ मई सार्वत्रिक विद्रोह एक साथ करने की योजना में अनेक लोग सम्मिलित हो रहे थे। रोटी और कमलपुष्प का संकेत चिन्ह था। परंतु अचानक १० मई १८५७ को विस्फोट हुआ। मेरठ की छावनी में बंदूक की गोलियों को गाय या सुअर की चर्बी लगाई जाती है, वह मुंह से खोलना पड़ता था यह धर्मविरुद्ध आचरण का पाप हम कर रहे हैं ऐसी भावना फैलती गयी। सैनिक जब बाजार में जाते थे तब महिलाएं उनको चिढ़ाती थी या कभी चूड़ियां भी भेंट करती थी। चरबी की घटना के कारण छावनी में क्षोभ फैला व १० मई को मंगल पांडे ने विद्रोह कर दिया- उसको तोप से उड़ाया गया - अन्य ९० सैनिकों को १० साल के लिये कारावास में भेजा गया। इस घटना ने तो आग में घी डाल दिया। अंग्रेज अधिकारियों की हत्या करना, उनके बंगलों को आग लगाना, कारागृह तोड़ना आदि का सिलसिला चल पड़ा। सैनिक अपनी छावनी छोड़कर दूसरी छावनियों में जा जाकर वहां विद्रोह की ज्वाला जलाने में लगे। ४ जून १८५७ को झांसी सेना की ७वीं टुकड़ी ने झांसी के किले में प्रवेश कर अपना अधिकार जमा लिया। गोरे अधिकारी गोलियों से भूने जाने लगे। उन्होंने किले में आश्रय लिया। क्रांतिकारी वहां भी पहुंचे। वहां भी गोलियाँ चली। अंग्रेजों ने संधि का निशान फहराया। किला क्रांतिकारियों के हाथ में आया। अंग्रेज बच्चों, महिलाओं को रानी-साहिबा ने अपने घर में आश्रय दिया। क्रांतिकारियों की घोषणा थी- 'खुल्क खुदा का, मुल्क बादशाह का, अमल रानी साहिबा का।' ८ जून को किला रानी को सौंप कर क्रांतिकारी दिल्ली की ओर बढ़े।

८ जून १८५७ से ४ अप्रैल १८५८ तक रानी का अत्यंत गौरवशाली कार्यकाल रहा। परंतु उनको घर के ही शत्रुओं से पहले निपटना पड़ा। सदाशिवराव पारोलकर झांसी के राज्य के उत्तराधिकारी के नाते खड़े हुए और करेरा का किला अधिकार में

लिया। रानी लक्ष्मीबाई ने सेना की सहायता से वह किला जीत लिया। ओरछा के दीवान नत्थे खां का आक्रमण भी रानी ने सफलता पूर्वक लौटाया- उससे युद्ध का खर्चा वसूल किया।

तेजस्वी व्यक्तित्व की धनी - रानी लक्ष्मीबाई अत्यंत तेजस्विनी थी। दरबार में वह अत्यंत आत्मविश्वास से शुभ्र वेश धारण कर या पुरुषी वेश पहन कर फेटा बांधकर आती थी। कुशल रीति से न्याय करना, गुणवन्तों का सम्मान करना, कर्मचारियों से भी सम्मानपूर्वक व्यवहार करना, निर्भयता, धैर्यशीलता, साहस ये उनके कुछ विशेष गुण थे। शूरवीर सैनिकों को भी उदार मन से सहाय्य करती थी। अपने सैनिकों के मन में उसके बारे में इतना आदर, श्रद्धा थी कि वे उसको माँ मानते थे। ऐसा कहा जाता है कि युद्ध में घायल सैनिकों की वह स्वयं पूछताछ करके मलमपट्टी करती थी। बहुत घायल या मरणोन्मुख सैनिकों को उनकी अंतिम इच्छा पूछती तब किसी ने कुछ मांगा नहीं केवल उनके मातृस्पर्श की अपेक्षा की। उनके मन में विश्वास था कि हमारी रानी हमारे परिवार की पूरी चिंता करेगी। मातृत्व की झालर होने वाला ऐसा नेतृत्व यही हमारी परम्परा है। नेता के बारे में पूर्ण विश्वास यही नेता का बल है।

अपने ११ मास के कार्यकाल में रानी लक्ष्मीबाई ने काफी शस्त्र व बारूद का संग्रह किया। तोपें व बारूद बनाने के कारखाने भी प्रारंभ किये। दूरदर्शिता के कारण उसने समझ लिया था अंग्रेजों से घनघोर युद्ध करना पड़ेगा। और सच २१ मार्च को ह्यू रोज झांसी में पहुंचा। मार्ग में सागर, वाणपुर, शहागढ़ के क्रांतिकारियों पर विजय प्राप्त की थी। ह्यू रोज ने मौके के स्थान पर मोर्चे लगाये। रानी लक्ष्मीबाई के पास भी शक्तिशाली ८१ तोपें थी। किले के प्रत्येक बुर्ज से तोपें चल रही थी। खुदाबक्ष व गौसखान ये दो अत्यंत एकनिष्ठ तोपची थे। दि. २५ मार्च को अंग्रेजों ने नये मोर्चे बनाकर किले के मौके के स्थान पर गोलों की वर्षा की। पानी के तालाब तक जाना भी मुश्किल हो गया किले की दीवारों में छेद हो गये। रातोंरात वे दुरुस्त किये जाते थे। स्त्रियां भी पीछे नहीं थी। बारुद, खाद्य सामग्री पहुंचाने का काम वे करती थी। इतना ही नहीं तो तोपची थोड़ा विश्राम करते थे तब तक तोपें भी चला लेती। रानी साहिबा की सौतेली माँ ने भी तोपें चलाईं।

परंतु भेदवृत्ति के जयचंदों की अपने देश में कमी नहीं है। एक बुंदेला सैनिक ने अंग्रेजों को मोर्चा लगाने का मौके का स्थान बताया। रानी साहिबा के निवास स्थान के सामने वाले मैदान पर ही गोला-बारुद का कारखाना था वहां एक गोला आकर गिरा- जोरदार धमाका हुआ और अपरिमित हानि हुई।

दि. १ अप्रैल को २० हजार की सेना लेकर सहाय के लिए तात्या टोपे आ रहे थे। उनके सैनिक प्रशिक्षित तो थे नहीं। रास्ते में उनको घेरकर अंग्रेजों ने हमला किया तो उनको भागना पड़ा। उनकी गोला बारूद अनायास अंग्रेजों को मिली। फिर भी अंग्रेज झांसी के किले में नहीं घुस पाये। झांसी के सैनिक ही नहीं तो नागरिक भी दीवारों पर चढ़-चढ़कर प्रतिकार करने लगे, परंतु एक और जयचंद निकला- उसने किले का ओरछा दरवाजा खोल दिया- अंग्रेज आसानी से अंदर घुस गये। रानी ने अब रणचंडी का रूप धारण किया वहां दौड़कर गयी और शत्रु की जोरदार कत्तल करना प्रारंभ किया। परंतु अंग्रेजों की संख्या इतनी अधिक थी कि सैनिकों ने उनको वापिस लौटने को कहा। रानी को किले पर लौटना पड़ा। झांसी के रास्ते-रास्ते पर नागरिकों की कत्ल लगातार ३ दिन होती रही। शव ही शव बिखरे थे। दुर्गंध चारों ओर भर गयी। रानी का महल भी लूटा गया। उनका अमूल्य ग्रंथों का संग्रह भी उध्वस्त किया गया। हमारा ज्ञान भंडार जलाने की आक्रमकों की रीति नित्य रही है। काफी क्षति पहुंची थी। परंतु वे हमारी बुद्धि तो नहीं जला पाये।

प्रजावत्सल रानी माँ का हृदय अपने लोगों की यह दुर्दशा देखकर द्रवित हुआ। वह अतीव निराश हो गयी। फिर भी सभी से की हुई बात के अनुसार किले से बाहर निकलकर राव सहाब की सेना से मिलकर प्रयत्न करने का तय हुआ। इस युद्ध में रानी लक्ष्मीबाई ने युद्ध का उत्कृष्ट संचालन किया।

सर ह्युरोज को यह पता चलने पर वह आश्चर्य चकित हुआ। झांसी से कालपी १३० मील की दूरी २२ घंटों के अंदर काटकर वह कालपी पहुंची। तात्या टोपे ने युद्ध का नेतृत्व किया परंतु यश मिला नहीं। फिर भी विचलित न होते हुए रानी ग्वालियर की ओर बढ़ी। परंतु शिंदे के साथ नहीं मिली। युद्ध में सेना की व्यूहरचना की उनकी कुशलता बेजोड़ थी। परंतु उनके हाथ में उस दिन नेतृत्व नहीं था। इस भीषण रण में उनकी सखी सुंदरबाई पर हमला करने वालों को उसने मौत के घाट उतारा। महारानी लक्ष्मीबाई को पकड़कर देने वाले को अंग्रेजों ने २०००० रु. का इनाम जाहिर किया था। अंग्रेजों का घेरा पारकर पुनः बाहर निकलने की योजना बीच में आने वाले नाले के कारण सफल नहीं हुई। सिर फट गया- एक आँख बाहर आयी परंतु वह अडिगता से लड़ती रही। रणक्षेत्र में ही उनकी प्राण ज्योत शांत हुई। गंगादास बाबा की कुटिया में उन पर अग्नि संस्कार किया गया - 'मैं क्या मेरा एक बाल भी अंग्रेजों को नहीं मिलेगा' यह उनकी प्रतिज्ञा उन्होंने सच करके दिखायी। वह दिन था दि. १८ जून १८५८ ज्येष्ठ शु. ७।

क्रांतियुद्ध में सतत अग्रेसर रहकर हजारों वीरों का स्फूर्ति स्थान होने वाली रानी लक्ष्मीबाई की युद्धकुशलता किसी पुरुष से कई गुना श्रेष्ठ थी। उनकी तेजस्विता का प्रभाव शत्रु पर भी पड़ा था। राजमाता के नाते उन्होंने काफी समाज कार्य किया। सामान्य लोगों में वे घुल मिलकर बातचीत करती थी उनके सुख दुख पूछती थी। अपनों के लिए ममतामयी माँ होने वाली यह सुजनता की मूर्ति, राष्ट्रीय भावना से प्रेरित हुई थी। हाथ में तलवार लेकर रणरागिणी बनकर बिजली जैसी चमकती थी तब शत्रु थर्रा गये।

जय जय कार करो लक्ष्मी का

जय जयकार, जय जयकार,
जय जय कार करो लक्ष्मी का
जो रणचण्डी का अवतार ।।ध्रु।।

तांबे कुल में जन्म लिया
जिस मातृपिता का यश फैलाया
रानी बन झांसी में आई,
राजवंश का मान बढ़ाया
सैनिक शिक्षण दे सखियों को,
महिला पथक किया तैयार ।।१।।

हुआ आक्रमण जब झांसी पर,
शासन छोड़ो बोला गोरा
मेरी झांसी कभी न दूंगी,
कड़की बिजली कांप उठी धरा
रक्षण करने हिन्दू राष्ट्र का,
हुई भवानी रण साकार ।।२।।

स्वतंत्रता के प्रथम समर की,
सेनानी था वीर शिरोमणि
किया युद्ध का सफल संचलन,
रण में चमकी थी रणलक्ष्मी
दुष्ट दुर्जनों महिषासुर का मर्दिनि ने
ही किया संहार ।।३।।

एक बार पुनि आज पुकारे
करती माता तुझे स्मरण है
पाश्चात्य की लोलुपता
करने लगी पुनः क्षण क्षण है
स्वतंत्रता की ज्योति जलाओ
सुनो हमारी आर्त पुकार ।।४।।

अध्ययन हेतु पुस्तकें

१. झांसी की रानी - वृंदावन लाल वर्मा
२. क्रांति कथाएं - श्रीकृष्ण सरल

सर्वश्रेष्ठ हिन्दु धर्म

हिन्दु धर्म संस्थापक कौन ?

कार्य और कर्ता इनका अटूट नाता होता है। फिर भी कभी-कभी कार्य दिखता है, किन्तु इसका कर्ता कौन है यह पता नहीं चलता है। उसके प्रमुखतः तीन कारण है।

(१) **नैसर्गिक विकास** - कली खिलती है, और फूल बनता है। कली का फूल बनाने वाला कौन ? क्या बता सकेंगे?

(२) **प्रसिद्धि से दूर रहने वाला कर्ता** - सुप्रसिद्ध अंजता और एलोरा (वेरुल) की गुफाएं। कितनी रंगदारी। कितने चित्र। कितनी नक्शी। परंतु कहीं भी किसी का भी नाम नहीं है।

(३) **कार्यनिर्माण में अनेक लोगों का सहभाग** - जो काम सातत्य से चल रहा है और चलता भी रहेगा, उसके कर्ता के रूप किसका नाम होगा ? यदि वह काम पूरा हो जायेगा तो जिसके कारण वह पूरा हुआ उसका नाम दिया जायेगा। जैसे कि 'भगीरथ' ने भारत में गंगा लायी। भगीरथ के कार्यकाल में वह कार्य पूरा हुआ, इसलिये उसका नाम। किन्तु जो काम सदैव चलता रहेगा उसका कर्ता हम कैसे बता सकेंगे ?

इसलिए हम हिन्दू धर्म का संस्थापक कौन इसका उत्तर नहीं दे सकते हैं।

धारणात् धर्म इत्याहुः।

हिन्दु जीवनदृष्टि से धर्म याने विशिष्ट जीवनपद्धति, एक विशिष्ट विचार है, एक विशिष्ट पूजापद्धति नहीं। मानव-समाज के पालन, पोषण और भरण के लिए आवश्यक सभी विचार 'धर्म' कहलाते हैं। स्वाभाविक ही यह काम निरंतर चलने वाला है। उसका उत्तरदायित्व लेने वाले और निभाने वाले कई लोग होंगे। फिर संस्थापक के नाते किन-किन का नाम ले सकेंगे ?

अनेक लोगों के चिंतन से, अनुभूति से, व्यवहार से हिन्दू धर्म सिद्ध हुआ है। मानव समाज का जीवन विविध परिस्थिति में बीतता है। प्राप्त परिस्थिति से कभी समझौता करना पड़ता है प्रतिकूल परिस्थिति के विरुद्ध झगड़ना पड़ता है तो कभी परिस्थिति पर नियंत्रण और विजय प्राप्त करना आवश्यक होता है। इस तरह जीवन में प्राप्त अनुभूतियों का तत्व अर्थात् धर्म है।

पुरातत्व -

भारतीय संस्कृति अति प्राचीन है। उसका निर्माण कब हुआ, पता नहीं। मानव जीवन में उत्क्रान्ति होते-होते जब वह कुछ मात्रा में स्थिर हुई, उसको वैभव प्राप्त हुआ उस समय उस जीवन के जो निश्वास, वे वेद कहलाते हैं। उनकी रचना पंद्रह, सोलह सहस्त्र वर्ष पूर्व हुई। उसके पूर्व मानव जीवन सुसंस्कृत होने तक कितने सहस्त्र साल लगे पता नहीं। इस सहस्त्रों सहस्त्र वर्षों में मानव जीवन में विविध प्रकार के अनेकानेक प्रयोग हुए। उनका निचोड़ हिन्दू धर्म।

धर्म प्राचीन किन्तु नाम प्राचीन नहीं -

जिस तरह इस धर्म का एक संस्थापक नहीं उसी तरह इस धर्म के नाम भी अनेक है। प्राचीन काल में सनातम धर्म, वैदिक धर्म इन नामों से यह विख्यात था। मूलभूत सत्य हमेशा सर्वात्मक, सर्वत्र और सदैव एक ही रहेगा। उपनिषद् उसका वर्णन 'एकमेवाद्वितीय' करते हैं।

एकरूपता नहीं -

सत्य एकमेवाद्वितीय' है किन्तु वह एकरूप ही हो ऐसा आग्रह हिन्दु धर्म का नहीं। क्योंकि वह सत्य जिसको जिस रूप में प्रतीत होगा वह उसका वर्णन उस तरह से करेगा। कोई कहेगा हाथी सूपा जैसा है। कोई कहेगा हाथी खंबे जैसा है। जब अपने मन का दुराग्रह नहीं होगा तब पता चलता है कि हाथी इन सारे विविध अनुभवों का सजीव एकत्रीकरण है।

विचारस्वातंत्र्य -

अतः हिन्दु धर्म के अनुयायिओं की मान्यता है कि 'एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति।' उस एकमेवाद्वितीय चिरंतन सत्य का वर्णन विविध दृष्टि से, विविध अनुभवों से, विविध प्रकारों से किया जायगा, यह मान्य करते हुए उन सभी दृष्टियों को स्वतंत्रता देते हुए भी उनमें निहित सत्य एक ही है यह दृढ़तापूर्वक प्रतिपादन करने वाला धर्म है 'हिन्दू धर्म'।

धर्म ग्रंथ अनेक -

स्वाभाविकतया हरेक विचारधारा प्रकट करने वाले विविध दृष्टियों का चित्रण करने वाले तथा विविध बिंदुओं पर विचार प्रकट करने वाले अनेकानेक ग्रंथ, धर्मग्रंथ माने जाते हैं। वेद, उपनिषद, दर्शन, स्मृति, रामायण, महाभारत, गीता, पुराण आदि।

द्रष्टा - दर्शन - महात्मा - संप्रदाय

इस जीवन का रहस्य जानने की मानव की इच्छा प्रबल होती है। अतः चिंतन, मनन किया जाता है। विविध प्रयोग किये जाते हैं। जिसका प्रयोग सफल हुआ उसको 'द्रष्टा' माना जाता है। वह द्रष्टा अपनी जो अनुभूतियाँ कथन करता है वे है 'दर्शन।' किन्तु मानव की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि दूसरों के अनुभवों से वह संतुष्ट नहीं होता। अतः वह स्वयं वही प्रयोग करने का प्रयास करता

है। ऐसे प्रयासों में जो उसे मार्गदर्शन करता है वह है 'महात्मा'। एक ही गन्तव्य स्थान को जाने वाले विविध मार्ग होते हैं। हरेक मार्ग का मार्ग दर्शन करने वाले भिन्न-भिन्न महात्मा होते हैं। उनका अनुभव और उपदेश जब ग्रंथित किया जाता है तब विविध ग्रंथों का निर्माण होता है। ऐसा एक मार्ग दिखाने वाला एक महात्मा और उसका ग्रंथ यह सब मिलकर एक संप्रदाय बनना है। ऐसे अनेकों संप्रदाय का संयुक्त परिवार है- अर्थात् हिन्दु धर्म।

अनेक उपासनापद्धतियां -

ऐसे सम्प्रदायों का केवल ज्ञान होने से काम नहीं चलता। वह प्रत्यक्ष में लाने के लिए मानव जो आचरण करता है वह है उपासनापद्धति। उसके लिए कुछ नियम बनाये जाते है। कुछ विशिष्ट प्रतीक या स्थान का आदर्श सामने रखा जाता है। यह सब ठीक ढंग से चले, अतः उस सम्प्रदाय के उपासकों का संगठन निर्माण होता है।

विविध पंथ -

किन्तु फिर भी उन उपासकों में से कुछ उपासक अलग पद्धति का अवलंब करते हैं। उनके अलग प्रतीक होते हैं। अलग संगठन भी होता है। उसको कहते हैं पंथ। जैसे कि भक्ति सम्प्रदाय में एकेश्वरी, वारकरी, शाक्त, शैव, वैष्णव ऐसे अलग-अलग पंथ है।

विविधता में एकता -

जीवन का रहस्य जानने हेतु प्रयास करने वाले हरेक का अनुभव स्वतंत्र और अलग हो सकता है, किन्तु वह अपने प्रयासों के प्रति प्रामाणिक होता है और उनका अनुभव भी सच होता है। अतः हिन्दु धर्म इस विविधता को मानता है। हरेक को अपना अलग मार्ग या पद्धति चुनने का स्वातंत्र्य प्रदान करता है। यहां विचार, आचार एवं उच्चार, स्वातंत्र्य पनपता है। फिर भी 'सर्वेषाम् अविरोधेन' हिन्दु धर्म अग्रेसर होता हुआ दिखाई देता है।

क्योंकि 'सर्व देव नमस्काराः केशवं प्रति गच्छति' यह भाव केवल चिंतकों के ही नहीं तो अज्ञानी के मन में भी गड़ा हुआ है। परमत का आदर, परमतसहिष्णुता, परस्परसमन्वय, समावेशकता ये गुण हरेक हिन्दु के खून के कण-कण में घुले मिले रहते हैं इसमें क्या आश्चर्य ? हरेक की भावना होती है 'सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु।' स्वाभाविकतः व्यक्तिशः उपासना मार्ग अलग होते हुए भी राष्ट्रीय दृष्टि से 'हम सब एक' यह गरुवद भावना बलशाली होती है।

अजात शत्रुता -

जहां परमतसहिष्णुता है वहां मेरे विचार को न मानने वाला वह शत्रु यह भावना भी नहीं होती। मन में दुराग्रह नहीं होता है। अतः पृथ्वी मंडलाकार है यह सिद्धांत सिद्ध करने वाले किसी गैलिलिओं को, वह सिद्धांत बायबल में नहीं है इसलिये दण्ड भुगतना पड़ता है। या किसी सलमान रश्दी के प्राणों को खतरा निर्माण होता है।

कभी-कभी अपने विचारों का प्रतिपादन करते समय मतभेद जरूर होते हैं। कभी-कभी परमतादर की भावना ओझल होती हुई दिखायी देती है। लेकिन उस समय कोई शंकराचार्य आगे आता है, और समाज की एकता अखंड रहे इसलिये 'पंचायतन पूजा'- एक सर्वसमावेशक मार्ग सामने रखता है।

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् -

फिर क्या समाजविधातक दुष्ट प्रवृत्तियों का भी विरोध नहीं होता है ? बुरे आदमी को सुधरने की कोई गुंजाईश नहीं है ? जो अप्रगत है, उनकी प्रगति के लिए प्रयास नहीं? अपने श्रेष्ठ मत का आग्रह नहीं ? हाँ ! जरूर है। किन्तु अपनाया जाने वाला मार्ग है विचारपरिवर्तन का।

'जे जे आपणासी ठावे, ने इतरासी शिकवावे। शहाणे करुन सोडावे, अवघे जन।' स्वयं को जो ज्ञान है वह दूसरों को सिखाना और सभी लोगों को सयाने बनाना - ऐसा श्री समर्थ रामदास जी ने लिखा है। इसी उपदेश के अनुसार भारत के अधिकांश लोगों ने चलना चाहिए। श्रेष्ठ विचारक के अनुभव समाज प्रगति के लिए उपयुक्त होते है। इसी सूत्र को लेकर यहां के मनीषियों ने 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' की घोषणा की थी। सम्पूर्ण विश्व श्रेष्ठ बने यह उद्देश्य रखकर ऋषि मुनियों ने कार्य किया कोई अगस्ति विंध्य पहाड़ी लांघकर दक्षिण दिशा की ओर बढ़ा कोई कौंडिण्य अग्नेय आशिया में कुण्डनपुर जाता है तो कोई विवेकानंद पाश्चात्य देशों में जाकर वैदिक धर्म का झंडा फहराता है।

प्रपंच और परमार्थ -

हिन्दु धर्म मानवी जीवन की आध्यात्मिक श्रेष्ठता के संबंध में जितना सजग है उतना ही भौतिक श्रेष्ठता प्राप्त करने हेतु सबको प्रयत्नशील बनाता है। जीवन में उपभोग जरूर लेना है परंतु उसी समय कर्तव्य का भी ध्यान रखना चाहिए और साथ-साथ मुक्ति की ओर भी बढ़ना चाहिए। 'यह जीवन असार है' ऐसा एक निराशाजनक विचार मनुष्य के मन में आता है। परंतु जब उसको कर्तव्यबोध होता है तब जीवन की उपयुक्तता उसको ज्ञात होती है। वो उसके लिए प्रयास करता है। ये कार्य करते समय 'इदं न मम' यह भाव मन में रहे तो उसकी पारमार्थिक प्रगति भी होती है।

चातुर्वर्ण्यव्यवस्था -

अपने मनीषियों ने मानवी जीवन का समग्र विचार किया है। केवल कान, केवल हृदय, केवल पैर स्वस्थ रहे ऐसा नहीं सोचा पूरा शरीर कैसा आरोग्यसम्पन्न रहे यह सोचा है। समाज में अलग-अलग क्षमता पाने वाले लोग दिखाई देते हैं। कोई बुद्धि जीवी होते हैं, कोई शूर सामर्थ्य सम्पन्न होते हैं, कोई उद्योजक होते हैं तो कोई बेपारी भी रहते हैं या कोई मात्र सेवाकर्मी भी हो सकते हैं। हरेक की क्षमता एवं रुचि विभिन्न हो सकती है। राष्ट्र की उन्नति के लिए समाज के इन घटकों को उनके क्षमता एवं रुचि के अनुसार कार्य सौंपाया जाता है। श्रीमद् भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि 'चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। इसमें जातिवाचक शब्द नहीं है, यह ध्यान में रखना चाहिए। समाज को सभी की आवश्यकता है, इसलिए कोई भी श्रेष्ठ और कनिष्ठ नहीं। यदि हरेक व्यक्ति अपना कर्तव्य एवं दायित्व यथावत् सम्हाल लेगा तो समाज स्वस्थ रह सकता है। और राष्ट्र प्रगतिपथ पर आगे बढ़ता है।'

'स्व' की व्यापकता -

'स्व' - मै - मेरा यह भावना। उसका मंडल विस्तृत हो व्यष्टि-समष्टि-राष्ट्र-सृष्टि-परमेष्टि यह है उसका क्रम।

व्यक्तिजीवन और समाजजीवन ये एक दूसरे पर आधारित हैं। इन दिनों जीवन सुसंगत कैसे रहे यही प्रयास करना है। 'धर्म' यही सिखाता है। व्यक्ति अपना दायित्व निभाते निभाते समष्टिजीवन में विलीन होना चाहिए। व्यक्ति का संबंध चराचर सृष्टि से ही है। पशु पक्षियों को पालना, वृक्षों को पानी देना, उनकी पूजा करना इसमें आत्मतत्व का अनुभव आता है। हम सब एक ही भगवान के अंश ! जब व्यक्ति इसी विचार धारा से आगे बढ़ेगी तो परमेष्टि तक पहुंच जाती है। 'स्व' की व्यापकता इस तरह से बढ़ानी है। अपने आचारधर्म के अनुसार चलना है।

चार पुरुषार्थ - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष -

धर्म - व्यक्ति जीवन के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ माने हैं। अर्थ और कर्म को धर्म और मोक्ष के बीच में रखा है। इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति अर्थार्जन करता है वो धर्म के नियमों के अनुसार करे। अपनी वासनापूर्ति करते समय भी धर्म की याद रखनी है। जो व्यक्ति इन नियमों के अनुसार जीवनयापन करता है वह अंत में मनः शांति पाता है- सब बंधनों से मुक्त हो सकता है। किसी राष्ट्र में रहने वाले लोग इन चारों पुरुषार्थों के तहत कार्य करेंगे तो राष्ट्र निश्चित रूप से उन्नत हो सकेगा।

अर्थ - अर्थव्यवस्था में हरेक व्यक्ति को धन कमाने का एवं उसका उपभोग लेने का अधिकार है। यह अधिकार अनिर्बंध नहीं। धर्म के हाथ में उसकी बागडोर है। धन कमाने में व्यक्तिगत कर्तव्य का पालन, समाजकल्याण एवं राष्ट्र का अभ्युदय निहित है। व्यक्तिगत धन का कुछ अंश समाज का रहता है यह ध्यान में रखना चाहिए।

संपत्ति का केन्द्रीकरण समाज के लिए घातक है। अतः हिन्दु धर्म उसका विरोध करता है। धन किसलिये कमाना ? पूंजीवाद तथा साम्यवाद की मान्यता यह है कि 'जो कमायेगा वह खायेगा।' उन दोनों में भी मतभिन्नता है। पूँजीवादी कहता है कि जो प्रारंभ में राशि लगाता है वह स्वामी। और साम्यवादी कहते हैं जिन लोगों ने वह राशि (Capital) दुगुना-चौगुना करने में कष्ट उठाये हैं वे स्वामी। परंतु हिन्दु विचार धारा एकदम अलग है। उसके अनुसार 'जो कमायेगा वह खिलायेगा।' ध्यान में रखना 'खायेगा नहीं खिलायेगा' समाज के दुर्बल घटकों के प्रति हरेक व्यक्ति के कर्तव्य की ओर यह स्पष्ट निर्देश है।

काम - मानव जीवन में अर्थ जैसा ही दूसरा महत्वपूर्ण बिंदु है 'काम'। 'मानव' की एक अनिवार्य आवश्यकता। इसमें भी व्यक्ति अनिर्बंध, स्वेच्छाचारी न बने इस पर ध्यान देना होता है। स्वेच्छाचारी जीवन व्यक्ति एवं समाज के लिए भी घातक है। इसलिए उस पर नियंत्रण आवश्यक है। ब्रह्मचर्य के प्रति उतना ही आदर भाव रखकर विवाह को भी मान्यता देना आवश्यक है। विवाह व्यक्तिगत कामपूर्ति इतना ही उसका अर्थ नहीं । प्रजनन विवाह से अपेक्षित है। समाज में सातत्य रखना एवं सुसंस्कारित पीढ़ी का निर्माण करना यह श्रेष्ठ विचार इसके पीछे है। परिवार को समाज की नीव माना है।

मोक्ष - अर्थ और काम के पश्चात् आता है मोक्ष। जब व्यक्ति का व्यवहार संतुलित रहता है, वह धर्माचरणी रहे, सदाचारी रहे तो वो जीवन में सफल होता है। मृत्यु के समय उसको कर्तव्यपूर्ति का आनंद मिलता है - प्रसन्नता प्राप्त होती है।

इस तरह धर्म और मोक्ष इन दोनों किनारों के बीच ही अर्थ और काम का प्रवाह बहता रहना आवश्यक है। ये दोनों किनारे इतने सामर्थ्यशाली हो कि अर्थ-काम का प्रवाह इनसे सदैव टकराता हुआ भी उनमें छेद न हो पाये। अपितु स्वेच्छाचार को ही हटना पड़े।

राज्यसत्ता -

मानव की स्वाभाविक वृत्ति यह है कि अपने हाथ में ही सब अधिकार रहे। उसके लिये वो हमेशा प्रयास करता रहता है। सत्ता का केन्द्रीकरण देश के लिए अहितकारक है। अतः शासन लोकहितकारी हो इसलिए उस पर नियंत्रण अत्यावश्यक है। यह नियंत्रण कौन रखेगा ? अर्थात् समाज हितैषि एवं निःस्वार्थ भाव से कार्य करने वाले बुद्धिवान लोग।

भारतीय विचारधारा के अनुसार राजसत्ता पर अंकुश रखने

वाली ऋषिमुनियों की एक सत्ता थी। जिसको धर्मदण्ड कहते थे। राजसत्ता धर्मसत्ता के हाथ में सम्पूर्णतया हो वह भी हानिकारक है। जैसे कि यूरोप में पोपसत्ता थी। परंतु हिन्दू धर्म ने दोनों पर विचार किया है। समाज का ऐहिक हित राजसत्ता पर ही निर्भर होता है। परंतु उस पर निःस्वार्थ जीवन व्यतीत करने वाले और समाजहितैषि व्यक्तियों का संगठन अपने धर्मदंड द्वारा नियंत्रण करेगा। न्याय संस्था निष्पक्ष हो, शिक्षण संस्था संस्कारक्षम हो जिससे इस प्रकार के संगठन की निर्मिति हो सकती है।

चार आश्रम और समाजाभिमुख व्यक्ति जीवन -

हिन्दु धर्म ने जिस प्रकार समाज जीवन का विचार किया है- व्यक्ति जीवन चार आश्रमों में विभाजित किया है। जीवन के प्रारंभ में ब्रह्मचर्याश्रम। पूरी शिक्षा प्राप्त करना। यह शिक्षा गृहस्थी जीवन बिताने के लिए भी उपयुक्त हो। गृहस्थाश्रम में अपना परिवार का भरण, पोषण करते करते समाजहित का भी कार्य करना है। घर गृहस्थी करते करते अन्य तीन अनुत्पादक आश्रम के लोगों के निर्वाह की जिम्मेदारी लेकर समाज का कर्ज चुकाना। वानप्रस्थाश्रम में ऐहिक व्यक्तिगत जीवन से मन हटाकर समाज कार्य पर केन्द्रित करना। संन्यासाश्रम में ध्यान धारणा करके तपःपूत जीवन विताना। पूरे जीवन की अनुभूति से प्राप्त ज्ञान, स्थिरता निःस्वार्थ भाव लेकर भगवान की निकटता की इच्छा मन में रखकर स्वयं को अंतर्मुख बनाना, यही इस आश्रम की विशेषता है।

इस व्यवस्था से जीवन के हरेक चरण में व्यक्ति स्वकर्तव्य के संबंध में सतर्क रहता है। स्वच्छंद नहीं बनता। समाज का ऋण चुकाना है यह भावना व्यक्ति के स्वार्थ को नियंत्रित करती है। एकेक व्यक्ति के गठन से समाज सुव्यवस्थित चलता है और अच्छे समाज द्वारा व्यक्ति का गठन होता है। व्यष्टि और समष्टि दोनों परस्परावलम्बी है, यह ध्यान में रखते हुए व्यक्ति के विकास के लिए स्वातंत्र्य प्रदान किया है, साथ ही समाज का नियंत्रण भी महत्वपूर्ण माना गया है।

सुधार के लिए सदैव तैयार -

समाज धारणा यही धर्म का उद्देश्य होने के कारण बदली हुई परिस्थिति के अनुसार यदि कोई प्रचलित पद्धति अनावश्यक या कालबाह्य हो तो उसका त्याग या उसमें परिवर्तन को स्वीकार किया है। वह अपनी मानसिकता है। कर्मकांड में लिप्त रहना समाजविघातक सिद्ध हुआ तब ज्ञान मार्ग अपनाया गया। त्यागमय जीवनादर्श की रक्षा करने हेतु समूचे राष्ट्र की स्थिति पर सोचने हेतु सभी ने सम्मिलित होकर और राष्ट्रहित सामने रखकर यज्ञ संस्था निर्माण हुई थी। वह बहुत वर्षों तक चलती रही। परंतु जब पशुबलि देना समाज ने त्याज्य माना, तब से इसका प्रभाव कम हुआ। बौद्ध पंथ के कारण समाज में निवृत्ति भाव पनपने लगा। वो समाज को दुर्बल बना रहा है यह सोचकर भागवत पंथ का निर्माण हुआ। उसने समाज का स्वकर्तव्यभाव जागृत किया। सामाजिक समरसता निर्माण हुई, हम सब ईश्वर के अंश एकात्म भाव निर्माण किया।

अनाक्रमता -

धर्म का प्रसार करते समय हिन्दु धर्म के लोगों ने कभी शस्त्रों का उपयोग नहीं किया, ना राज्यशासन का सहयोग किया। किसी को प्रलोभन दे कर भी धर्म परिवर्तन नहीं किया। हिन्दु धर्म की यह विशेषता है।

स्वसंरक्षण क्षमता -

फिर भी अनाक्रमता की अंतिम मर्यादा हिन्दु धर्म ने ध्यान में रखी है। हम किसी पर आक्रमण नहीं करेंगे किन्तु अन्य किसी का आक्रमण न हो इस दृष्टि से भी अपनी व्यवस्था थी। हिन्दुओं की हरेक देवता शस्त्रधारी है। 'परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्' के कारण शस्त्रों का उपयोग है। कोई संत साँप को उपदेश करता है, 'काँटो मत' किन्तु कांटने की क्षमता रखो और आवश्यक हो तो डरावना, फूत्कार करना मत भूलो।'

नर का नारायण बने -

महात्मा गांधी जी ने इस कल्पना का स्पष्टीकरण करते समय बताया है कि 'अल्ला का प्रेषित बनना मानव की इच्छा पर निर्भर नहीं, आकाशस्थ पिता का पुत्र बनना यह भी किसी के बस की बात नहीं। किन्तु हरेक ने प्रयत्न कर नर का नारायण बनना सुलभ है, संभव है। केवल प्रयासों की आवश्यकता है।' 'मदायत्तं तु पौरुषम्' यह ध्यान में रखकर आगे बढ़ने से मनुष्य उन्नत होता है। और हरेक मुख से जीवन ध्येय प्रस्फुटित होता है -

असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय। ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

हिन्दु धर्म याने न रुकनेवाला, आग्रह के साथ आगे बढ़ने वाला, सत्य कि खोज का मार्ग है। आज यह धर्म थका हुआ सा, आगे जाने की प्रेरणा देने में सहायक प्रतीत नहीं होता दिखता है। इसका कारण हम थक गये हैं, धर्म नहीं। जिस क्षण हमारी यह थकावट दूर होगी उस क्षण हिन्दु धर्म में भारी विस्फोट होगा और जो भूतकाल में कभी नहीं हुआ, इतनी बड़ी मात्रा में हिन्दु धर्म अपने प्रभाव और प्रकाश से दुनिया में चमक उठेगा।

म. गांधी

भारतीय संस्कृति के प्रतीक

प्रतीक शब्द का अर्थ है चिह्न। भाषा से लेकर गणित जैसे हरेकविषय में चिह्नों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। ॐ, स्वास्तिक, कमल, कलश, दीप, यज्ञकुंड, वटवृक्ष आदि भारतीय संस्कृति की विशेषताएं दर्शाने वाले कुछ प्रतीक हैं। समय समय पर हम उन्हें, भगवन के सम्मुख, रांगोली या कागज पर उतारते हैं परंतु उनका आशय जीवन में उतारने से जीवन गौरवपूर्ण बनेगा।

ओंकार -

ॐ यह परब्रह्म का अनुपम ऐसा नाम है। ॐ यह सृष्टि का प्रथम निनाद है। परमेश्वर की वाङमयीन मूर्ति अर्थात् प्रत्यक्ष रूप है। ओम् में अ+ऊ+म् में दो स्वर, एक व्यंजन अर्धचंद्र और अर्धचंद्र में बिन्दू

अ, ऊ, म्-अ-ब्रहम (उत्पत्ति) उ-विष्णु (स्थिति) म्-महेश (लय)। वैसे ही स्थूल, सूक्ष्म, कारण देह के भी बोधन है। अर्धचंद्र मातृ का महाकारणदेह-ज्ञान का और बिन्दू पूर्णत्व का, ध्येय लक्ष्य का प्रतीक है।

भारत का प्रत्येक कार्य ॐ से प्रारंभ होता है। यौगिक प्रक्रिया में भी ॐ का अत्याधिक महत्व है। आँखों से ॐ की आकृति देखना, मुख से उच्चारण करना और ॐ की यह ध्वनि कानों से ग्रहण करना-धीरे-धीरे मन ॐकार रूप बनता है।

स्वस्तिक -

स्वस्ति शब्द का अर्थ है कल्याण, शुभ। स्वस्तिक का अर्थ शुभ करने वाला, कल्याण करने वाला। देवत्व की शक्ति और मानव की शुभकामनाओं का मनोहारी संगम स्वस्तिक में दृग्गोचर होता है।

स्वस्तिक यह गतिमानता का प्रतीक है। चक्र हमेशा सीधे हाथ से घुमना शुभंकरी शक्ति के लिये आवश्यक है। विश्व की गति से हम परिचित है। पृथ्वी प्रदक्षिणा करती है। सूर्य अन्यान्य ग्रहगोल अपनी निश्चित दिशा में भ्रमण करते हैं। विश्व चक्र सुचारु रूप से चलता है।

कुछ स्थानों पर स्वस्तिक के स्व केन्द्र बिन्दु को विष्णु का नाभिकमल और चार भुजाएं अर्थात् उसके शंख चक्र गदा पद्म युक्त चार हाथ माने जाते हैं। कुछ स्थानों पर सूर्य तथा गणपति का आसन ऐसी उसकी मान्यता है। भारत के सभी पथोपपंथों में उसे-शांति, समृद्धि और मांगल्य का प्रतीक माना गया है।

सम्पूर्ण सृष्टि पुरुष और प्रकृति के संयोग से चलती है। स्वस्तिक की - यह दो रेखाएं प्रकृति-पुरुष की और उसकी उपभुजाएं चार आश्रम की तथा चार पुरुषार्थ की द्योतक हैं। चार आश्रम और चार पुरुषार्थ जीवन यशस्विता के साधन हैं। धर्म यह मनुष्य जीवन की नींव है और मोक्ष यह लक्ष्य-अर्थ और काम यहां तक पहुंचने की सीढ़ियां अर्थ-काम की साधन शुचिता जीवन सार्थ बनाती है।

दीप - दीपज्योतिः परब्रह्म दीपज्योति जनार्दनः
दीपो हरतु पापानि दीपज्योतिर्नमोऽस्तुते।
दीप प्रकाश का द्योतक 'तमसो मा ज्योतिर्गमय।

दीप प्रकाश का द्योतक 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' इस ध्येय का मार्गदर्शक, प्रेरक और उद्‌गाता। सूर्यास्त के पश्चात् दीपक ही विश्व की बागडोर सम्हालते हैं। अतः रोज संध्या समय हम प्रार्थना करते हैं -

शुभं करोति कल्याणं आरोग्यं धनसंपदः।
दुष्टबुद्धिविनाशाय दीपज्योति नमोऽस्तुते।।

मन में आने वाले दुष्ट विचार, शत्रुबुद्धि यह जीवन की कालिख है- प्रकाश के आगमन से जीवन आलोकित होता है। अतः मंगल प्रसंग में आरती उतारना, भगवान के सम्मुख नंदादीप जलाना-मंदिरों में दीप जलाना, दीप जल में प्रवाहित करना आदि पद्धतियां अपनी संस्कृति में रूढ़ है। दीपज्योति ज्योतिर्मय लक्ष्मी का रूप है। मानवी आशा का ज्वलंत स्वरूप है।

दीप की महत्वपूर्ण विशेषता है कि एक दीप से सैंकड़ों दीप प्रज्वलित होने से ही सभी ज्योतियां जगमगाती है।

कलश -

कलश अर्थात् आम्रपर्ण और श्रीफल युक्त जीवन (पानी) से परिपूर्ण घट यह मानवी जीवन का ही प्रतीक है। कलश जैसे ही मानवी जीवन भी ज्ञान, कर्तव्य पूर्ति के समाधान से युक्त होना चाहिए। रिक्त घट और रिक्त (क्रियाहीन, ज्ञानहीन, कर्तव्यहीन) जीवन दोनों भी अर्थहीन है, त्याज्य है। परिपूर्ण कृतार्थ जीवन के प्रतीक रूप में कलश हमारे सम्मुख रखा गया है। दक्षिण प्रांतों में पूर्ण कुम्भ से स्वागत करने की पद्धति है। पूजाविधि में भी कलश का स्थान महत्वपूर्ण है। कलश का वर्णन करते समय कहते हैं-

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः
मूलेत्वस्य स्थितो ब्रहमा मध्ये मातृगणाः स्मृताः

भारत के प्रत्येक मंदिर पर कलश विराजमान है। मानों यह संदेश देता है- स्वयं के शरीर को मंदिर जैसा पवित्र बनाओ- मंदिर में स्थित आत्मतत्व को पहचान लो जीवन कृतार्थ बनाओ।

कमल -

एक पवित्र सुगंधित सुकोमल पुष्प-सौंदर्य का प्रतीक। भारतीय कवि कमल कल्पना से मुग्ध हैं। अपने काव्य में वे मानव के अंगों का केवल हाथ, मुख ऐसा उल्लेख न करते हुए करकमल, पदकमल, मुखकमल, कमलनयन ऐसा उल्लेख करते हैं। नेत्र कमल, मुखकमल, हस्तकमल, पदकमल, सिरकमल, नाभिकमल हृदयकमल ऐसे सात कमल अपने शरीर में हैं और उससे भगवान की आराधना करे यह भी बताया गया है। कीचड़ यह कमल का उत्पत्ति स्थान है। परंतु कमल सुंदर है और कीचड़ से अलिप्त-अनासक्त है। कमल की एक विशेषता है। वह सूर्यविकासी होता है। सूर्योदय होते ही कमल प्रफुल्लित होता है। सूर्यास्त के साथ मिट जाता है। कमल वह संगठन का विविधता में एकता का श्रेष्ठ प्रतीक है। कमल की अनेक विध पंखुड़ियां एक डंठल से जुड़ी हुई रहती है। एकमेव डंठल ही उसका-पोषणकर्ता रहता है। डंठल से जुड़े हुए रहने में ही उस कमल का सौंदर्य, सामर्थ्य है। भारतीय संस्कृति भी ऐसी ही है- अनेकानेक-पंथोपंथ यहां निर्माण हुए, विकसित हुए, उनको जीवनरस देता है हिन्दु धर्म।

कमल ब्रह्मदेव, सरस्वती, लक्ष्मी का आसन है- ऐसी भी मान्यता है। गौतमबुद्ध का आसन भी कमल ही था। १८५७ की क्रांति में कमल संकेत चिह्न था। आज भी हमारा राष्ट्रीय पुष्प कमल ही है। कमल का हर अंग उपयुक्त है। कमल पुष्प भगवान को समर्पित किया जाता है।

वटवृक्ष -

कृतज्ञता यह भारतीय संस्कृति की अपनी एक अलग विशेषता है। जीवन यापन के लिये जिनका सहयोग मिलता है ऐसे सभी चर अचरों के लिये प्रसंगोपात्त कृतज्ञता व्यक्त की जाती है। प्राणियों में नागपूजन, वृक्षपूजन, वृक्षों में तुलसी, शमी, आँवल, वटवृक्ष की भी पूजा की जाती है।

वटवृक्ष गृहस्थाश्रम् का प्रतीक है। वटवृक्ष पांथस्थ को छाया देता है- अनेकानेक पक्षी अपना निवास स्थान उसी के आधार से बनाते हैं। ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ और संन्यास ऐसे सभी का आधार या आश्रय स्थान गृहस्थाश्रम है। इन तीन आश्रमों में जीवन व्यतीत करने वालों का निर्वाह करना उसका कर्तव्य है। वैसे ही काकबली, ग्रोग्रास आदि के द्वारा अन्य प्राणि-पक्षी-वृक्ष सृष्टि का पोषणकर्ता भी वही है।

हमारी संस्कृति भी वटवृक्ष के समान अनेकानेक पंथों का आश्रय स्थान विश्वास स्थान भी है। ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् -

यह संदेश भी वह हमें देता है।

वटवृक्ष के साथ हजारों वर्षों से एक कथा जुड़ी है- सावित्री की। सावित्री को इस वृक्ष की पूजा से सौभाग्यदान प्राप्त हुआ। संतति भी। इस वृक्ष में शुद्ध और अधिक प्राणवायु देने की क्षमता है। प्रजोत्पादन के लिये आवश्यक तत्व देने का सामर्थ्य उसके जड़ों में है।

सावित्री यह मद्र देश की कन्या-सत्यवान उसका पति मृतवत था। सावित्री ने उसे जीवनदान दिया। सास श्वसुर को दृष्टिदान दिया और राजसंतती भी प्राप्त की ऐसी कथा है। सत्यवान मृतवत था अर्थात् कर्तव्यच्युत था, सावित्री ने उसमें स्वाभिमान जगाया कर्तव्य प्रेरणा दी- मृतवत् आस्थाओं को जीवित किया। आशा के प्राण फुंके। इस जागृति के कारण फिर से राज्य प्राप्त हुआ। सास श्वसुर का मोहान्धत्व भी उसने नष्ट किया। स्त्री के कर्तव्य का बोध कराने वाली यह कथा बड़ी अद्‌भुत और अपने आप में अद्वितीय है।

यज्ञकुंड -

त्याग का प्रतीक है। विश्व त्याग पर ही आधारित है। 'त्यागेन एकेन अमृतत्वमानशुः' ऐसा कहा गया है। हर पल चलने वाली श्वासोच्छवास क्रिया हमें त्याग का पाठ नित्य सिखता है। जीवन की हर क्रिया यज्ञमय है। भोजन भी भारतीय संस्कृति के अनुसार उदरभरण नहीं-यज्ञकर्म है। अतः बताया जाता है - ''तेन त्यक्तेन भुंजीथाः''।

अपने पास जो भी है उसे अन्योंको वितरित करना यही यज्ञ है -

ब्रह्मयज्ञ - अध्ययन-अध्यापन

देवयज्ञ - मातापिता की सेवा

पितृयज्ञ - श्राद्ध-पितरों का स्मरण

मनुष्ययज्ञ - अतिथि सत्कार और दीन दुखियों को अन्न दान।

भूतयज्ञ - वैश्वदेव, काकबल इ

इस प्रकार से अनेक यज्ञ बताये गये हैं।

हमारे वैदिक शास्त्र ने कुछ अन्य भी यज्ञ सिद्ध किये हुए हैं। अश्वमेध, राजसूय, पुत्रकामेष्टि यज्ञ आदि। विशिष्ट देवता का आह्वान कर उसके द्वारा अपना इप्सित पूर्ण कर लेते थे। अग्नि में दी जाने वाली अन्यान्य आहुतियां वायु मंडल को शुद्ध पवित्र बनाती है। आज भी कुछ घरों में अग्निहोत्र अर्थात् अग्नि की अखंड पूजा होती है।

अग्नि को हम 'पावक' कहते हैं। वह स्वयं शुद्ध तेजस्वी है, दूसरों को भी वैसा ही बनाता है। वह अत्यंत उपकारक है परंतु उसे हमें मर्यादा में रखना पड़ता है अन्यथा वह सब भस्मसात् कर देता है। अग्निकुंड की रचना यह विज्ञान में 'मिति' भूमिति का उद्‌गम है।

अग्निज्वालाओं के समान भारतीय संस्कृति भी नित्य वर्धिष्णु ऊर्ध्वगामी है।

अध्ययन हेतु पुस्तकें
भारतीय संस्कृति के प्रतीक - सुमती जोशी
संस्कृति कोश

मैं हिन्दु नारी हूं

मैं खड्‌ग धारिणी हूं- दुष्टों का संहार करने के लिए मैं दश प्रहरणी दुर्गा हूं। समर में नारी शक्ति को जगाने के लिए मैं सुकोमल कमल वासिनी लक्ष्मी हूं। विश्व का वैभवशाली सुशोभन करने के लिए मैं वीणाधारिणी सरस्वती हूं। विद्या दायिनी वीणा की झंकार सुनाने के लिए मैं आकाश हूं। सहिष्णुता के गुणों से- धरणी हूं। सबकी आश्रयदायिनी होने से- मैं वायु हूं। सबकी जीवन दायिनी होने से- मैं वह मिट्टी हूं जिससे मधुर फल सुगंधित पुष्प देने वाले वृक्षलता निर्माण होते हैं। मेरा धर्म है नारीत्व अर्थात् मातृत्व, जिससे मैं भविष्य में तेजस्वी विजगीषु हिन्दु राष्ट्र का निर्माण कर सकूं। क्यों ? क्योंकि मैं हिन्दू नारी हूं।

स्वदेशी

स्वतंत्र भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के अर्धशतक के पश्चात् स्वदेशी विषयक विचार करने के लिये कुछ प्रयत्न करने की आवश्यकता प्रतीत होना यह एक गंभीर बात है। भारतीय स्वाधीनता प्राप्ति के इस शताब्दि के प्रारंभ में किये गये प्रयत्नो में स्वदेशी को अग्रक्रम था। लोकमान्य तिलक जी की स्वतंत्रता-चतुष्टयी में स्वदेशी का महत्व अनन्य साधारण बना। स्वाधीनता आंदोलन का मंत्र था 'वंदे मातरम्'। उसका प्रत्यक्ष रूप स्वदेशी था ऐसा रविन्द्रनाथ ठाकुर भी कहते थे। धीरे-धीरे स्वदेशी को ब्रिटिशों के विरुद्ध प्रतिक्रियात्मक रूप मिलता गया। अंग्रेज जाने के पश्चात् यह विषय संदर्भहीन बनता गया। वास्तविक स्वतंत्रता को सार्थ बनाने के लिये स्वदेशी भाव पुष्ट बनना, बनाना अतीव महत्वपूर्ण है यह भान छूटता गया।

अंग्रेजों की नीति के कारण वे चले जाने के बाद भी अंग्रेजियत के प्रभाव में ही हमारा देश चलता रहा। स्वार्थ, सत्तालोलुपता, आर्थिक समृद्धि का स्वप्नरंजन हमें पथभ्रष्ट करता रहा। भारतीय जीवन धारणा, जीवन मूल्यों से हम बिछुड़ते गये। हमारे देश का, संस्कृति का कुछ भी हमें स्वीकार्य नहीं रहा। विदेशी कंपनियों के साथ अपमानजनक, देश के हित संबंधों से विपरीत ऐसे अनुबंध सरकार करती रही। अनावश्यक चीजों से हमारा बाजार पट गया। गुणवत्ता के बहाने हमारे गृहोद्योगों पर कुठाराघात हुआ। उपभोक्ता संस्कृति छा गयी। स्वदेशी के साथ-साथ स्वदेश प्रीति की भावना भी लुप्त होने लगी।

स्वदेश प्रीति की भावना के अभाव में देश में भ्रष्टाचार तस्करी बढ़ती गयी। धन केन्द्रित वृत्ति बनने के कारण तस्करों को संरक्षण दिया गया। सत्ता का होना, नहीं होना गुणवत्ता पर नहीं अपितु धनशक्ति पर निर्भर होने लगा। धनशक्ति एवं गुंडाशक्ति का दबदबा होने लगा। धर्मशक्ति का प्रभाव कम होते ही मूल्य परिवर्तन हो गया।

हजारों सालों से होने वाले आक्रमणों के बावजूद भी जीवित रहने वाली हमारी संस्कृति की जड़ें हिलने लगीं तब पुनः स्वदेश भक्ति का भाव जागृत करने के लिए देश के विचारवंत सक्रिय हुएँ। स्वदेशी भाव का पहला चरण था- नित्य दैनंदिन उपयोग की वस्तुएं स्वदेशी ही खरीदने का आग्रह रखना। इसके बारे में हमारे ही परप्रज्ञ, तथाकथित बुद्धिवादियों ने अप्रचार शुरू किया कि स्वदेशी का आग्रह रखने वाले लोग दकियानुसी हैं- नवीनता के विरोधी हैं देश को तमोयुग में ले जाना चाहते हैं आदि-आदि। स्वदेशी यह कोई अभियान या आंदोलन नहीं वह एक भावना मानसिकता है यह प्रथम ध्यान में लेना है।

अपना भारत देहातों में ग्रामों में अधिक फैला हुआ है और आकर्षक बाह्य स्वरूप नहीं होने के कारण वहां बनी हुई चीजें खरीदना हम विज्ञापन संस्कृति के कारण नहीं चाहते- धीरे-धीरे ग्रामोद्योग, कुटीरोद्योग बंद होने लगे, ग्रामों से शहरों की ओर दौड़ प्रारंभ हुई। सारी अर्थव्यवस्था बिगड़ने लगी। भगिनी निवेदिता ने कहा था कि स्वदेशी वस्तु उपलब्ध होने पर विदेशी वस्तु खरीदना यह गोहत्या जैसा पाप है। परंतु उसका भी आज मन में संकोच नहीं है। राष्ट्र के स्वत्व को, प्रभुसत्ता को चुनौती देने वाली परिस्थिति में परिवर्तन करना अत्यंत महत्वपूर्ण है इसलिये स्वदेशी का पुनरुच्चार किया जा रहा है। किसी के प्रतिक्रिया रूप नहीं परंतु स्वतंत्र, सार्वभौम, संस्कृतिसम्पन्न राष्ट्र की प्रतिभा अखंड उज्वल रखने के लिये मानसिकता बनानी चाहिए। स्वदेशी का संबंध केवल वस्तु खरीदने से नहीं तो मानसिकता से है यह प्रथम समझाना चाहिए। श्रद्धास्थानों के कारण हम अपनी आदतें बदल सकते हैं यह अनुभव सिद्ध बात है। अपने देश के प्रति श्रद्धा जगाना नितांत आवश्यक है तब ही देशहित के लिए हम अपना जीवनक्रम बदल सकते हैं। देश का स्वत्व प्रकट करने वाली प्रथम बात है अपनी भाषा-भाषा के शब्दों के साथ सहचारी भाव होते हैं। अपनी भाषा, अपनी जीवन पद्धति, अनुभव, संकल्पना के साथ जुड़ी होने का कारण भाषा से होने वाले संस्कार महत्वपूर्ण होंगे। स्वदेशी भाषा के कारण विचार भी स्वदेशी होगा। विचारों से व्यवहार प्रभावित होना है। वेषभूषा, भोजन के बारे में भावनाएं स्थिर होने लगती हैं।

आज हमारे घरों की रचना, परस्पर व्यवहार की, भोजन की पद्धति में स्वदेशी अभाव से दिखाई देता है। भारतीय पद्धति का दर्शन, अभ्यास करने के लिए भी बहुत कठिनाईयां अनुभव हो रही हैं। भारत में भारतीयता का नहीं रहना यह अत्यंत अशोभनीय है। अतः स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहारिक-एकान्तिक नहीं-समर्थन करते हुए स्वदेशी की आत्मा पहचानना है। तभी हमारा चिंतन, भाषा, व्यवहार स्वदेशी बनेगा। 'स्वत्वयुक्त युवा राष्ट्र विश्व में सम्मानित होगा।

अध्ययन हेतु पुस्तकें

१. दीप स्तंभ - स्मारिका १९८६
२. Preface to Rashtra Sevika Samiti
३. सेविका अंक

सामाजिक समरसता

हिन्दु तत्वज्ञान में समाज को एक निर्जीव वस्तु नहीं अपितु जीवित पुरुष के रूप में और विविध समाज घटकों को उसके अंग रूप माना है। शरीर और उसके अंगों में स्वाभाविक सामरस्य, सामंजस्य होता है- विरोध या संघर्ष कभी नहीं। सहस्रशीर्ष, पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपाद। उसके अंगों का स्थान, उसका कर्म अलग-अलग है, उनको वहीं रहकर अपना निर्धारित कार्य करना है- ऐसी भावना होने पर ही शरीर के व्यवहार सुचारु रूप से चल सकते है। इसमें सम्पूर्ण शरीर की स्वस्थता का, कार्य क्षमता का विचार है। सम्पूर्णता पर आधारित हमारी जीवनदृष्टि टुकड़ों में सोचने वालों के समझ में नहीं आ सकती। सम्पूर्ण शरीर का नहीं एक-एक अंग का, उसके स्वास्थ्य का, कार्यक्षमता का अलग-अलग विचार होने लगा। उसीको महत्व आने लगा। वही विचारधारा रूढ़ समाज का विचार करते समय हावी हुई तब समाज के एक-एक घटक का विचार अलगता से होने लगा। फिर विशिष्ट घटकों को ही महत्व देकर केवल उसी की प्रगति का विचार होने लगा। 'तेरा' कि 'मेरा' यह भाव प्रकट होने पर 'हमारा-अपना-सबका' यह विचार निष्प्रभ होने लगा। फिर स्पर्धा, ईर्ष्या 'केवल मेरा' यह मन बनने लगा। समाज की एकता सौहार्द टूटता गया। शरीर के सभी अंग स्वस्थ व कार्यक्षम होने पर सम्पूर्ण शरीर की कार्यक्षमता निर्भर होती है, यह भूलना नहीं चाहिए। यह नहीं होने के कारण ही सौमनस्य, सौहार्द बिगड़ता गया। एक पुरानी कहानी है एक राजा के राज्य में उसके विविध विभाग संभालने वालों में अनबनी हुई और उन्होंने राजा से असहकार पुकारा। राजा ने बहुत कोशिश की। यश नहीं आया तो अपने प्रधान को बुलाया। प्रधान बड़ा चतुर था वह लोगों से मिलकर एक कहानी बताता रहा की एक बार शरीर के विविध अंगों में चर्चा छिड़ गयी कि किसका काम महत्वपूर्ण है। हम सब इतना काम करते हैं परंतु हृदय काम करते हुए किसी ने देखा नहीं यह तो खाऊ है। हम अब कुछ नहीं करेंगे। करने दो इस हृदय को जो कुछ इसे करना है। सभी ने अपना काम करना छोड़ दिया। आंखों ने, कानों ने, दांतों ने, पैरों ने सभीने पैर चले नहीं, हाथों ने भी काम भी नहीं किया। धीरे-धीरे शरीर की शक्ति कम होने लगी। हाथ, पैर, कानों की शक्ति भी कम-कम होने लगी। काम रुक गया सभी सोचने लगे। फिर मन ने सोचा यह कुछ विपरीत ही हो रहा है। उसने सबको समझाया कि वे जो काम करते थे उससे जो जीवनरस हृदय को मिलता था वह जीवन रस हृदय पुनः सभी अंगों तक पहुंचाता है, जो इस व्यवस्था को स्वीकारता नहीं वह निर्बल, निःसत्व बनता जाता है।' राजा के प्रधान ने कहा देखो, सभी का अपना-अपना काम है। वह काम श्रेष्ठ है- शरीर उसके बिना चलेगा नहीं यह ध्यान में ले कर सभीने काम करना प्रारंभ किया। समाज के घटक भी मेरा काम, मेरा स्थान का विचार न करते हुए सम्पूर्ण समाज का विचार करते हुए करेंगे तो ही समाज जीवित रहेगा। हाथ शरीर से कट कर जीवित रहने का विचार करेगा तो शरीर से मिलने वाला जीवन रस खो बैठेगा- उसका और साथ-साथ समाज का भी अस्तित्व धोखे में आयेगा। इसी भावना से जो जहां है वहीं कुशलतापूर्वक सामंजस्य भावना से काम करेगा तो समाज को एकता अखण्डता, अबाधित रहेगी। आज विषैला मनमुटाव फैलाया जा रहा है। उसको रोकने के लिये पुनः सभीने मनः पूर्वक काम करना है। हमारे संबंध बिगाड़ने वाले को दृढ़तापूर्वक रोकना है। शरीर का कोई भी अंग दुर्बल नहीं रहने देना है। वैसे ही समाज का कोई भी घटक अविकसित नहीं रहेगा। यह भी देखना आवश्क है। माँ के दो बेटे हैं एक बहुत तेज चलता है एक धीमे चलता है। माँ दोनों को अपने साथ चलाती है तो तेज चलने वाले को गति थोड़ी कम और धीमे चलने वाले को गति थोड़ी बढ़ाने के लिये कह कर दोनों को साथ चलाती है। तुम दोनों भाई अपनी गति में सामंजस्य रखो यह समझाती है। वही भावना चाहिये। किसी भी कारण समाज दुर्बल होगा उसका अस्तित्व धोखे में नहीं आयेगा। यह चिंता करनी है।

जब अकाल होता है अनाज का, मानव मर जाता है।
जब अकाल होता है संस्कारों का, मानवता मर जाती है।।

वंदे मातरम्

'वंदे मातरम्'! दो शब्दों का यह षडाक्षरी मंत्र हमारे स्वाधीनता संग्राम की रणगर्जना थी। यही शब्द राष्ट्रीय सामर्थ्य के बीजमंत्र सिद्ध हुए। इन शब्दों के उच्चारण के साथ मानो माँ के प्रेम का, उसके प्रति मर मिटने के लिये तैयार होने क एक अद्‌भुत विद्युत प्रवाह नसों-नसों में खेलने लगता है। 'वंदेमातरम्' शब्द में जो भावबीज है वह गीत में प्रस्फुटित हुआ है। इस गीत के रचनाकार हैं बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय जिन्हें योगी अरविंदजी ने 'ऋषि बंकिमचंद' इस उपाधि से सम्मानित किया है।

कलकत्ता के निकट काठालपाड़ा यह बंकिमचंद्र का जन्म ग्राम। सन् १८७५ के अक्टूबर में इस मंत्रोपम तपःपूत वंदेमातरम् गीत का जन्म हुआ। प्रथमतः यह 'वंगदर्शन' में प्रकाशित हुआ। और तत्पश्चात् 'आनंदमठ' उपन्यास के अभिन्न अंग के रूप में यह गीत संसार के सामने आया। 'आनंदमठ' माँ की मुक्तता की कथा थी। दासता की व्यथा थी। संघर्ष की प्रेरणा थी। वह उपन्यास नहीं माँ की मुक्तता का संजीवनी मंत्र था। माँ की संतान माँ की मुक्तता के लिये कटिबद्ध थी। इन संतानों के लिये माँ ही 'जन्म भूमि माँ' सर्वोपरि थी। यही भाव तत्कालीन समाज में जगाने का, माँ के लिये सब कुछ न्यौछावर करने का महान संस्कार इस गीत एवं उपन्यास ने जनमानस पर किया। १८७५ से लेकर १९४७ तक के इतिहास का पन्ना पन्ना इस का साक्षी है।

इस गीत के छब्बीस चरण एवं पाँच कड़ियां हैं। संस्कृत और बंगाली शब्दों से बना है। सर्वप्रथम सुनने वालों को यह गीत अटपटा सा लगा। परंतु बंकिमचंद्र जी को अपनी इस महान रचना पर बड़ा गर्व था। उसके सामर्थ्य के प्रति वे निश्चिंत थे। उन्होंने कहा था इस गीत में एक अद्‌भुत जादू है। एक दिन केवल बंगाल ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत वर्ष इस गीत से प्रेरणा लेगा। इस विवाद में 'वंदेमातरम्' की धुन पर उसकी मस्ती में अनेकों ने कारावास भोगा, अनेक हंसते झूमते हुए फांसी के तख्त पर चढ़े। अनेक मांगों के सिंदूर मिट गये मातृ भू के लिये। परंतु तब बंकिमचंद्र जी इस विश्व में नहीं थे।

राष्ट्रगीत का सम्मान -

१८९६ में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में रविन्द्रनाथ जी ने मंगलाचरण के रूप में यह गीत गाया। शब्द और स्वर के अद्‌भुत मेलजोल से इस गीत को उत्स्फूर्तता से राष्ट्रगीत का सम्मान दिया। कांग्रेस के प्रत्येक अधिवेशन में मंगलाचरण के रूप में गीत गाना प्रारंभ हुआ। परंतु १९०५ के वंगभंग आंदोलन की प्रथम सभा में 'वंदेमातरम्' की जयजयकार से भूमि थर्रा उठी और आसेतु हिमाचल ही नहीं देश विदेशों में जहां भी भारतीय रहते थे वह चप्पा-चप्पा इस निनाद से गूंज उठा। 'माता इयं पुत्रोऽहं पृथिव्याः' यह भाव दृढ़तर बना। गीत के इस सामर्थ्य ने अंग्रेजों का आसन हिलने लगा। अपनी सत्ता को धोखा ! अंग्रेजों ने तुरंत गीत ही क्या शब्द के उच्चारण पर पाबंदी लगाई। अनेकों को कठोर दंड दिया।

गीत का अद्‌भुत सामर्थ्य -

इस गीत के सामर्थ्य की अनुभूति प्रथमतः बारिसाल अधिवेशन में हुई। १९०६ में बारिसाल में कांग्रेस का प्रांतिक अधिवेशन था। शासन ने वंदेमातरम् पर प्रतिबंध लगाया। परंतु प्रतिनिधियों ने जुलुस के समय इस प्राणप्रिय मंत्र का उद्‌घोष किया। फलस्वरूप 'रेग्युलेशन लाठी' से लाठीहल्ला हुआ। ब्रिटिश शासन द्वारा किया गया यह प्रथम लाठीहल्ला! लोग बेरहमी से पीटे गये। अत्याधिक घायल हुए। चित्तरंजन कहता है - 'ज्यों ही मैंने वंदेमातरम् का नारा लगाया मुझे ऐसा लगा कि मेरी धमनियों में महान शक्ति का संचार हो रहा है। लाठियों की जो वर्षा मेरे शरीर पर जारी थी वह मातृभूमि के वरदान जैसी लगी।' इस प्रसंग के पश्चात् यह शब्द एवं गीत स्वाधीनता संग्राम के अभिन्न अंग बन गये। इस गीत ने प्रेरणा का स्वर संजोया- और वीतराग हौतात्म्य की रास रचाना- 'माँ' की संतानों ने प्रारंभ किया। खुदीराम बोस, कन्हैयालाल दत्त, रामप्रसाद बिस्मिलजी, रोशनसिंह, राजेन्द्र नाथ, सूर्यसेन दा आदि अनेकों क्रांतिकारियों ने हँसते-हँसते 'वंदेमातरम्' कहते हुए फाँसी का फंदा गले का हार बनाया।

अबला केनो माँ एतो बोले -

सुशील कुमार सेन, चंद्रशेखर आजाद और आंध्र के रामचंद्र राव इन्होंने अपने जीवनकाल में प्रसंगवशात् बेतों की सजा प्राप्त की और प्रत्येक बेत के साथ, होश था, तब तक 'वंदेमातरम्' कहते रहे। वास्तविक बेतों की सजा का नाम सुनते ही लोग कांप उठते ! जल्लाद अपनी पूरी ताकत के साथ नंगी पीठ पर बेत लगाता है, चमड़ी की धज्जियां उड़ती हैं, बेत चमड़ी को लेकर ही ऊपर उठता है और शरीर से खून का फव्वारा निकलता है। शरीर लहुलुहान हो जाता है। परंतु ये बालक चीखे नहीं। हंसते-हंसते बेत झेले, वंदेमातरम् कहकर उन्होंने दुनिया को जताया कि हम वीर माँ के बालक हैं। 'अबला केनो माँ एत बले?'

'स्वदेशी' माँ की अर्चना -

वंदेमातरम् की एक लहर सी उभर आयी थी। जनजीवन उसी भाव से व्याप्त था। वंदेमातरम् ने अभिवादन का स्थान लिया। श्रीकार के स्थान पर, तोरणद्वार पर 'वंदेमातरम्', धोती की किनार पर 'वंदेमातरम्' बुना जाता था। वंदेमातरम् का उच्चारण माँ की वंदना थी, और 'स्वदेशी' आचरण माँ की अर्चना थी। स्वदेशी के लिये 'मातृ भांडार' आदि शब्द प्रयोग किये जाते थे। स्वदेशी बैंक, कारखाने, नेविगेशन कंपनी आदि प्रारंभ हुए। और इंडियन स्टीम नेविगेशन तुतीकोरन के मजदूरों ने ब्रिटिशों को भी 'वंदेमातरम्' उच्चारण के लिये बाध्य किया।

वंदेमातरम् अभियोग -

१९०६ में नासिक के बाबारावजी सावरकर पर एक अभियोग चलाया। वैसे ही १९०७ में क्रांतिकारक अरविंद जी पर 'निष्क्रिय प्रतिरोध' इस लेखमाला के कारण शासन ने अभियोग चलाया था। ये दोनों अभियोग 'वंदेमातरम् अभियोग' नाम से प्रख्यात है।

'वंदेमातरम्' समाचार पत्र-ब्रिटिश शासन के कारनामों से लोगों को अवगत कराने तथा गुलामी का मन मैला धोने हेतु अलग-अलग स्थानों पर समाचार पत्र निकलते रहे उनमें वंदेमातरम् समाचार पत्र बड़ा प्रभावी रहा। उसका इतिहास भी बड़ा रोचक है। बिपिनचंद्र पाल ने १-४-१९०६ में वंदेमातरम् प्रारंभ किया। १९०५ में उसे 'वीरमरण' प्राप्त हुआ। भारत सरकार ने उसे जप्त कर लिया। अतः मैडम कामा ने सेक्टरडैम में लाला हरदयाल जी के संपादकत्व में 'वंदेमातरम्' प्रारंभ किया।

१९२९ में सैन फ्रान्सिस्को से 'वंदेमातरम् खालसा' नाम से १९२० में पंजाब से 'वंदेमातरम्', १९४१ में गुजराती में वंदेमातरम् निकलता रहा।

वंदेमातरम् और ध्वज -

इन दोनों का भी विलक्षण संजोग था। वंदेमातरम् युग में अर्थात् १९०५ से १९१० के बीच में दो विदुषियों ने अलग-अलग समय एवं स्थान पर भारत के राष्ट्रध्वज बनाये। भगिनी निवेदिता ने १९०६ में ध्वज बनाया-गेरुए रंग का। उस पर वंदेमातरम् लिखा हुआ था। दधिची अस्थियों से बना हुआ वज्र था। मैडम कामा ने १९०५ में अंतर्राष्ट्रीय जागतिक सम्मेलन में ब्रिटिश अत्याचारों की कहानी सुनायी और हरा, केशरी और लाल रंग की आड़ी पट्टियों वाला, वंदेमातरम् मंत्राकित किया हुआ ध्वज फहराया। सभी राष्ट्र के प्रतिनिधियों ने उसका सम्मान किया।

वंदेमातरम् विद्यार्थी -

जननी जन्म भूमि से बढ़कर कोई नहीं इस भावजागरण के साथ विद्यार्थी बड़ी मात्रा में स्वाधीनता आंदोलन में कूद पड़े। शासकीय विद्यालयों महाविद्यालयों पर बहिष्कार डाला। नये राष्ट्रीय विचार के विद्यालय प्रारंभ हुए। विद्यार्थी आंदोलन के स्वर्णिम पृष्ठ हैं- विद्यालय निरीक्षक का 'वंदेमातरम्' द्वारा नीलसिटी विद्यालय में कक्षा कक्षा में स्वागत। इसका सूत्रधार उस समय तो अपरिचित था, परंतु आज वह हजारों लोगों का प्रेरणास्रोत है, जीवनाधार है - प.पू. डॉ. हेडगेवारजी।

हैदराबाद रियासत में 'वंदेमातरम्' गीत छात्रावास में गाने पर प्रतिबंध लगाने से प्रारंभ हुआ। आंदोलन पूरी रियासत में फैल गया। आंदोलन छह माह तक चलता रहा। लगभग १२०० छात्रों को निष्कासित किया गया। वे छात्र क्षमा मांगने हेतु तैयार नहीं हुए। उन्होंने अपना भविष्य दांव पर लगाया। माँ की संतान झुकती नहीं है। प्राध्यापकों ने प्रयास-पूर्वक इन छात्रों की अन्यान्य विद्यालयों में व्यवस्था करने का प्रयास किया। नागपुर विद्यापीठ की भूमिका इस समय सराहनीय रही। उन्होंने लगभग सभी विद्यार्थियों को समा लिया। अनेक सहुलतें दीं, व्यवस्थाएं निर्माण की। इन छात्रों का उल्लेख 'वंदेमातरम्' ऐसा ही किया गया है।

वंदेमातरम् और संगीतकार

भारतीय संगीतकारों ने भी इस आंदोलन में निभायी हुई भूमिका बेजोड़ है। सरलादेवी चौधुरानी ने वाराणसी अधिवेशन में वंदेमातरम् गाया। अध्यक्ष जी ने मना किया था परंतु लोगों का बहुत आग्रह था। दो कड़ियां गाने की अनुमति मिली। परंतु गीत गाने का प्रारंभ करने पर सरला राणी की ऐसी समाधि लगी कि वह वंदेमातरम् पूरा गाकर ही रुकी। सारी सभा भी उसी समाधिअवस्था में मग्न रही।

पं. विष्णु वुवा पलुस्कर ने १९२३ में काकिनाडा सम्मेलन में अध्यक्षजी का वंदेमातस्म् गान को विरोध होते ही उत्तर दिया - 'यह कांग्रेस का मंच है न तो मुस्लिम सम्मेलन का मंच, न मस्जिद। सम्पूर्ण वंदेमातरम् गाया। पं. ओंकारनाथ जी भी कभी अधूरा वंदेमातरम् गाने के लिये गये नहीं।'

कलानिधि कृष्णरावजी- उन्होंने आकाशवाणी पर गीत गाने का प्रयास करते ही माईक बंद करा दिया गया। उन्होंने यह चरितार्थ का साधन होते हुए भी नभोवाणी कार्यक्रमों पर १० साल तक बहिष्कार डाला। १९४८ के युगादि को 'वंदेमातरम्' का गायन करके नभोवाणी कार्यक्रम प्रारंभ किया। उनकों 'वंदेमातरम्' कृष्णराव कहा करते थे। इस गीत को राष्ट्रगीत का स्थान मिले इसलिये आपने अथक प्रयत्न किये।

संघर्ष की गाथा -

१८७५ से १९९६ तक लगभग १२१ वर्षों तक इस गीत का इतिहास प्रतिक्षण प्रतिपग के संघर्ष का इतिहास है। ब्रिटिश,

मुस्लिम और भारतीय आवरण में रहने वाले अहिंदुओं के साथ यह तिकोनी संघर्ष निरंतर चलता आया है। यह प्रथमतः अंग्रेज, पश्चात् मुस्लिम और हिन्दुओं की मुस्लिम तुष्टिकरण नीति का शिकार रहा। काकिनाडा सम्मेलन से मुस्लिमों का विरोध प्रकट और उग्र होता गया। १९३७ में मुस्लिमों ने की हुई चौदह मांगों में से एक थी 'वंदेमातरम्' राष्ट्रगीत के स्थान से हटाया जाय।

मद्रास विधानमंडल में १९३६ से १९३७-३८ में हुआ। वंदेमातरम् बहिष्कार के नाटक की अंतिम कड़ी है और हमारे नेताओं की झुकने की भी कमाल है। इस तुष्टिकरण नीति ने हमें कहीं का भी नहीं छोड़ा है। इस महान अग्नि जैसे देदिप्यमान गीत की कसौटी पर मुसलमानों को रखने के स्थान पर हमने उनको कसौटी का निष्कर्ष माना। और वंदेमातरम् की परीक्षा ली। उस समय राजा जी विधानसभा के अध्यक्ष थे।

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात्, वंदेमातरम् के प्रति आस्था होने के बावजूद भी तत्कालीन प्रधानमंत्री एवं राष्ट्रपति तुष्टिकरण के चपेट में आकर इसे राष्ट्रगीत नहीं बना पाये। मा. कृष्णराव जी के परिश्रमों पर पानी फेर दिया गया। इस गीत को केवल राष्ट्रगीत के समकक्ष स्थान दिया गया। कांग्रेस ने प्रथमतः १९३७ में इस गीत के टुकड़े किये। उसकी एक ही कड़ी अधिवेशन में गाना प्रारंभ किया और राष्ट्रगीत के रूप में भी प्रथम कड़ी को ही मान्यता दी।

कांग्रेस के कारण मुस्लिमों के हौंसले बुलंद हैं। उन्होंने १९७३ में महाराष्ट्र में विद्यालयों से इस गीत का विरोध किया। फलस्वरूप जनआंदोलन प्रारंभ हुआ। 'अगर इस देश में रहना होगा, वंदेमातरम् कहना होगा।' - नारा लगने लगा। और महाराष्ट्र विधानसभा परिषद् में वंदेमातरम् गायन प्रारंभ हुआ।

१९९४ में खा. श्री राम नाईकजी ने संसद भवन में शून्य घंटे में संसद में 'वंदेमातरम् गीत' का गायन यह बिन्दु रखा। प्रचंड विरोध के बाद संसद में वंदेमातरम् गीत गाना प्रारंभ हुआ।

राष्ट्र सेविका समिति प्रेरित ट्रस्ट

	नाम	स्थान
१.	रानी भवन	नासिक
२.	देवी अहल्या बाई स्मारक समिति प्रधान कार्यालय	नागपुर
३.	श्री शक्तिपीठ स्मारक	नागपुर
४.	देवी अष्टभुजा मंदिर	वर्धा
५.	जिजामाता ट्रस्ट	ठाणे
६.	गृहिणी विद्यालय	माहिम
७.	भारतीय स्त्री जीवन विकास परिषद	ठाणे
८.	जिजामाता स्मारक समिति	पूणे
९.	वं. ताई आपटे स्मृति प्रतिष्ठान	तलेगांव
१०.	रानी कित्तूर चेन्नमा ट्रस्ट	सोलापुर, लातूर
११.	कृष्णा स्नेह वर्धिनी	कोल्हापुर
१२.	रानी रुद्रम्मा स्मारक समिति	मल्लिकार्जुनगिरि
१३.	श्री सरस्वती सेवा प्रतिष्ठान	भाग्यनगर
१४.	मंगेर मंगलम	मद्रास
१५.	सुकृपा	बैंगलोर
१६.	संघमित्रा सेवा प्रतिष्ठान	नागपुर
१७.	महिला कला निकेतन	नागपुर

दानदाताओं की सूची

१.	श्री अनन्तराव मुण्डले	बिलासपुर	२५१	९.	सौ. प्राजक्ता देशमुख	रायपुर	१००
२.	श्री संतोष आवटी	,,	२५१	१०.	सौ. वन्दना घारपुरे	,,	१००
३.	डॉ. तिर्थानी 'तिर्थानी क्लीनिक'	,,	२०१	११.	सौ वन्दना गणोतवाले	,,	१००
४.	स्वाति गोवर्धन	,,	१५०	१२.	सौ प्रेमलता पवार	,,	१००
५.	अशोक मेडीकल स्टोर्स	,,	१२५	१३	सौ. सरिता शर्मा	,,	१००
६.	सौ. नीता गोरे	,,	१००	१४.	सौ पुष्पा तामस्कर	,,	१००
७.	श्री दिलीप गदगे	,,	१००	१५.	श्री सत्यनारायण अग्रवाल	,,	१००
८.	सौ. माणिक हम्बर्डे	रायपुर	१००	१६.	श्री कुन्दजी जैन	,,	१००

हमारा राष्ट्रगीत

वंदे मातरम्

सुजलाम्, सुफलाम्, मलयजशीतलाम्
सस्य श्यामलाम् ! मातरम् ! वंदे मातरम् ।।ध्रु।।
शुभ्र जोत्स्नापुलकितयामिनीम्
फुल्लकुसुमित-द्रुमदलशोभिनीम्
सुहासिनीम्, सुमधुरभाषिणीम्
सुखदाम्, वरदाम् ! मातरम् ! वंदे मातरम् ।।१।।
★ कोटिकोटि कंठ कलकल निनाद कराले
★ कोटिकोटि भुजैर्धृतखरकरवाले
अबल केनो माँ एत बते
बहुबलधारिणीम्, नमामि तारिणीम्।
रिपुदलवारिणीम्। मातरम्। वंदे मातरम्।।२।।
तुमि विद्या तुमि धर्म
तुमि हृदि, तुमि मर्म, त्वंहि प्राणाः शरीरे
बाहुते, तुमि मा शक्ति
हृदये तुमि मा भक्ति
तोमारइ प्रतिमा गडि मंदिरे मंदिरे ! मातरम् ! वंदे मातरम् ।।३।।
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी
कमला कमलदलविहारिणी
वाणी विद्यादायिनी
तमामि त्वाम्, नमामि कमलाम्, अमलाम्, अतुलाम्
सुजलाम्, सुफलाम्, मातरम् ! वंदे मातरम् ।।४।।
श्यामलाम्, सरलाम्
सुस्मिताम्, भूषिताम्
धरणीम्, भरणीम् मातरम् ! वंदे मातरम् ।।५।।

महाकौशल ग्रुप ऑफ़ कम्पनीज़

पंजीकृत कार्यालय - बरही रोड कटनी (म.प्र.) पंजीयन क्र. १०-०८५५३१

भारत वर्ष के सात राज्यों में मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, उड़ीसा दिल्ली एवं हरियाणा में कार्यक्षेत्र का विस्तार है।

हमारी लाभकारी योजनाएं

दैनिक एवं मासिक आवर्ती निवेश
मासिक लाभांश (आय) निवेश।

दैनिक एवं मासिक पेंशन निवेश ।
बाल उपहार योजना। एक मुश्त निवेश।

निवेश अवधि (वर्ष में) मासिक १०/- दैनिक	बाल उपहार रु. २०००/-	एक मुश्त रु. १०००/-	मासिक आय रु. १००००/-	पेंशन मासिक अथवा एक मुश्त रु. १००/-	पेंशन रु. ५०००/-	आवर्ती १००% मासिक	जमा १००/- १००% दैनिक
२.	२५९९/-	१३४६/-	१५० प्रतिमाह	२७६३/-	६४९८/-	२७६३/-	८२८८/-
३.	३१२२/-	१६००/-	आय	४५७२/-	७८०४/-	४५७२/-	१३७१६/-
४.	४०००/-	२०००/-	११०००/-	६७३७/-	१००००/-	६७३७/-	२०२११/-
५.	४७७३/-	२४००/-	१२०००/-	९४२२/-	११९३२/-	९४२२/-	२८२६६/-
६.	५६८०/-	२९००/-	१३०००/-	१२६२४/-	१४१९९/-	—	—
७.	६७५९/-	३५००/-	१४०००/-	१७४००/-	१७४००/-		
८.	९०००/-	४५००/-	१५०००/-	अथवा ३००/- प्रतिमाह	अथवा ३००/- प्रतिमाह		
९.	१०८७४/-						
१०.	१३१२५/-						
११.	१५८४२/-						
१२.	१९१२१/-						
१३.	२३०७९/-						
१४.	२७८५७/-						
१५.	३३६२३/-						
१६.	४०५८३/-						
१७.	५१०९५/-						
१८.	६१८२५/-						
१९.	१००००/-						

आवर्ती निवेश

बाल उपहार योजना : निवेश रु. २०००/- और उसके बाद रुपये १०००/- के योग में
अवधि : 20 वर्ष दर १४ प्रतिशत से २१.६ प्रतिशत
एक मुश्त निवेश : निवेश रु. १०००/- और उसके बाद रु. ५००/- के योग में
अवधि : ८ वर्ष दर १६ प्रतिशत से २०.६८ प्रतिशत
मासिक आय योजना : निवेश रु. १०,०००/- और उसके बाद रु. ५०००/- के योग में
मासिक आय : निवेश अवधि तक रु. १५०/- प्रतिमाह
अवधि : ८ वर्ष दर १९ प्रतिशत से २१.२ प्रतिशत

पेंशन योजना

निवेश	7	पेंशन	एक मुश्त
१००/- रु. मासिक और उसके बाद रु. १००/- के योग में	साल बाद	३००/- प्रति माह	१७४००/-
१०/- दैनिक और उसके बाद रु. १०/- के योग में	—,,—	९००/- प्रतिमाह	५२२००/-
५०००/- रु. एक मुश्त और उसके बाद रु. ५०००/- के योग में	—,—	३००/- प्रतिमाह	१७४००/-

दर १४ प्रतिशत से २०.६९ प्रतिशत

निवेश : (१) १००/- रु. मासिक और उसके बाद रुपए ५०/- के योग में। (२) १०/- रु. दैनिक और उसके बाद ५/- के योग में।
अवधि : ५ वर्ष दर १४ प्रतिशत से १८ प्रतिशत

सम्पर्क करें : २० एवन राणाप्रताप नगर, नागपुर २२
मंडल कार्यालय छिंदवाड़ा, फोन (०७१६२) २०७९

जीवन के हर मोड पर आपके साथ

'स्त्री' अस्मिता जागृती

के

लिए निरंतर प्रयत्नरत

संगठन

'राष्ट्र सेविका समिति'

को

हार्दिक शुभकामनाएं